इमली

लेखक

हितवल्लभ गौतम

१९५६

साहित्य प्रकाशन, दिल्ली

इमली

Imli

लेखक
हितवल्लभ गौतम

Hit Vallabh Gautam

साहित्य-प्रकाशन, दिल्ली

प्रकाशन
साहित्य-प्रकाशन
मालीवाड़ा, दिल्ली

मूल्य
पाँच रुपया आठ आना

मुद्रक
रामाकृष्णा प्रेस
कटरा नील, दिल्ली

: १ :

वह एक छोटी सी आबादी का एक छोटा सा कस्बा था। और कस्बे के अनुपात से एक छोटी सी कचहरी भी वहाँ थी। उस छोटी सी कचहरी में वकीलों की संख्या भी बहुत बड़ी नहीं थी। और शुरू से लेकर आखिर तक जब सभी कुछ छोटा था तो वकीलों की उम्र भी छोटी क्यों न हो। अधिकांश वकील कम उम्र के नए सिखाड़ी नौजवान थे। दो तीन बुजुर्ग वकील भी उस कचहरी में थे। वकील, डाक्टर और ज्योतिषी ये तीनों जितने प्राप्त वयस्क हों उतना ही उनके व्यवसाय का प्रसार होता है। कचहरी के अधिकांश केसों पर बुजुर्ग वकीलों का ही एकाधिपत्य था। नवयुवक वकीलों में से अधिकांश ऐसे थे जिनका आने-जाने का किराया भी मुश्किल से ही निकलता था। फिर भी वे नियमित रूप से आते थे। निठल्ले वक्त में अदालत के सामने के नीम के पेड़ के नीचे बैठ कर सी. आर. दास, मोतीलाल नेहरू, रुद्र इत्यादि के शुरू के दिनों की आलोचना करते। इनमें से कौन कितने साल तक हाथ पर हाथ रखे बैठा रहा। कितने दिन तक गाँठ का किराया खर्च करके अदालत जाता रहा। ऐसी ही बातें करके उनके उन दिनों को अपने आज के इन दिनों से मिलाकर ऊँचे ऊँचे ख्वाब देखते। और इसके बाद उन ख्वाबों को अपने दिमाग में और भी रंगीनियाँ देते हुए वे रूखे मुँह से घर लौटते। इन नवयुवक वकीलों में जो लोग ज़रा रोमान्टिक मूड के थे उन लोगों ने एक क्लब की स्थापना कर डाली। उस क्लब का नाम था चिरकुमार समिति, चिरकुमार समिति का कोई स्थायी स्थान न था। वह कभी इस स्थान पर रहती तो कभी उस स्थान पर। कभी वर्मा के यहाँ उसकी बैठक जमती तो कभी शर्मा की कोठी पर। कभी श्रीवास्तव के यहां तो कभी गुप्ता जी के यहाँ। प्रायः रोजाना शाम को ये लोग किसी एक जगह

एकत्रित होते। स्टोव पर चाय बनती। बहस चलती, गाना बजाना होता। उर्दू की शायरी होती। हिन्दी की कविताएँ होतीं। संस्कृत के शृंगार-साहित्य के पन्ने उलटे जाते। कभी गांधी को अपनी बातों के बीच में खींच डालते तो कभी स्टालिन को, कभी ग़ालिब की दुर्गति बनाते तो कभी प्रसाद और जयदेव की।

आज की बहस का विषय भी उन विचित्र वकीलों की तरह विचित्र ही था। भाषा का जन्म पहले हुआ अथवा भावों का, यह था आज के वाद-विवाद का विषय। श्रीवास्तव भाव का पक्षपाती था और गुप्ता भाषा का; वर्मा और शर्मा तटस्थ थे। त्रिवेदी न किसी के पक्ष में था और न तटस्थ ही बल्कि इनकी लम्बी-चौड़ी बहसों से वह बुरी तरह विरक्त हो चुका था। कई बार उसने इस वाहियात विषय को बदलने का निष्फल प्रयास भी किया था।

इसके बाद वह वास्तव में बुरी तरह परेशान होकर एक तरफ मुँह फेर कर बैठ गया। बहस के प्रवाह में चढ़ाव आया। फिर उतार और इसके बाद सभी चुप होकर बैठ गए। तटस्थ वर्मा ने कहा—"लो त्रिवेदी इन उल्लुओं का युद्ध समाप्त हुआ अब तुम अपना गर्दभ प्रलाप शुरू करो।" वर्मा ने त्रिवेदी की ठीक ही नस पकड़ी थी। त्रिवेदी ने कल पूरी रात जाग कर एक कविता लिखी थी। और उसे सुनाने की उत्कट इच्छा लेकर ही आज वह यहाँ आया था। लेकिन दुर्भाग्य उसका। उस के आने के पहले ही वह महान् बहस यहाँ छिड़ गई। वर्मा के प्रस्ताव ने मानो त्रिवेदी की जान में जान डाली। फिर भी बिना जरा खुशामद कराए स्वतः ही कविता सुनाने लगना त्रिवेदी को कभी भी पसन्द न था। त्रिवेदी ने नासिका फुलाई। साथियों ने बार-बार आग्रह किया। तब कहीं त्रिवेदी साहब ने किसी प्रकार की भूमिका का आडम्बर किए सुनाना शुरू किया—"श्वेत पद्म पर तुहिन विन्दु, फिर पुहुप-कपोलों पर बूँदें, वह विरह-पर्व का एक अंक म देख रहा आँखें मूँदें।"

शर्मा ने बीच में टोका—"वाह बेटे वाह। आँखें मूँदकर क्या ख्वाब देख रहे थे?"

त्रिवेदी ने कहा—"पहले पूरी कविता सुन लो। तब बीच में बोलना।"

इसके बाद ज़रा गले को साफ करके उसने फिर क्रम जारी किया—

"बह चली वक्ष पर अश्रुधार
करके ग्रीवा का मार्ग पार
मानो टूटा हो बाँध कोई
जो सह न सका हो अश्रु-भार;
फिर चम्पक-कलियां सम उँगली
आकर उलझीं मेरे गल में,
औ पुष्ट उरोजों का दर्शन,
जा चुभा मेरे वक्षस्थल में।
(पर) इतने में ही मुर्गा बोला
मैं आश किए था कोयल की,
सुनकर पत्नि का कर्कश स्वर,
झंकार डूब गई पायल की
फिर आधे दर्जन बच्चों ने स्वर एक मिला संगीत किया,
और मेरी पत्नी ने आ झपटा बाहु पाश में जकड़ लिया
कहां गए वे स्वप्न और वे कहाँ गईं काली कलिका
मेरे सम्मुख खड़ी हुई थी रुद्र रूप में घर की मलिका
कहा तुम्हें··· ··········

लेकिन कविता अपूर्ण ही रह गई। कमरे के अन्दर एक नवयुवक ने प्रवेश किया। उसका मझोला कद था और इकहरा शरीर। उज्ज्वल गौरवर्ण आकर्षक आकृति। सभी एक साथ अट्टहास कर उठे।—"कपिवर कपिवर" लेकिन कपिवर के चेहरे पर जरा भी मुस्कान न खिली। उसकी आकृति गम्भीर थी। और आँखें कुछ भारी-भारी। इकतरफा

हँसी रुक गई। श्री वास्तव ने पूछा—"किशोर इतने दिन बाद। लेकिन बहुत उदास नजर आ रहे हो? बात क्या है।" शर्मा ने कहा—"कहीं बेभाव के पड़े हैं क्या?"

श्रीवास्तव ने कहा—"शर्मा समय देखकर मजाक किया करो।"

शर्मा ने कहा—"समय देखने को न तो मैं टाइम-कीपर हूँ और न मुहूर्त देखकर चलने वाला ज्योतिषी।"

श्रीवास्तव ने शर्मा की बात का कोई जवाब नहीं दिया। किशोर से पूछा—"कोई बुरी खबर है क्या किशोर।"

"नहीं। मैं कल यहां से जा रहा हूँ। इसीलिए तुम लोगों से विदाई लेने आया हूँ।"

सभी की उत्सुकता एक साथ जाग उठी—"कहां? क्यों।" किशोर ने कहा—"फिलहाल कल कलकत्ते जाने का इरादा है वहां से खड़गपुर। फिर वहां से देहात में।" "लेकिन क्यों?"

"वह बहुत लम्बी कहानी है। सुनाऊँगा कभी।"

"आखिर कुछ तो बताओ।"

किशोर ने थोड़ी देर चुप रह कर कहा—"पिताजी मरते वक्त पिचहत्तर हजार का कर्ज छोड़ गए थे। बंगाल का सारा कारोबार तो उनकी मौजूदगी में ही खत्म हो गया था। यहां का कारोबार और कोठी इन रुपयों की नालिश में डूब गई। अब बाकी बचा है मेदनीपुर जिले में चन्द्र कोना, रोड के पास एक राइस मिल; अब तक वहाँ का काम नौकरों के ही हाथों में चलता था। लेकिन अब उसकी जरूरत नहीं रही। मेरी जीविका मेरी पूँजी, मेरा सब कुछ वही एक बची है। इसलिए मैं आज यहां से जा रहा हूँ। फिर कब तुम लोगों से मुलाकात होगी कह नहीं सकता। लेकिन इतना जरूर कहूँगा कि जहाँ भी रहूँ। तुम लोगों को भूल नहीं सकता।"

बात समाप्त करते-करते किशोर का गला कुछ भारी-भारी सा हो उठा। और उसकी छूत उपस्थित सभी जनों को लगी। सभी जानते थे कि

किशोर एक प्रसिद्ध व्यवसायी का पुत्र है। लेकिन यह किसी को न पता था कि वह इतना कर्जा छोड़कर मरे हैं। और उसके बाद की नालिश, डिग्री, कुर्की के बारे में भी किसी को कुछ पता न था। सुनकर कुछ देर के लिए सभी स्तब्ध रह गए। किसी के मुँह से कुछ देर के लिए कोई बात न निकली। फिर श्रीवास्तव ने पूछा—"बंगाल की वह तुम्हारी राइस-मिल कितनी बड़ी है? कैसी आमदनी है।" "यह तो मैं नहीं जानता। कभी वहां तक गया भी नहीं। वह राइस मिल तो एक साइड बिजनैस के रूप में थी। उसकी आमदनी वगैरः किसी के बारे में मुझे विशेष जानकारी नहीं है। लेकिन आमदनी जो भी हो और जैसी भी हो, मेरे अकेले का खर्च तो चल ही जायगा। मेरे सिवाय और है ही कौन?"

यह सभी जानते थे कि किशोर बिल्कुल अकेला है। तीन चार साल पहले माँ मर गईं। पारसाल पिताजी चल बसे। भाई बहन तो कोई था ही नहीं। श्री वास्तव ने कहा—"तुमने बड़ी गलती की किशोर! अच्छे भले पढ़ रहे थे। लॉ प्रीवियस भी अच्छे डिवीजन से पास किया। फाइनल की भी वैसी ही उम्मीद थी। लेकिन न जाने क्या तुम्हारे सर पर भूत सवार हुआ कि पढ़ना-लिखना सब छोड़ बैठे। कम से कम लॉ पास कर लेते तो आज इस तरह इतनी दूर न भागना पड़ता। मजे से वकालत करते।"

किशोर ने जरा सूखी हँसी हँसकर कहा—"वकालत में जो मजा है उसका अनुभव तो तुम लोग कर ही रहे हो। इस मजे से वंचित रहने पर मेरे लिए कोई विशेष दुःख का कारण न होना चाहिए।"

गुप्ता ने पूछा—"लेकिन, बंगाल में तो सुनते हैं कि मैलेरिया का जहर बहुत ज्यादा है।"

"हाँ सुनते तो हैं।"

"तो फिर।"

"लेकिन यह क्यों भूलते हो कि मेरी जिन्दगी का एक बहुत बड़ा हिस्सा बंगाल में ही बीता है।"

"तब तो तुम बंगाली भाषा अच्छी तरह जानते होगे।"

"हाँ यही मेरे लिए सबसे बड़ी सहूलियत है।"

थोड़ी देर पहिले किशोर की करुण कहानी सुनकर और उसकी आकस्मिक बिदाई की बात से जिन लोगों का दिल भारी-भारी हो उठा था इन दो चार बातों से उनका बोझ काफी हल्का हो गया।

शर्मा ने कहा—"हाँ तो श्रीवास्तव क्या प्रोग्राम रहेगा आज की शाम को।"

श्रीवास्तव को इस समय यह बात अच्छी नहीं लगी। बोला—"रहने दो। आज यहीं गप-शप हों।"

शर्मा ने कहा—"वाह ऐसे अच्छे मौसम को यहां तुम्हारी इस सड़ियल कमरे की सड़ी गर्मी में सड़कर निकाल दें। उठो-उठो।

किशोर ने कहा—"तो मैं चलता हूँ" किशोर आज ही नहीं बल्कि इनके शाम के प्रोग्राम में वह कभी भी शामिल नहीं होता था। इनके सामने प्रोग्राम में रंगीनियां थीं। बहार थी और थीं वसन्त की फ़िज़ा। शाम के प्रोग्राम का अर्थ था चौक की तफ़रीह। प्रोग्राम शब्द सिर्फ इस लिए इस्तेमाल किया जाता था कि उससे गाने वालियों के नाम का अच्छा निर्वाचन हो। अवश्य भले आदमियों के नाम पर कलंक देने से पहले शास्त्र की एक उपमा दुहरा देना उचित है। जैसे कमल पत्र जल में लिप्त रहते हुए भी निर्लिप्त रहता है। कम से कम शिवकुमार समिति के सभी सदस्य इस उपमा के भावार्थों को अपने ऊपर मौखिक रूप से चरितार्थ करते थे।

शर्मा ने कहा—"जा तो कल रहे हो किशोर! आज चलो न हम लोगों के साथ घूमने" किशोर ने हँस कर मज़ाक में कहा—"आखिरी वक्त में क्या खाक मुसलमाँ होंगे।"

शर्मा ने कहा—"अरे तुम जो समझ रहे हो वह नहीं है। आज तो हम लोगों का सिनेमा जाने का विचार है। कहो भाई क्या राय है?"

आखिरी प्रश्न मित्र-मंडली से था। वर्मा ने कहा—"लेकिन पैसे देखो किसके पास कितने हैं।"

शर्मा ने आगे बढ़ कर सबकी जेबों की तालाशी ली। लेकिन झाड़-झूड़ कर जो कुछ निकला वह सिनेमा के लिए अपर्याप्त था। शर्मा ने कहा—"गुप्ता तुम बड़े कंजूस होते जा रहे हो। आज सुबह तो एक मोटा मुवक्किल फँसा था। सब घर पर रख कर हमें सूरत दिखाने आए हो आखिर हो तो बनिए ही।"

गुप्ता ने कहा—"यह बात नहीं। आसामी मोटा जरूर था, लेकिन भीतर से पोला था। कुल सात रुपए मिले, एक मुंशी को दे दिया तीन दलाल ले गया। मेरे पल्ले क्या पड़ा?"

शर्मा ने कहा—"अभी से दलाल को दे रहे हो बेटा! बदनाम हो जाओगे, बदनाम।"

गुप्ता ने कहा—"हां जी दूसरों को नसीहत देने में क्या बिगड़ता है।"

इस तरह की सस्ती रसिकता का तापमान जब क्रमशः ऊर्ध्व-गामी होने का उपक्रम करने लगा तो किशोर ने उठते हुए कहा—"तो भाई चलता हूँ किसी के साथ कोई गलती की हो तो उम्मीद है कि तुम लोग माफ कर दोगे।"

पिछला उदास वातावरण फिर से लौट आया। लेकिन शर्मा जिसका कि किसी भी परिस्थिति में 'सीरियस' न रहने का दावा था, उसने किशोर की पीठ ठोक कर कहा—"जाओ बेटा! बंगाल में इधर उधर निधड़क होकर घूमो। बंगालिनों के मुकाबिले मुहब्बत करना कहीं की औरतें नहीं जानती। एक बंगला की कहावत हमने सुनी थी 'अधर मधू बांगला बधू' तो आज मैं वशिष्ठ मुनि का वंशधर तुम्हारे ऊपर अत्यंत सन्तुष्ट होकर तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि उस मधु को तुम आकंठ पान करो।"

जवाब में किशोर जरा मुस्करा दिया। एक ऐसी मुस्कान जो समय

में असमय में व्यर्थ और अर्थ दोनों तरह की बातों में मुस्करानी पड़ती है।"

शर्मा ने कहा—"जाओ बेटा! और निश्चत होकर जाओ, जब हम सुनेंगे कि किशोर इस संसार में नहीं रहा तो दो बूँद आँसू जरूर तुम्हारी याद में धरती पर गिरा देंगे।"

किशोर ने फिर उसी मुस्कान की पुनरावृत्ति की और नमस्ते करके वह कमरे से बाहर निकल गया। पूर्ण जलाशय में किसी तरह के आघात से जिस तरह की हल-चल होती है। किशोर के आने से ठीक उसी ढंग की हल-चल हुई इस मित्र-समुदाय में। किन्तु उसके जाते ही हलचल रहित जलाशय की तरह सब कुछ शान्त हो गया। फिर चला उन लोगों का दैनिक कार्य-क्रम। पैसे के अभाव में बाहर के कार्य-क्रमों को गोली मार दी गई। और शर्मा साहब उर्दू की शायरी सुनाने लगे। गालिब साहब फर्माते हैं। दाग साहब फर्माते हैं और ये सुनो जफर की शायरी। बहादुर शाह जफर गदर का आखरी मुगल बादशाह। देखो बेटा क्या कमाल है उसकी शायरी में···ठेस मेरे दिल पै लगती है उनसे कह दो। जूड़े को न वह रश्के कमर खींचके बाँधे। उतरता है नजाकत से मेरा दिल उनसे कह दो, ताबीज न यूँ बाजुओं पर खींच के बांधे। ·········हम उनके कूँचे से कल ऐसे हुनर से गुजरे················"

दाद-पर-दाद दी जाने लगीं। हँसी कहकहे लग उठे। वाह वाह की आवाजों से कमरा गूँज उठा। किन्तु उनकी हँसी में ऊपरी मन से सहयोग देते हुए भी एक आदमी अन्तःकरण से उनका साथ नहीं दे रहा था। और वह था श्रीवास्तव। उसकी मुद्रा से उसकी अन्य मनस्कता ताड़ना कठिन था। किन्तु फिर भी वह अन्यमनस्क था। किशोर की बातों ने उसे आश्चर्य में डाल दिया था। और बात भी क्या कम आश्चर्य की थी। किशोर का मित्र समाज ही नहीं बल्कि अपरिचित व्यक्ति भी किशोर के पिता को एक उच्च श्रेणी के व्यवसायी

के रूप में जानते थे। किन्तु अचानक ही सारा वैभव, सारी सम्पत्ति अकस्मात फूँक से बुझाये गए दिये की लौ की तरह विलीन हो सकती है। यह आश्चर्य की ही बात थी।

: २ :

आश्चर्य तो है ही। बीसवीं सदी के इस वैज्ञानिक युग में भाग्य ने और चाहे जिस भाग्यवान को भाग्यशाली बनाया हो लेकिन भाग्य स्वयं अभागा हो गया है। लोग उसके अस्तित्व को मिटाने के लिए जी-जान से जुट गए हैं। लेकिन वह अपने क्षुद्र प्राणों को अभी तक किसी तरह बचाये हुए है। पूर्वकाल के विद्वान् कहते थे 'भाग्यं फलति सर्वत्र न च विद्या न च पौरुषं' किन्तु आज के इस युग का मानव पौरुष को ही प्रधान मानता है। फिर भी प्रत्येक के जीवन में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं। जब सारा उत्तरदायित्व वह अनायास ही भाग्य के मत्थे मढ़ डालता है। कुछ ऐसी घटनाएँ घटती हैं कि भाग्य के अलावा कुछ दूसरा उत्तर देने को रह ही नहीं जाता। सिर्फ पौरुष को ही अगर प्रधान कहा जाय तो उससे तर्क की शेष मीमांसा नहीं होती। पौरुष के साथ कुशलता चाहिए, बुद्धि चाहिए, चान्स चाहिए। और जहाँ चान्स शब्द आया भाग्य वहीं अपने को प्रगट कर डालता है। भाग्य ही एक ऐसी वस्तु है जिसमें शक्ति, बुद्धि, पौरुष, अवसर सब केन्द्रित हैं। इसलिए एक ही बात रह जाती है। वह है भाग्य और चाहे वह सौभाग्य हो अथवा दुर्भाग्य।

दूसरे दिन किशोर की मित्र-मंडली जब उसे सी-ऑफ करके चली गई तो वह बर्थ पर होल-डोल खोलकर इसी भाग्य की बात सोचने लगा। उसके पिता रामेश्वर दयाल एक कुशल व्यवसायी थे। उन्होंने अपने

जीवन-काल में बहुत अर्थ उपार्जन किया। एक तरह से देखा जाय तो सिर्फ भाग्य के बलबूते पर। यद्यपि इसके साथ उनके अटूट परिश्रम का भी योग था। लेकिन रामेश्वर दयाल शर्मा इसका सारा श्रेय भाग्य को ही देते थे। वह कहते थे 'भाग्य के बिना परिश्रम भी नहीं होता। भाग्य ही परिश्रम कराता है। भाग्य ही कुशलता या पौरुष दोनों का प्रेरक है।'

अपने प्रारंभिक जीवन में वह एक ड्राफ्टमैन थे। इसके बाद सौभाग्य से एक अँगरेज कन्ट्रैक्टर से उनका परिचय हो गया। अंगरेज शोषक अंगरेजों की जाति का न था। वह धार्मिक था, सत्यवादी था और था साथ-साथ मिष्टभाषी। उस पूरे छः फीट लम्बे और भयानक आकृति वाले अर्द्धवयस्क पुरुष की दृष्टि बच्चों की सी सरल थी। और उसका स्वभाव दृष्टि से भी अधिक सरल था। रामेश्वर दयाल से वह उपनिषदों का अंगरेजी अनुवाद सुनता था। और सुनकर वह सचमुच अवाक् हो जाता था। वह कैथोलिक क्रिश्चियन था। किन्तु हिन्दू धर्म को आदर की दृष्टि से देखता था। जो रामायण को होमर के महाकाव्य की नकल बताते हैं। तथा पुराणों को Epic ग्रंथ बताकर काव्य कहकर उनकी एतिहासिकता को ही उड़ा देना चाहते हैं। वह रक्त से उन अँगरेजों का स्वजातीय होते हुए भी विचारों में सर्वथा उनसे भिन्न था। वह फर्ग्यूसन के उस सिद्धान्त से सहमत न था जिसमें फर्ग्यूसन ने भारतीय शिल्पकला की नग्न मूर्त्तियों को देखकर भारत की प्राचीन नारी के बारे में ही विवस्ना होने की घोषणा कर दी है। और न भारतीय शिल्पकला को ग्रीक शिल्प की ही नकल वह मानता था। और न जर्मनी पंडित वेबर के कथनानुसार भारत की ज्योतिष को ही वह दूसरों की नक़ल की हुई विद्या मानता था। मैगस्थनीज के भारत-भ्रमण की पुस्तक जो कि आज बिल्कुल लुप्त हो गई है और जिसे कि Dr. Schwornbeck ने दुबारा लिखा है। उस अप्रमाणित पुस्तक का प्रमाण देकर हिन्दुओं के पुराणों को बिलकुल आधुनिक बता देने वाले पंडितों से वह सहमत न

था। वह प्रत्येक धर्म को श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। हिन्दू धर्म के प्रति उसके दिल में एक विशेष और अद्भुत सम्मान था। इसी धार्मिक अँगरेज से रामेश्वर दयाल की अचानक मुलाकात हो गई। वह रामेश्वर दयाल के व्यक्तित्व से प्रभावित हुआ। रामेश्वर दयाल वास्तव में प्रिय दर्शन थे। उनका लम्बा चौड़ा श्वेतांग शरीर बड़ी-बड़ी तथा अनुभव पूर्ण आँखें; लम्बी नासिका और मुख का दृढ़ तथा आत्मतुष्टि भाव सब कुछ मिलमिला कर उन्हें दुनियां के सुन्दर मनुष्यों की श्रेणी में खड़ा कर देती थी। वह अंगरेज भद्र पुरुष इन्हें अपने साथ अपने निवास खड़गपुर (बंगाल के मेदिनीपुर जिले में स्थित एक व्यावसायिक शहर) ले गया। और कुछ ही दिनों में रामेश्वर दयाल अपनी बुद्धि के सहारे उस अँगरेजी फर्म के एक हिस्से के मालिक हो गए। इसके पांच छः साल बाद ही रामेश्वर के भाग्य देवता उनके ऊपर यकायक ही सुप्रसन्न हो उठे। विलायत से उस अँगरेज के एक मात्र पुत्र के मरने का तार आया। और वह अर्द्ध विक्षिप्त अवस्था में अपना सारा कारोबार रामेश्वर दयाल के हाथ बहुत सस्ते दामों में बेचकर इंग्लैंड चला गया। रामेश्वर दयाल अब इतने बड़े कार-बार के अकेले मालिक हुए। लेकिन दो-तीन साल में ही इस कारोबार से उन्हें नफरत सी होने लगी। वह स्वाभिमानी आदमी थे। और ठेकेदारी का यह काम माँगता था खुशामद। उनका स्वाभिमान उस खुशामद में बाधक होने लगा। उन्होंने अपनी बागडोर दूसरी तरफ मोड़ दी। वह सुपाड़ी के व्यवसाय में लगे। इसमें भी उन्होंने उन्नति की।

धीरे-धीरे वह खड़गपुर के इतने बड़े शहर के एक प्रमुख व्यवसायी के रूप में प्रसिद्ध हो गए। उनका स्वभाव बड़ा ही मधुर था। वह ईश्वर पर सिर्फ विश्वास ही नहीं करते थे बल्कि कट्टर वैष्णव थे। रामायण उनकी आदर्श थी और कृष्ण को वह अपना इष्ट मानते थे। सुबह गीता और शाम को रामायण इन दो धार्मिक ग्रंथों का पाठ वह बिना किसी अतिक्रम के करते थे। वह अंगरेजी के विद्वान थे और संस्कृत के

पूर्ण पंडित। पोशाक में भी आधुनिकता उन्होंने अपनाई थी। किन्तु प्रार्थना को भी वे उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखते थे। अपने सर पर गोल काली टोपी जो उन दिनों यू० पी० के अधिकांश सम्भ्रांत पुरुषों की परिधान थी, पहनते थे। पैन्ट पेटी से कसी रहती थी। लेकिन इस पैन्ट और काली टोपी के बीच में रह कर भी वह माथे पर चन्दन का तिलक लगाते थे। सुपारी का व्यवसाय जब उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा था तब एक अचानक आघात उनके व्यवसाय को पहुँचा। लड़ाई खत्म होते ही चीजों में गिरावट आ गई। उस समय रामेश्वर दयाल की सारी पूँजी जो व्यवसाम में लगी थी। उस अंगरेज पुरुष से ईमानदारी के साथ-साथ रामेश्वर दयाल ने दुस्साहसिकता भी सीखी थी। इसलिए व्यवसाय का रुपया फँसाने से वह कभी भी न डरते थे। चीजों की गिरावट में रामेश्वर दयाल को बड़ा भारी नुकसान पहुँचा। वह दिवालिया हो गए।

ऐसा होने की उन्हें बिल्कुल उम्मीद न हो, यह बात न थी। वह जानते थे वि इस व्यवसाय में ऐसा होना कोई असंभव बात नहीं। इस लिए समय के पहिले घुमाव के आने से बहुत दिन पहले ही दूरदर्शी रामेश्वर दयाल के दिमाग में एक दूसरी स्कीम आई थी। वह इस लाभ नुकसान के व्यापार के ऊपर पूर्ण रूपेण आश्रित रहना न चाहते थे। इसलिए उन्होंने छोटी-छोटी मिलें, जिनमें फायदे के सिवाय नुकसान होने की कम संभावना हो, स्थापित करनी चाहीं। और इसके अनुभव के लिए खड़गपुर से तीन स्टेशन दूर छोटे से चन्द्रकोना रोड से भी करीब बीस पच्चीस मील के फासले पर श्रीनगर नाम के एक देहात में एक छोटी राइस मिल स्थापित की। यह मिल निहायत ही छोटी थी। जिस तरह शहरों में आटे की चक्की खोल कर उसे फ्लोर मिल का नाम दे दिया जाता है। यह मिल भी उसी ढंग की थी। रामेश्वर दयाल इसी चावल की मिल से कुछ अनुभव करना चाहते थे। और फिर उनका इरादा था कि ऐसी ही छोटी-छोटी पचासों मिलें वे गाँव

गांव स्थापित करेंगे। इस व्यवसाय को वह अपने एक मात्र पुत्र किशोर के नाम से शुरू करना चाहते थे। इसलिए यह छोटी सी मिल किशोर के ही नाम से खरीदी गई।

इसकी दैनिक आय औसतन आठ दस रुपए से ज्यादा न थी। रामेश्वरदयाल ऐसी ही अनेकों मिलें खोल कर अपने व्यवसाय को निर्झंझट बनाकर अपना आखिरी जीवन शान्ति से व्यतीत करना चाहते थे। लेकिन मानव की कामना और कल्पना से भी ऊपर जो वस्तु है। उसने ऐसा न होने दिया। अचानक ही नियति-चक्र ने एक पूरा घुमाव लिया और किशोर के नाम से खरीदी हुई इस एकमात्र मिल को छोड़ कर उनकी सारी स्थावर और अस्थावर सम्पत्ति इस व्यावसायिक आघात के धक्के से नष्ट-भ्रष्ट हो गई। उस समय किशोर खड़गपुर के ही एक इन्टर कालिज में पढ़ता था। रामेश्वर दयाल व्यवसाय में लाभ-नुकसान की बात जानते थे। लेकिन इतनी दूर की कल्पना भी उन्हें न थी।

किन्तु विपत्ति जब आती है तो अकेली नहीं आती। अपने साथ एकाधिक साथिन लेकर वह आती है। उसी महीने उनके घर से उनकी पत्नी की बीमारी का तार आया। रामेश्वर दयाल अपनी एकमात्र सम्पत्ति किशोर राइस मिल को श्रीनगर के ही अपने एक विश्वास पात्र कर्मचारी के हाथों सोंप कर किशोर को साथ लेकर घर की तरफ भागे। वह अपनी पत्नी को बहुत प्यार करते थे। साथ-साथ अपने सौभाग्यशाली दिनों में उनको विश्वास था कि उनकी सारी उन्नति उनकी पत्नी के भाग्य से ही सम्बधित है। जिस साल उनका विवाह हुआ, उसी साल उनकी उस अंगरेज भद्र पुरुष से जान पहिचान हुई थी इसलिए बात और भी सत्य बन कर उनके दिमाग में जमी हुई थी, इसके अलावा भी उनके हृदय में अपनी पत्नी के लिए अच्छा खासा स्थान था। शुरू-शुरू में वह अपनी पत्नी को खड़गपुर लाये भी थे। लेकिन वहाँ का मलेरिया से दूषित जलवायु उनकी पत्नी के लिए उपयुक्त साबित न हुआ। और रामेश्वर दयाल अपनी पत्नी को आगरे भेजने के लिए बाध्य हो गये। तब

से वह वहीं रहती थीं। रामेश्वर दयाल दूसरे तीसरे महीने अपना सारा कारोबार विश्वस्त कर्मचारियों के हाथों छोड़ घर जाते थे। इसलिए साधारणतया पति-पत्नी में एक साथ रहकर जो तृप्तता आज है, वह उनमें न आ पाई। और उनके दिल में जरूरत से ज्यादा प्रेम उसके लिए था। किशोर भी बचपन म दस-ग्यारह साल तक की उम्र तक घर पर ही रहा। लेकिन किशोर की उद्दंडता जब चरम सीमा को लांध गई तो मजबूरन उन्हें किशोर को खड़गपुर लाना पड़ा।

किशोर बचपन में बड़ा ही उत्पाती था। गाड़ी में बर्थ पर लेटे-लेटे किशोर को अपने बचपन की बातें याद हो आईं। और उन्हें याद करके आज वह जी खोल कर हँसा।

सबसे पहले किशोर ने अपनी दुष्टता का परिचय सात वर्ष की उम्र में इस दुनियाँ के सामने रखा था। वह ननिहाल गया हुआ था। पांच मामाओं का अकेला भानजा था। इसलिए आदर और स्नेह का पूरा अधिकारी था। ममेरे बहनोई भी एक दिन के लिए वहां होने आये, ममेरे बहनोई को वहां सभी वकील साहब के नाम से पुकारते थे। वैसे उन्होंने अपनी पढ़ाई की मंजिल प्राइमरी में ही समाप्त कर दी थी। लेकिन रहन-सहन से उन्होंने नवाबों के बिगड़े लड़कों को भी मात कर दिया था। जिस समय की यह बात है उस समय अंगरेजी पोशाक यू० पी० के देहातों तक न पहुँच पाई थी। शौकीन लोगों का लिवास अचकन और चूड़ीदार पायजामे तक सीमित था। अचकन और चूड़ीदार पायजामे के ऊपर वकील साहब जैपुरिया साफा बांधते थे। और आंखों में ऐनक।

रात को सोते वक्त उन्होंने अपनी ऐनक तकिए के पास रखली। सुबह जल्दी उठ कर किशोर ने उस ऐनक को उड़ा दिया। और आग जलाने की अंगीठी की ठंडी राख में उसे छुपा कर वह बड़े इतमीनान से खेल-कूद में लग गया। वकील साहब ने उठकर जब ऐनक लापता देखी, तो गुस्से से लाल हो उठे। सारे घर में कुहराम मच गया। चारों

तरफ़ ऐनक ढूँढी लेकिन ऐनक न मिली। किशोर बड़े मजे से इस तरह घूम रहे थे जैसे दीन दुनियां की कोई पर्वाह ही न हो। और किसी ने उससे कुछ पूछा भी नहीं। वकील साहब का सन्देह अपने साले शालिग्राम पर था। शालिग्राम पेड़ से बाँधे गये, बेंत पड़े, डंडे पड़े। लेकिन ऐनक न मिली। किशोर इतमीनान के साथ इस प्रहार कांड को देख रहे थे। लेकिन जब मार सीमा को पार कर गई तो उनसे न रहा गया। फौरन राख में से ऐनक निकाल कर वकील साहब के ऊपर फेंक दी। देख कर कोई हँसा। कोई गुस्सा हुआ। किसी ने उसके भावी जीवन की दुष्टता की भविष्यवाणी कर डाली, लेकिन उससे किसी ने कुछ न कहा। पाँच मामाओं के अगाध स्नेह के साथ-साथ वह एक बड़े व्यवसायी का पुत्र भी तो था। खैर बात यहीं खत्म हो गई।

इसके दो वर्ष बाद फिर उसने अपनी कला का परिचय दिया। माँ की उन दिनों आँखें दुखने आईं थीं। और उसी समय ननिहाल से पत्र आया कि उसकी नानी का देहान्त हो गया। रो-रो कर उसकी माँ ने रही सही आँखें भी ऐसी कर डालीं कि वह खुलती ही न थीं। किशोर को माँ के साथ ननिहाल जाना पड़ा। गाड़ी उस स्टेशन तक सीधी जाती थी। और स्टेशन से एक मील दूर उसकी ननिहाल का गांव था। स्टेशन पर उतर कर मां ने कहा 'जब गाँव पास आजाए तो वह उन्हें बता दे। ताकि अपनी मां का नाम ले लेकर वह वहीं से रोना शुरू कर दें। जिससे गांव के आदमी यह न कहने पायें कि माँ के लिए बेटी की आँखों में आँसू भी न आए। बात उसे कतई पसन्द न आई। लेकिन मां को उसने पूरी तरह अभय दे दिया। ज्यों-ज्यों रास्ता चलने लगे मां पूछतीं रहीं कि अभी गाँव कितनी दूर है। वह "बहुत दूर है" कह कर उन्हें गाँव के बीच में ले आया। उस समय दिन छिपने लगा था। मां उसका हाथ पकड़े हुई थी। उसने अपनी ननिहाल के ठीक आँगन में ले जाकर मां को खड़ी करते हुए कहा—"लो मां अब खूब जी भर कर रो लो।"

माँ ने पूछा—"कहां आ गए हम लोग ?"

उसने कहा—"तुम ठीक अपने घर के आँगन में खड़ी हो।"

सुन कर मां ने गुस्से में अपने हाथ का थैला किशोर के मुँह पर दे मारा। थैले में रखे लोटे से उसका माथा अच्छी तरह फट गया। आज भी उस दुष्टता का सार्टीफ़िकेट वह घाव का निशान उसके माथे पर मौजूद है। इसके बाद उसका शैतानीपन सीमा को लांघ गया। किसी पनिहारिन का मिट्टी का घड़ा ढेले से फोड़ देना उसका नित्य-कर्म हो गया। नहा-धोकर हनुमान चालीसा का पाठ करते आते हुए व्यक्ति के शरीर पर थूक देने की एकाध शिकायत रोजाना घर पर आने लगी।

इसी बीच उसके पिताजी के पास उसकी माँ ने उसकी सारी बातें चिट्ठी में लिख दीं। और वह उसे खड़गपुर ले आये।

: ३ :

खड़गपुर आकर वह बिल्कुल गुम-सुम हो गया। न यहाँ वह किसी की बोली ही समझ सका। और उन लोगों का हाव-भाव ही उसे अच्छा लगा। समवयस्क बंगाली लड़के उसे छातू खोर (सत्तू खोर) हिन्दुस्तानी कह कर चिढ़ाने लगे। यहां आकर उसे मालूम हुआ कि बंगाल हिन्दुस्तान से बाहर है। बंगाल वाले अपने को बंगाली कहते हैं। देश के नाम से भी वे अपने को बंगाल देश का बाशिन्दा कहते हैं। हिन्दी भाषा भाषी प्रत्येक व्यक्ति उनके लिए उपहासस्प्रद है। कौतुक की सामग्री है। उसे वे लोग खुट्टा कह कर चिढ़ाते हैं। हिन्दी उनके लिए कुलियों की भाषा है। उसका भी अपना कोई साहित्य है। यह बात उनके लिए अविश्वासनीय है। अशिक्षित ही नहीं शिक्षित भी इस बात

को कहते हैं कि हिन्दी में तुलसीदास की रामायण के अलावा कोई भी प्राचीन अथवा आधुनिक पढ़ने लायक काव्य-ग्रंथ नहीं है। उनकी समझ में ही नहीं आता कि कुली मजदूरों की भाषा हिन्दी भी कोई साहित्य रखती है। इसमें उनका अकेले का दोष नहीं, दोष उन अशिक्षित बिहारियों का भी है जो यहाँ पुलिस में अथवा बड़े-बड़े आदमियों के यहाँ दर्बानी करने आते हैं। बंगाली लोग उन्हीं की भाषा और सभ्यता संस्कृति के आधार पर पूरे हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों के आदमियों को एक ही नाप में नाप लेते हैं।

प्रान्तीयता की इतनी बड़ी भावना हिन्दुस्तान के और किसी हिस्से में दिखाई नहीं देती।

देश का सवाल उठता है तो ये लोग कहते हैं 'आमादेर बांगल देश', प्रदेश अथवा प्रान्त नहीं कहते।

और सबसे बड़ा दुःख इस बात का है कि यहाँ का बड़े-से-बड़ा नेता बड़े-से-बड़ा धार्मिक गुरु बड़े-से-बड़ा लेखक भी इस संस्कार से मुक्त नहीं हो सका। हिन्दी भाषा-भाषी हिन्दुस्थानियों की मजाक बनाये बिना और उसे दो चार गालियाँ देकर दुनियाँ का सबसे बड़ा मूर्ख असभ्य और जंगली बताए बिना यहाँ के बड़े-से-बड़े लेखक अपनी रचना को असम्पूर्ण समझते हैं। यह बात किसी तरह समझ में ही नहीं आती कि बेचारे हिन्दी-भाषा-भाषियों के ऊपर इनका कोप क्यों है।

बंगाल की ही भूमि एक मात्र शस्य श्यामला भूमि है। इसके अलावा जितनी भूमियाँ हैं वे सब ऊसर हैं। पोड़ा देश (जला हुआ देश) कहकर यहाँ के निवासी उसका मजाक बनाते हैं। लेकिन उस जले हुए देश की मिट्टी में उत्पन्न हुई वस्तुएँ ही यह अधिकतर काम में लाते हैं। सरसों और उसके तेल के लिए यहाँ कानपुर मशहूर है। घी यहाँ आता है खुर्जा से। दाल भी कानपुरी ये लोग व्यवहार में लाते हैं। आलू के लिए नैनीताल यहाँ प्रसिद्ध है। कपास की खेती यहाँ बिल्कुल नहीं होती। और गेहूँ भी संयुक्त प्रान्त से आता है। और तो और

यहाँ की ऊँची-ऊँची जातियां ब्राह्मण, क्षत्री और कायस्थ भी उसी जली हुई मिट्टी के देश से यहाँ आकर बसे हैं।

बहुत दिन पहले यहाँ ब्राह्मण नहीं थे। तब किसी राजा ने यज्ञ कराने के लिए कन्नौज से पाँच ब्राह्मण बुलाए। और उन्हें बसने के लिए स्थान भी दिया। जीविका के लिए छप्पन गांव दान में दिये। आज भी यहाँ कहावत है "पंच गोत्र छप्पन गुईं ए छाड़ा ब्राह्मण नाईं" इसके बाद ब्राह्मणों का वंश खूब बढ़ कर जब सारे बंगाल में व्याप्त हो गया तो बल्लाल सैन वंशीय राजा ने उनमें से जो निष्ठावान विद्वान् और कर्मठ थे उन्हें कौलिण्यता प्रदान की। ब्राह्मणों के दो विभाग कर दिए, कुलीन और वंशज। कायस्थों का भी वही इतिहास है। वे भी पश्चिम से आये हैं। उनमें भी कुलीन और अकुलीन हैं। घोष, बोस, मित्र ये तीन पदवीधारी कुलीन हैं। बाकी सब अकुलीन। क्षत्रियों को राजस्थान से यहां आये ज्यादा दिन नहीं हुए। ये लोग मुगल काल में यहां आये हैं।

लेकिन ये ही ब्राह्मण, क्षत्री और कायस्थ ही हिन्दी-भाषा-भाषियों को सबसे ज्यादा उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। किशोर उस समय इतना छोटा था कि वह इनकी बातों को समझ न पाया। उस समय वह दुष्टतां के दायरे से निकल कर यहां आया था। जब बंगाली लड़के इस तरह उसे चिढ़ाने लगे तो उसकी इच्छा हुई कि आगे बढ़कर इन मच्छड़ से शरीर वाले लड़कों को हाथों से मसल डाले। लेकिन यहाँ उसके ऊपर शासन था, कड़ा शासन। मगर जब वह और बड़ा हुआ और इन्हीं बच्चों के बीच बड़ा हुआ तो उसे इनकी बातों पर गुस्सा न आई। क्रोध न आया। दुःख हुआ वेदना हुई। इस प्रान्तीयता के बढ़ते हुए जहर को देखकर और सबसे बड़ा आश्चर्य इस बात से हुआ कि इस जहर को फैलाने में सबसे बड़ा हाथ उनका है जो अपने को शिक्षित कहते हैं, भद्र पुरुष कहते हैं। भद्र पुरुष यहाँ एक बँधा हुआ शब्द है जो सिर्फ ऊँची जाति वालों के लिए ही व्यवहार में लाया जाता है। छोटी

जाति वालों के लिए 'छोटी लोग' यहाँ के भद्र पुरुष व्यवहार में लाते हैं। तो उन भद्र पुरुषों की ऐसी संकीर्ण भावनाएँ किशोर के दिल में कसक उठीं। उसके दोस्त अधिकांश बंगाली थे, जो किशोर से हमेशा प्रान्तीयता के जोश में तर्क करने को तैयार रहते थे। लेकिन किशोर की प्रकृति बदल चुकी थी। वह तर्क करना ही पसंद न करता था। और उसमें भी ऐसे वाहियात विषय को लेकर। उसकी बंगाली मित्र-मंडली जब कहती—"है कोई यू० पी० में विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ, सुभाषचन्द्र ?" तो उत्तर में किशोर उन्हें लज्जित कर देता—वह कहता—"रवीन्द्रनाथ, विवेकानन्द, सुभाषचन्द्र ये सिर्फ बंगाल की ही निधि नहीं पूरे भारतवर्ष की निधियाँ हैं। महात्मा गाँधी सिर्फ गुजरात के ही स्वाभिमान की वस्तु नहीं पूरे भारतवर्ष के गौरव की वस्तु हैं" किशोर उन्हें समझाने में सफल होता। धीरे-धीरे उसने अपनी बंगाली मित्र-मण्डली के दिलों से प्रान्तीयता की जड़ें उखाड़ डालीं।

किशोर अब वह उद्दण्ड किशोर नहीं था। अब उसमें एक बारगी परिवर्त्तन आ गया था। शुरू में घर से खड़गपुर आते ही इस अपरिचित स्थान में आकर वह सारी चौकड़ी भूल गया। इसके बाद उछृंखल किशोर के पैरों में शासन की बेड़ी पड़ी। रामेश्वर दयाल ने एक ऐंग्लो-इण्डियन अध्यापक को उसे पढ़ाने के लिए नियुक्त किया। और उस अर्द्ध गोरे शिक्षित ने किशोर को एक नये सांचे में ढालना शुरू किया। किशोर का उद्दंडी मन उद्दंडता का सामान न पाकर पढ़ाई की तरफ झुका। अंगरेजी के माध्यम में ही उसकी पढ़ाई की शुरूआत हुई और सोलह-सत्रह वर्ष की उम्र में ही उसने कीट्स, शैली, वर्डसवर्थ जैसे अच्छे-अच्छे कवियों को पढ़ डाला। उद्दंडता की जगह काव्य ने ले ली। उसे साहित्य से प्रेम हुआ और कविता रचने की तरफ भी उसका झुकाव हुआ। मन के साथ-साथ उसके शारीरिक अवयवों में भी परिवर्त्तन आ गया। बचपन के गोल-मटोल शिशु किशोर का शरीर

लम्बाई की तरफ ज्यादा खिंच गया। शरीर में कोमलता आ गई। उद्दंडी चेहरे का भाव शिष्टता और सौम्यता में पलट गया। इसके बाद रामेश्वरदयाल ने उसका ऐडमीशन कालिज में कराया। और शीघ्र ही कालेज के लड़कों का वह प्रिय पात्र बन बैठा। सभी उसे 'दादा, कह कर पुकारने लगे। लेकिन इतने परिवर्तनों ने क्रमश: उसकी सामाजिकता दूर कर दी। क्रमशः वह संकोची और झेंपू प्रकृति का होने लगा। वह अपना ज्यादातर समय पढ़ने में लगाने लगा, या अकेले घूम कर। वह न जाने क्यों इतनी थोड़ी उम्र में ही एकान्त प्रिय हो उठा। कविता लिखता; लेकिन छपवाने के लिए नहीं; किसी को पढ़ कर सुनाने के लिए भी नहीं। अपनी बनाई हुई कविताएँ वह स्वयं ही पढ़ता और आत्मतुष्टि का अनन्द लेता।

ठीक इसी समय उसके पिता का कारोबार चौपट हो गया। उसे माँ की बीमारी का तार वह पिता के साथ वह घर लौटा। लेकिन लौटना ही सार हुआ। उसके आने के एक दिन बाद उसकी माँ चल बसीं। इससे उसके पिता रामेश्वरदयाल का दिल टूट गया। एक साथ दो आघात। कुछ ही दिनों में वह वृद्ध से हो उठे। उनकी आँखों के नीचे काली छाया सी पड़ गई। पके सेब के समान उनका रंग पीला पड़ गया। वह बीमार पड़ गये। और कुछ दिन बाद उन्हें पक्षाघात हो गया। हाथ पैर मारे गये और उसी हालत में वह चार साल रहे। श्रीनगर की राइस मिल के मैनेजर महीने-महीने जो भेजते थे। वह खर्चीले स्वाभाव के रामेश्वर दयाल के लिए पर्याप्त नहीं था। उन्होंने कर्ज लेना शुरू कर दिया। किशोर आगरा यूनिवर्सिटी में अध्ययन करने लगा। और जिस दिन उसके लॉ-प्रीवियस का रिजल्ट निकला उसी दिन उसके पिता चल बसे। इसके बाद उसे महाजनों ने नोंचना शुरू किया। और फिर नालिशें हुईं। पूरे दो साल किशोर मुकदमेबाजी में व्यस्त रहा। इसके बाद रामेश्वरदयाल का पैतृक मकान और किशोर के माँ के नाम की कोठी महाजनों के हाथ सौंपकर वह मानो हाथ पैर झाड़ कर मुक्त हो गया।

किशोर की इस मुकदमेबाजी की बात उसके मित्रों को मालूम न थी। इसलिए लॉ-प्रीवियस में यूनिवर्सिटी को टाप करके जब उसने पढ़ना छोड़ दिया तो सभी लोग आश्चर्य-चकित रह गये। लॉ के हैड आफ दी डिपार्टमेंट ने किशोर को पहले से ही सुझाव दिया था कि वह लॉ फाइनल पास करके एल. एल. एम जोइन करे। लेकिन अकस्मात जब उस ने पढ़ना छोड़ दिया तो उसके सभी शुभचिन्तक आश्चर्यचकित रह गए। जो लोग उसके घनिष्ट सम्पर्क में थे उन्होंने कारण भी पूछा। लेकिन किशोर ने यों ही बहानेबाजी करके उन्हें टाल दिया। किन्तु आज जब वह सदा के लिए अपने मित्रों से बिदा लेकर सुदूर बंगाल की ओर अग्रसर हुआ तो मित्रों से कुछ भी छुपाना उसने उचित न समझा। और वे दोस्त जब उसके इतिहास को सुनकर कथा के साथ ही उसे सी. आफ़ करके चले गए तो बर्थ पर लेटे-लेटे इन बातों को याद करके सचमुच उसका मन दुखी सा हो गया।

गाड़ी में उसे नींद प्रायः कम ही आती है। इसलिए बहुत रात तक वह पड़े-पड़े अपनी पिछली बातों को एक पढ़े हुए उपन्यास की तरह मन-ही-मन दुहराता रहा। लेकिन ज्यों-ज्यों वह सोचता गया त्यों-त्यों उसका मन हलका होता गया। उसने अपने को मन-ही-मन फटकारा, 'लेकिन वह दुखी क्यों है','वह करोड़पति न हो सका इसलिए','वह अगाध सम्पत्ति का मालिक न हो सका इसलिए' या 'वह इंग्लैंड न जा सका इसलिए।'

रामेश्वरदयाल को किशोर को इंग्लैंड भेजने की शुरू से ही इच्छा थी। एक बार वह स्वयं ही योरुप के लिए रवाना हुए थे। लेकिन ऐडेन से ही उनकी तबियत खराब होनी शुरू हो गई। और पोर्ट सईद तक जाते-जाते वह इतने बीमार हुए कि उन्हें वहाँ उतर जाना पड़ा। इसके बाद डाक्टरों की सलाह से वह भारत लौट आए। फिर व्यावसायिक व्यस्तता में अपनी योरुप जाने की इच्छा पूर्ण करने का उन्हें कभी अव-काश ही न मिल पाया। इसलिए उन्होंने किशोर के लिए अपनी उस

इच्छा को दबा रखा था। किन्तु मनुष्य की सारी इच्छाएँ हमेशा पूरी नहीं हो जाती।

किशोर सोचने लगा—"क्या हुआ जो वह इंग्लैण्ड न जा सका। क्या हुआ वह करोड़पति न हो सका।" ईश्वर ने उसे प्रकृति के प्रति प्रेम देकर अपनी अतुल सम्पत्ति प्रदान की है। उसे पूर्ण अवकाश देकर अध्ययन करने का सुअवसर दिया है। किताबों का, प्रकृति का सब तरह अध्ययन। प्रकृति को उसने अनेक रूपों में देखा है। असंख्य भाव भंगिमाओं से उसने सौन्दर्य का उपयोग किया है। ईश्वर ने उसे स्वतंत्रता प्रदान की है। पूर्ण बंधन-मुक्त एक पक्षी की-सी स्वतंत्रता। वह हवा में उड़ सकता है। जहाँ उसका मन चाहे। जिस दिशा में उसका मुँह उठ जाये। बहुत सी अस्त-व्यस्त बातें सोचते-सोचते काफी रात बीते किशोर की आँख लग गई। सुबह वह देर तक सोता रहा। इसके बाद हाथ मुँह धोकर चाय पीकर वह नीचे की सीट पर उतर आया।

गाड़ी बिहार के पर्वतीय प्रदेश के चढ़ाव-उतार को पार करके समतल भूमि में आ गई थी। चारों तरफ ताड़ के वृक्षों की कतारें और हरित श्यामल भूमि को देखकर किशोर ने अनुमान लगा लिया कि गाड़ी अब बंगाल की सीमा में आ गई है। पास बैठे एक सहयात्री से उसने पूछा—"क्या बराकर पार हो गए हम लोग।"

"जी! कभी के, अब आसनसोल स्टेशन आने वाला है।" बराकर बिहार और बंगाल की सीमा के बीच में स्थित एक नदी है। किशोर ने खिड़की में से झाँक कर एक अनुराग-भरी दृष्टि डाली। उसके जीवन का अधिकांश भाग इसी प्रदेश में बीता है। इसलिए इस प्रदेश की मिट्टी के प्रति उसके मन में एक स्वाभाविक मोह आ गया, जो कि बंगाल प्रदेश के वासियों के अलावा भारत के प्रत्येक प्रान्त-निवासियों के मन में आ जाता है। सिर्फ बंगाल ही एक ऐसा प्रान्त है। जहाँ के बाशिन्दे दूसरे किसी प्रदेश में सात पुश्त तक रहने पर भी उस भूमि के प्रति अपने मन में जरा भी मोह उत्पन्न नहीं होने देते। कन्नौज से कान्यकुब्ज लोग गए।

बंगाल जाकर बंगाली हो गए। राजपूताने से राजपूत गए जो कि बहुत ज्यादा दिनों की बात नहीं है। वे भी बंगाली बन गए। किन्तु वेही जब किसी कार्य से पश्चिम लौटे तो प्रान्तीयता के विषय में सर से लेकर पैर तक डूब कर लौटे।

किशोर खिड़की से झांकने लगा। धान के खेत पंक्तिबद्ध होकर क्षितिज के पास तक पहुँच गए हैं। हरे धान के छोटे-छोटे पौधों में हवा एक लहर पैदा कर रही है। स्फूर्तियुक्त गुद-गुदी की तरह। मानो ये धान के खेत एक हरित समुद्र के रूप में हों। बीच-बीच में दूर से दिखने वाली छोटी झोंपड़ियाँ हैं। जिनके धान के पुआल से बनें हुए छप्पड़ बरसात की बूँदों से धुल-धुल कर उज्ज्वलतर हो उठें हैं। लेकिन वह उज्ज्वलता समान्य श्यामलता लिए हुए है। निरन्तर भीगे रहने के कारण यह श्यामलता उनमें आ गई है। वहाँ के से छप्पड़ शायद भारत के किसी भी प्रदेश के कारीगर नहीं बना सकते। ठीक जैसे ऋषियों के आश्रम हों। गोलाकार सुडौल और नयनाभिराम उन छप्पड़ों को देखकर किशोर की आंखें मानों तृप्त हो उठीं। किशोर एक अनिवर्चनीय आनन्द के साथ उन छप्पड़ों को देखने लगा। और उनका कवि-हृदय ऐक्सरे की दिव्य दृष्टि की तरह उन घरों में काम करने वाली अल्पवयस्का वधुओं का चित्र अंकित करने लगा। तांत की साड़ी (हैण्डलूम की साड़ी) अपने एक विशेष ढंग से पहने हुई उन ललनाओं ने अपने अँचल के छोर को फैलाकर नितम्बों पर कस लिया होगा। और फुदक-फुदक कर मानो हवा में पैर रखती हुई वे छोटी-मोटी गोल मटोल नव वधुएँ अपने चन्द्र बदन को अवगुण्ठन से आवृत करके छोटे-छोटे घरेलू धंधों में जुटी होंगी।

किशोर बंगाल में ही बड़ा हुआ है। इसी प्रदेश में उसने होश सँभाला है। लेकिन खड़गपुर छोड़ कर वह कभी भी किसी गाँव में नहीं गया। गांवों के दृश्य उसने गाड़ी के डिब्बे से ही देखे हैं। इसलिए उनके बारे में उसका कौतूहल अभी तक ज्यों का त्यों है।

आसनसोल और उसके बाद बर्दवान। बर्दवान पार हो जाने पर

भूमि की हरियाली में और भी सघनता आ गई है। और भी निविड़ता आ गई है। इक्के-दुक्के नारियल के पेड़ भी हवा में झूम रहे हैं। उनकी बड़ी-बड़ी चिरी हुई पत्तियों में हवा एक तरंग पैदा कर रही है। कुमार कुण्डू, छोटा सा स्टेशन जहाँ कि मेल ट्रेन रुकती नहीं, के बाद नारियल के पेड़ों की संख्या क्रमशः बढ़ती ही जा रही है। कच्चे मकानों की जगह यहाँ पक्के मकानों ने ले ली है। बीच-बीच में एकाध कच्ची मिट्टी के घर भी नवीनता के बीच में प्राचीनता की तरह दिखाई पड़ जाते हैं। पक्के मकानों की रेलिंगों पर रंग-बिरंगी साड़ियां सूख रही हैं। उनके छोर इधर-उधर हिल रहे हैं। मानो अपनी सौरभ को हवा के अणु-अणु परमाणु में मिश्रित कर रहे हों। गाड़ी कलकत्ते के करीब आ गई।

दोनों तरफ के खेतों में केले के बागीचे हैं। साग सब्जी की बाड़ियां हैं। किशोर को यह सब देखकर एक सुखद स्फूर्ति मिली, एक नवीन चेतना मिली।

: ४ :

कलकत्ता उसे कभी अच्छा नहीं लगता। एकान्त प्रिय किशोर को कलकत्ते के हायहुल्लड़ से हमेशा विरक्ति सी है। सिर्फ खड़गपुर की गाड़ी के लिए जितनी देर प्रतीक्षा करनी पड़ी। किशोर उतनी देर स्टेशन पर रुका।

खड़गपुर जाने वाली गाड़ी में भीड़ काफी थी। हावड़ा स्टेशन से ही प्रत्येक गाड़ी बदल कर जाती है। दैनिक भीड़ विशेष नहीं होती। हाट वाले दिन तो गजब की भीड़ होती है। आज हाट वाला दिन था। किन्तु किशोर को जगह अच्छी ही मिल गई। वह अगर चाहता तो बिस्तर भी लगा सकता था। लेकिन किशोर उन आदमियों में से नहीं था जो

लोग बेमतलब ही सीट पर पैर फैला कर पूरी सीट पर एकाधिपत्य जमा लेते हैं। चाहे नींद लेने की उन्हें जरूरत हो या नहीं। समान को ऊपर की बर्थ पर रख कर नीचे की सीट पर एक आदमी के लायक जगह में ही अपना रूमाल बिछाकर वह नीचे चाय पीने उतर आया। गाड़ी छूटने में अभी काफी देर थी। चाय पीकर वह प्लेटफार्म पर टहलता रहा। और गाड़ी छूटने के लिए जब सिगनल की हरी बत्ती जल उठी तब वह ऊपर चढ़ा। ऊपर आकर उसने देखा कि एक अर्द्धवयस्क बंगाली सज्जन बेइतमीनानी के साथ एक सात-आठ वर्षीय लड़की को सीट पर लिटा कर किशोर के बिछाये हुए रूमाल पर आसन जमाये बैठे हैं। आँखें उन्होंने बन्द कर रखीं थीं। शायद ऊँघ रहे हों। या इतने लोगों को खड़े देखकर तथा दूसरे की जगह पर अनधिकार आसन जमाने की चक्षु-लज्जा के कारण आंखें मीची हों। कुछ भी हो आदमी की आँखों में पानी है। सोलहों आने निर्लज्ज अथवा अकृतज्ञ नहीं, यह बात किशोर को मन-ही-मन माननी पड़ी। किशोर ने कहा—"जरा यह रूमाल तो छोड़िए" भले आदमी के कानों में बात मानो गई ही न हो। किशोर ने अब की बार बंगला में कहा—"ओ महाशय (महाशय) सुनते पार छैनना रूमालटा छाँडून देखो।" अबकी बार भले आदमी ने रूमाल नीचे से निकाल कर किशोर के हाथों में बिना किसी संकोच के थमा दिया। भले आदमी ने किशोर की तरफ देख कर पूछा—"आपनी की बंगाली" किशोर ने बंगाली में ही उत्तर दिया—"आपको क्या अन्दाज होता है।"

"सूरत से तो हिन्दुस्तानी लगते हैं। बातचीतों से बंगाली।"

"मैं उत्तर प्रदेश का रहने वाला हूँ।"

"तो बंगला तो अच्छी बोल लेते हैं।'

जवाब में किशोर मुस्करा पड़ा। भले आदमी ने फिर प्रश्न किया—"ऐसी सफाई से बँगला बोलना कहाँ सीखा? सचमुच आपकी भाषा से भ्रम भी नहीं होता कि आप बंगाली नहीं है। सिर्फ आपकी कलाई पर

जो हिन्दी में नाम लिखा हुआ है उसे अगर आप ढंक लेते तो आपको हिन्दुस्तानी कहना मेरे लिए मुश्किल था।"

बचपन के उद्दंडी किशोर ने अपनी कलाई पर नाम लिखवाया था, बड़ा होने पर उसे इसके लिए बड़ा भारी पश्चाताप हुआ। यहां तक इच्छा हुई है कि उस नाम वाली जगह को चाकू से काट दे। किशोर हमेशा लज्जा से इस नाम को कमीज की आस्तीन के नीचे ढका रखता है। लेकिन गाड़ी में चढ़ते वख्त किशोर ने कमीज की आस्तीनें ऊपर को समेट ली थीं। भले आदमी की बात सुन कर उसने समेटी आस्तीनें फिर नीचे को खींच दीं।

किशोर अब तक खड़ा हुआ था। भले आदमी ने जरा खिसक कर कहा—"आइये बैठिए न" किशोर बैठ गया। उन्होंने पूछा—"आप लोग" प्रश्न से मतलब जाति से था। किशोर ने कहा—"ब्राह्मण।" भले आदमी ने कहा—"नमस्कार। में भी ब्राह्मण हूँ।" किशोर ने भी प्रति नमस्कार किया। भद्र पुरुष की आदत चुप बैठने की न थी। उन्होंने फिर प्रश्न किया—"आप लोगों की तरफ कौन-कौन श्रेणी के ब्राह्मण होते हैं?"

"श्रेणी तो मुझे पता नहीं। लेकिन होते कई तरह के हैं।"

"आप कौन ब्राह्मण हैं!" किशोर ने बता दिया। भले आदमी ने गोत्र पूछा। प्रवर पूछा। वेद पूछा। पाद पूछा। शाखा पूछीं। इनमें से एक भी बात का उत्तर किशोर न दे सका। भले आदमी ने कहा—"बंगाल में ही नहीं। सभी जगह ऐकसी हालत है। में समझता था कि बंगाल में ही हमारे नवयुवक गोत्र इत्यादि भूल गये हैं। लेकिन आपके यहाँ भी यही बात है। यह बात आज ही मालूम पड़ी।" यह अर्थ हीन बातें किशोर को अच्छी न लग रही थीं। वह चुपचाप बैठा रहा। और उन्होंने पूर्व काल के ब्राह्मणों की निष्ठा और आचार-विचार आदि को लेकर भाषण दे डाला। उस काल में ब्राह्मण कितने त्यागी थे। कितने संयमी थे। सत्यवादी थे और न जाने क्या-क्या थे; इसकी लम्बी-चौड़ी

तालिका सुना डाली। किशोर के कानों में वे बातें पहुँचने पर भी न पहुँची। भाषण शेष करके उन्होंने पूछा--"आप कहाँ तक जायेंगे?" "चन्द्र कोना रोड।" भद्र पुरुष खुशी से उछल पड़े। मानो चाँद हाथ लग गया हो। बोले—"तब तो हमारा-आपका आखीर तक साथ है।" लेकिन किशोर उनकी उस खुशी में सम्मिलित न हो सका। वह उनकी बातों से तंग आ गया था। फिर प्रश्न हुआ—"वहाँ क्या आपका कोई व्यवसाय है?" "जी वहाँ से काफी दूर श्रीनगर गांव में मेरी राइसमिल है।" भले आदमी कुछ सोच से में पड़ गये बोले—"रामेश्वर बाबू आपके कौन होते हैं?" "मेरे पिता' "ओह तो यों कहिए। मैं श्रीनगर का ही रहने वाला हूँ। रामेश्वर बाबू से मेरी अच्छी तरह जान पहचान है। लेकिन आपको तो कभी देखा नहीं।"

"मैं कभी श्रीनगर गया ही नहीं। देखते कहाँ से" "खैर बाबू अच्छी तरह हैं?"

"जी नहीं। वह अब इस संसार में नहीं रहे।"

"दुर्गा, दुर्गा। बड़े भले आदमी थे। क्या हुआ था?"

किशोर ने बीमारी बता दी।

"सुपाड़ी का व्यवसाय कैसा चल रहा है।"

"उसे वह अपने जीवन में ही समाप्त कर गये।"

"क्यों?"

"वे बहुत बातें हैं।"

भले आदमी ने फिर एक बार रामेश्वर दयाल की मृत्यु पर शोक प्रगट किया। "आह! बड़े भले आदमी थे। सचमुच देवता थे। मैं खड़गपुर में उनके पास कई बार गया था। श्रीनगर जब आते थे तो मुझ से बिना मिले न जाते थे। कितने भाई हैं आप लोग?"

"मैं अकेला हूँ।"

"आपके बच्चे?"

"मैंने शादी नहीं की।"

"शादी नहीं की, क्यों ?"

जवाब में किशोर मुस्करा दिया। अब उन्होंने अपनी रामकहानी सुनाना शुरू की। उनका नाम निरंजन बंदोपाध्याय है। कलकत्ते में एक मारवाड़ी की गद्दी में काम करते हैं। यह लड़की है, इसकी माँ नहीं है। तीन साल हुए गुजर गई। देवी थी, लक्ष्मी थी साक्षात्। फिर लोगों ने न माना पारसाल दूसरी शादी की है।

बात सुनकर किशोर अचंभे में रह गया। भले आदमी की उम्र पचास से किसी हालत में कम न होगी। इस उम्र में शादी की बात से उसे कम आश्चर्य न हुआ। और उस आश्चर्य को दबा भी न सका। पूछ ही बैठा—"इस उम्र में शादी ?" निरंजन बाबू जरा भी संकुचित न हुए। उन्होंने माथे पर तर्जनी उँगली रखते हुए कहा—"भाग्य के लिखे को कौन मेट सकता है ? मेरी तो इच्छा न थी। लेकिन चारों तरफ से आदमी पीछे पड़ गये। गरीब ब्राह्मण की लड़की सयानी हो गई थी। सुयोग वर उसे कहीं मिल नहीं रहा था। जब आकर गिड़-गिड़ाया तो दया आ गई। कन्या-ऋण से उसे मुक्त करना ही पड़ा।"

कन्या-ऋण से मुक्त करने के पवित्र कार्य को सुन कर किशोर को हँसी आ गई। लेकिन हँसी के ऊपर जबरन उसने काबू कर लिया। भले आदमी ने कहा—"इसके अलावा मैंने सोचा कि इतना बड़ा घर सूना रहेगा। बस सिर्फ इसी लिए.........."

बंगाल की भाषा चाहे भिन्न हो। वहाँ का खान-पान और रहन-सहन चाहे भिन्न हो। लेकिन आखिर वे लोग भी तो हिन्दू हैं। हिन्दुओं की कुप्रथा वृद्ध-विवाह का प्रचलन यहीं क्यों बन्द रहे। और अगर ध्यान से देखा जाय तो इसी प्रदेश में उसका ज्यादा रिवाज है। साठ साल के बुड्ढ़े को भी यहां दूल्हा सजने का सौभाग्य मिलता है। उसका सबसे बड़ा प्रमाण यहाँ की विधवाओं की संख्या है। ऐसा कोई ही सौभाग्यशाली घर हो जिसमें एक-आध अल्प-वयस्का विधवा को जीवन का बोझ ढोते

न देखा जाय। इसलिए उस कुप्रथा के आत्मीय जितने अवगुण हैं। वे भी यहाँ स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। जिनको यहाँ के सामाजिक जीवन में प्रवेश करने का अवसर मिलता है। उन्हें इस बात का कटु अनुभव है। बंगाल में ही सिर्फ ऐसी बात हो, और प्रदेशों में न हो, यह बात नहीं है। हो सकता है बंगाल में इसकी अधिकता हो। और जगहों पर न्यूनता। लेकिन हिन्दुओं की यह कुप्रथा कहीं भी बाकी नहीं है। वृद्ध अवस्था में विवाह करके अपने पीछे किसी को आंसू बहाने के लिए छोड़ जाने वाले महापुरुषों का भारत में कहीं भी अभाव नहीं है।

निरंजन बाबू ने कुछ रुक कर कहा—"आपकी राइस-मिल के मुहरी (मुनीम) राजेन्द्र बन्दोपाध्याय मेरे कुटुम्बी हैं। उनकी सारी उन्नति आपके पिता की बदोलत हुई।"

किशोर चुपचाप बैठा रहा। जब तक चन्द्र कोना रोड स्टेशन न आया तब तक निरंजन बाबू कुछ-न-कुछ कहते ही रहे। चन्द्रकोना रोड से लाल मिट्टी की सड़क श्रीनगर तक गई है। सड़क में इतने खार खड्ढे हैं कि श्रीनगर तक मोटर में बैठ कर किसी भले आदमी की हड्डियाँ सही-सलामत रह आयें तो उसे भाग्यवान ही समझिए। रात के ग्यारह बजे गाड़ी चन्द्र कोना रोड पहुँची। मोटरों का सम्बन्ध गाड़ियों से है। इसलिए गाड़ी से उतरते ही मोटर मिल गई। मोटर में भीड़ काफी थी। इसका कारण भी बिना पूछे निरंजन बाबू ने बता दिया—"मंगलवार को छोड़ कर और दिन मोटर खाली ही जाती है। मंगलवार के दिन जब हावड़ा की हाट करके लोग घर लौटते हैं तो उस दिन बड़ी भीड़ होती है।"

सचमुच उस दिन भीड़ बहुत ज्यादा थी। मोटर की छत आगे के मडगार्ड-अगल-बगल खड़े होने की जगह, कहीं भी इंच मात्र स्थान बाकी नहीं था। मोटर चल दी। किशोर की इच्छा थी कि निरंजन बाबू जरा दूर ही बैठें। लेकिन उन्होंने ऐसा होने न दिया। श्रीनगर के मिल-मालिक का परिचय देकर उन्होंने ड्राईवर के पास वाली सीट ही किशोर

के लिए ठीक की और स्वयं भी बिना पूछे किशोर के ही पास पुत्री सहित आ बिराजे ।

मोटर अस्थि-ग्रंथियों को झटके देती हुई आगे बढ़ी । कहीं खेतों और मैदानों के बीच हो कर । और कहीं सुप्त गाँव की तल्लीनता भंग करते हुए । निरंजन बाबू ने प्रश्न किया—"श्रीनगर में आप कितने दिन ठहरेंगे ?"

"लौटने की तो कोई संभावना है नहीं ।"

"तो क्या हमेशा रहने का इरादा करके आए हैं ।"

"हाँ फिलहाल तो ऐसा ही इरादा है ।"

"लेकिन रहेंगे कहां ?" आपकी राईस मिल में तो रहने की जगह है नहीं और रहे राजेन्द्र बाबू, सो उनका घर इतना छोटा है कि उनके बच्चों के लिए ही काफी जगह नहीं है ।"

किशोर कुछ चिन्ता में पड़ गया । बोला—"किराए का मकान ले लूँगा ।"

इस बात पर निरंजन बाबू इतनी जोर से हँसे कि इससे बड़ी हँसी की बात मानों दुनियां में और कोई न हो । बोले—"बाबू साहब यह क्या कोई कलकत्ता है, या खड़गपुर है जो किराये का मकान मिल जायगा ?" फिर उन्होंनें कहा—"मोटर रात के तीन बजे वहाँ पहुँचती है । आज की रात इस गरीब के घर पर ही विश्राम करिए ।" किशोर को क्या आपत्ति हो सकती थी बोला—"अच्छा । आज की रात आपको ही कष्ट दूँगा ।" इतनी देर बाद निरंजन बाबू को बोलने का सामान मिला । बोले—"कष्ट ? इसे आप कष्ट कह रहे हैं बाबू साहब ! अतिथि सत्कार में भला कष्ट कैसा ?" और अतिथि-सत्कार के ऊपर उन्होंने बोलना शुरू किया । अतिथि सत्कार के ऊपर जब उनकी ज्ञान शक्ति शेष होने को आई तो अतिथि सत्कार का सम्बन्ध उन्होंने धर्म से जोड़ दिया । धर्म के ऊपर कुछ बोले, फिर धर्म से अधर्म का सूत्र स्थापित करके उन्होंने अधर्मियों को गाली सुनाईं । फिर सारा दोष राज्य के

ऊपर लाद कर सरकार को भी सुनाने से उन्होंने न छोड़ा। किशोर कभी बैठा-बैठा ऊँघता रहा, कभी उनकी ऊल-जलूल अस्त-व्यस्त बातों को सुनता रहा। इसी तरह मोटर अपनी सारी सवारियों को लाल धूल से ढंक कर श्रीनगर के मोड़ पर जा रुकी। लड़की तब तक निरंजन बाबू की गोद में सो गई थी। बड़ी मुश्किल से लड़की को जगा कर उन्होंने कहा—"यह भी मेरे लिए एक मुश्किल है। यह मेरे अलावा रहती ही नहीं किसी के पास। मैं कहता हूँ कि नई माँ के पास रह। लेकिन यह सुनती ही नहीं।"

लड़की को जमीन पर खड़ा करके उन्होंने किशोर का सामान उतरवाया। सामान काफी हल्का था। एक हल्का सा बिस्तरबंद और एक छोटा सा सूटकेस।" इतनी छोटी सी जगह में कुली मिलने की भी तो कोई संभावना नहीं थी। आसानी से किशोर ने दोनों चीजें दोनों हाथों में ले लीं। शिष्टता के नाते निरंजन बाबू ने सहायता करने की प्रार्थना की। लेकिन धन्यवाद देकर किशोर ने उनसे मना कर दी। भले आदमी का बातें करने का जोश अब अपेक्षाकृत शान्त था। वह प्रायः चुपचाप ही रास्ता चल रहे थे और चलते चलते अपने मन की एक समस्या से लड़ रहे थे। एक बात उन्होंने पहले नहीं सोची थी। रास्ता चलते चलते वह याद आ गई। नवयुवक अविवाहित किशोर और उनकी नवविवाहिता अल्प-वयस्क नववधू। वह सोच रहे थे कि जब किशोर आज की रात को उनके यहाँ ठहरेगा तो दो चार दिन और भी उसे रहना पड़ेगा। कम से कम जब तक रहने के लिए दूसरा मकान उसे न मिल जाये। क्या इस स्थिति में छोड़कर जब वह परसों ही कलकत्ते लौट जायेंगे? तो अकेले घर में इन दो तरुण और तरुणी का अकेले रहना कहाँ तक उचित है। और जैसे ही इसके औचित्य और अनौचित्य पर उनका ध्यान गया। उनका सारा आतिथ्य सत्कार का भाव काफूर हो गया। वह चलते-चलते ठिठक गए और पीछे की ओर किशोर की तरफ मुखातिब होकर बोले—"एक काम न करिए। यहां पास में ही

एक आश्रम है। आज की रात यहीं ठहर जाइये।" किन्तु बात कहते-कहते वह खुद भी झेंप महसूस कर रहे थे। उस झेंप के बोझ को थोड़ा सा हल्का करने के लिए और भी उन्हें एक वाक्य जोड़ना पड़ा—"मेरा घर यहां से काफी दूर पड़ेगा और सामान भी आपके साथ काफी है। इसीलिए। नहीं तो और कोई बात नहीं थी।"

किशोर ने उनके इस प्रस्ताव में भी किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की बोला—"वहां जगह मिल जायेगी ?"

"हाँ हाँ खूब शौक से। यह आश्रम सब के लिए रात दिन खुला हुआ है। आज की रात ही नहीं आप चाहें तो वहाँ हमेशा रह सकते हैं। अथवा जब तक दूसरा मकान न मिले तब तक।"

बिना किसी प्रकार का विरोध किए किशोर राजी हो गया। भले आदमी जरा पीछे को लौटे। और दूसरी पगडंडी पकड़ कर थोड़ी देर बाद ही उन्होंने आश्रम पर किशोर को ला खड़ा किया। बाहर से आवाज दी—"घटकदा ओ घटकदा" लेकिन घटकदा शायद गहरी निद्रा में थे। नींद न खुली। कई आवाजें देने पर भी जब भीतर से कोई आवाज न आई तो भले आदमी ने किवाड़ों की संध में दो उंगलियां डाल कर संकल खोल डाली। संकल गिरने की आवाज के साथ-साथ टार्च का प्रकाश और घटकदा का प्रश्न दोनों एक साथ आए—"कौन ?" भले आदमी ने अपना नाम बता कर कहा—"एक अतिथि साथ में हैं। रात को रहना चाहते हैं तुम्हारे यहां।" भीतर से प्रेम पूर्ण बुलावा आया—"भीतर भेज दो भीतर भेज दो। स्वागतम् ! सुस्वागतम् !" भले आदमी ने किशोर से भीतर जाने को कहकर खुद इजाजत मांगी। और साथ-साथ वायदा किया कि कल जिस वक्त उन्हें समय मिलेगा वह किशोर से मिलने आयेंगे। इजाजत सांत्वनाप्रद थी। किन्तु पिछला वायदा कोई खास दिलचस्पी न रखता था। उन्हें विदाई देकर मानों घंटों से फौलादी पंजों में जकड़ी हुई उसकी गर्दन मुक्त हो गई। किशोर ने आदमी देखे थे लेकिन इतना बातून आदमी उसने कभी न देखा था।

उनसे मुक्त होकर उसने एक ठंडी सांस ली। अन्दर के घर वाले ने ज्यादा बातें करना अनुचित समझा। सोने का इन्तजाम ठीक करके उन्होंने कहा—"गाड़ी के सफर से आप थके हुए हैं। आराम से सोइये सुबह बातें होगी" इस समय किशोर को इसी चीज की आवश्यकता थी। दो दिन के जागरण और गाड़ी मोटर की थकान से किशोर की आँखें नींद से झुकी पड़ रहीं थीं। बिस्तर पर लेटते-न-लेटते वह गहरी निद्रा में डूब गया।

: ५ :

सुबह देर से आँखें खुलीं और आदत के अनुसार उठते ही वह नित्य-कर्मों के समापन में लग गया। वहाँ से लौट कर आया तो घटक ने पूछा—"चाय का वक्त तो रहा नहीं। चाय पीयेंगे क्या ?"

"बनी हुई होगी तो पी लूँगा। मेरे लिए बनाने की तकलीफ करने की जरूरत नहीं।"

—"बनी हुई ही समझिए। पत्तियाँ तो आसाम से बन कर आई हैं और दूध गाय के थन से। रही पानी की बात सो स्टोव को एक दियासलाई की तीली की प्रतीक्षा है।" कह कर घटक हँस पड़ा। इस छोटे से मज़ाकिया जवाब ने मानो किशोर को उसके निकटतम खींचकर रख दिया। तकल्लुफ करने को कुछ रह नहीं गया। फिर भी बोला—"आपको तकलीफ न होगी।" "पहले जो नाम गिनाये हैं, उन सब वस्तुओं के संयोग करने को अगर आप तकलीफ कहें तो जरूर होगी।"

किशोर ने फिर कोई जवाब न दिया। जवाब था ही क्या। इस आदमी की आँखें, वाणी, मुद्रा सभी में सरलता थी। और मिलन-सारता की पुट थी। घटक ने कहा—"लेकिन जनाब सोंगो-पोंग-हीन

तरल पेय ही आपको दे सकूँगा। साथ में कुछ ठोस पदार्थ का प्रलोभन मन में न रखिए।"

किशोर ने भी जवाब दिया मजाक के ही रूप में। बोला—"न रखूँगा। किन्तु जिस ठोस का तरल में मिश्रण करना है? उसका भाग जरा ज्यादा रखिए।"

"क्या शक्कर?"

"उसके अलावा और ठोस तत्व इसमें क्या है? मेरे खयाल से भारतीयों में चाय का इतना अधिक प्रचलन होने का श्रेय ही इस ठोस तत्व को है।"

"बात बहुत कुछ अंशों में सत्य है आपकी। चाय के आविष्कर्ता से चाय बनाने की रीति का जिस महापुरुष ने आविष्कार किया था वह श्रेष्ठ है। किन्तु जिस ठोस का नाम आपने गिनाया उस ठोस से भी एक बड़ा ठोस है, उसे भी श्रेयहीन नहीं कहा जा सकता।"

"वह क्या?"

"प्रचार यह प्रचार का युग है, यह तो आपको मानना ही पड़ेगा। कितनी भी हानिप्रद वस्तु हो। प्रचार ठीक ढ़ंग से करिये, और निश्चिन्त होकर करिये, कि वह चल जायगी।"

प्रचार के ऊपर उनके इस आक्रोश में किशोर को कोई आपत्ति नहीं थी। इसलिए कोई जवाब नहीं दिया। घटक ने चाय बनाई और शीशे के एक बड़े गिलास में सारी-की-सारी चाय डालकर किशोर के सामने रख दी। किशोर ने पूछा—"क्या इतनी सारी चाय को मैं अकेला ही पीऊँगा?"

"क्यों हर्ज क्या है? ठोस वस्तु शक्कर की कुछ अधिक मात्रा उदर में पहुँचेगी। पीजिए।"

"नहीं। यह बहुत ज्यादा है। इसमें से आधी आप ले लीजिये।"

"मैं पी चुका। फिर भी अगर आपकी इच्छा है कि मैं कुछ पीऊँ, तो मैं जरूर पीऊँगा। लेकिन चाय नहीं। मेरे पीने की चीज दूसरी है।

आप पीना शुरू करें। मैं अपने पीने की चीज लिए आता हूँ।" और वह अन्दर के कमरे में घुस गये। वहाँ से लौटे तो उनके हाथ में एक छोटी सी चिलम थी। एक कागज की पुड़िया और एक चाकू। कागज की पुड़ियाकिशोर को दिखा कर बोले—"जानते हैं यह क्या है?" चिलम से किशोर को ठीक अन्दाज ही हो गया था। बोला—"गाँजा"

"अहं हं हं। गाँजा मत कहिए, गाँजा मत कहिए। कहिये गजेन्द्र मोक्ष। जिन्होंने मुझे पीना सिखाया था वह मेरे एक बिहारी गुरु थे। वह कहा करते थे 'जिसने न पी गाँजे की कली। उस लड़के से लड़की भली' और गजेन्द्र मोक्ष नाम इसका कैसे पड़ा जानते हैं?"

पौराणिक गजेन्द्र मोक्ष की कहानी तो कुछ-कुछ किशोर ने सुन रखी थी। किन्तु गाँजे के इस सुन्दर नामकरण का इतिहास वह जरा भी नहीं जानता था। इसलिए सिर हिलाकर उसने बताया कि नहीं जानता।

घटक ने कहा—"यह नाम भद्र समाज ने दिया है। इसके बारे में एक किस्सा है। सुनिए सुनाता हूं। एक जमींदार थे। बड़े आदमी तो थे ही, साथ-साथ शिक्षित भी। गाँजा पीने का शौक था, लेकिन छुप कर पीते थे। अपने किसी भी मित्र को पता तक न लगने देते थे। एक बार ऐसा हुआ कि उनके एक मिलने वाले आये। घंटों बैठे बातें करते रहे। उठने का नाम तक न लिया। इधर नौकर अन्दर गाँजे की चिलम तय्यार करके घंटों बैठा रहा। हारकर नौकर बाहर निकला और अपने मालिक से सांकेतिक भाषा में बोला—गजेन्द्र बाबू कपड़े वगैरा पहनकर तैयार बैठे हैं, कोयलाराम बाबू गुस्से से लाल हो उठे हैं। आप एक बार अन्दर आइये। मतलब समझे या नहीं समझे। गजेन्द्र बाबू यानी गाँजे की चिलम साफी ओढ़कर तैयार है। और कोयलाराम बाबू अर्थात् कोयला जलकर राख हो उठा है। उसी दिन से भद्र समाज ने इसका नाम रखा गजेन्द्र और बाद में मोक्ष शब्द किसी मनचले ने साथ में जोड़ दिया।"

सुनकर किशोर को हँसी आ गई। साथ-साथ उसने मन-ही-मन

मान लिया कि कल की गाड़ी में मिले हुए निरंजन बाबू की तरह घटक भी कम बातून नहीं है। लेकिन निरंजन की तरह घटक की बातें नीरस नहीं हैं, उनमें मजा है। हँसने का माद्दा है। एक और चीज किशोर को पसन्द आई, वह थी घटक साहब की सरलता। कल से अभी तक उन्होंने किशोर का जरा भी परिचय प्राप्त करने की कोशिश न की। फिर भी उन्होंने किशोर से बातें इस ढंग से की मानो वह वर्षों से उनका परिचित हो। साथ-साथ गाँजा पीने की अपनी आदत को भी किशोर से छुपाने का उन्होंने ज़रा भी प्रयास न किया। मानो यही उनके चरित्र की विशेषता हो। जो कुछ है, चाहे वह बुरा हो अथवा अच्छा लेकिन गोपनीय कुछ भी नहीं। सब कुछ साफ़ है।

घटक इस समय हथेली पर गाँजा मल रहे थे। बड़े मनोयोग के साथ। मानो दीन दुनिया की कोई फिक्र ही न हो। फिर मले हुए गाँजे को दरवाजे की चौखट पर रखकर टुकड़े-टुकड़े काटा। इसके बाद फिर मला और चिलम में सजाकर दियासलाई किशोर के हाथ में थमादी। बोले—"जरा दियासलाई दिखा दीजिए।" दियासलाई घिसकर किशोर ने चिलम में लगादी। उकड़ूँ बैठकर उन्होंने कश लगाने शुरू किए। पहले धीमे-धीमे और फिर आखिरी कश शरीर को ज़रा ऊँचा उठाकर जोर से खींचा। और फिर मुँह से एक साथ बहुत सा धूम्र त्याग करते हुए चिलम किशोर की तरफ बढ़ा दी। किशोर ने हँसकर उत्तर दिया—मैं नहीं पीता।"

"नहीं पीते ! पिया करिये। दिल जलाने की आदत इसी से डाली जाती है। और जलने के बाद में ही अच्छा लगता है।"

घटक ने दुबारा चिलम मुँह से लगाई और फिर कश लगाया किशोर ने पूछा—"आपके अलावा और भी कोई सन्यासी रहते हैं यहाँ।"

बात सुनकर घटक को कुछ ताज्जुब हुआ। बोले—"सन्यासी ! क्या मैं सन्यासी जैसा लगता हूँ !" किशोर उत्तर न दे सका। क्योंकि उसने बचपन से अनेक बंगाली सन्यासी देखे हैं उनकी बड़ी-बड़ी

संस्थाएँ देखी हैं। और इस बात की उसे अच्छी जानकारी है कि कम-से-कम बंगाल के सन्यासियों के लिए यह आवश्यक नहीं कि वे खान-पान इत्यादि के मामले में उदासीन रहें। बढ़िया पोशाक, सिल्क का रंगीन कुर्ता, बढ़िया रंगीन तहमद, पैरों में फ्लैक्स के शू, अथवा न्यू कट, अगर जरूरत हो तो आँखों पर कीमती फ्रेम का चश्मा और अगर कपड़े बिल्कुल सफेद हों तो भी कोई बात नहीं। इसलिए घटक के साधारण वेश से सन्यासी न होनें का कोई मजबूत प्रमाण बंगाल के सिद्धान्त से न मिलता था। किशोर ने पूछा—"क्या आप सन्यासी नहीं हैं ?"

"यही तो मैं पूछता हूँ। आपको मेरे सन्यासी होने का शक कैसे हुआ ? गाँजा पीता हूँ इसलिए ?"

"नहीं। कल जो मुझे यहाँ पहुँचा गये थे उन्होंने इस जगह का नाम आश्रम बताया था।" बात समाप्त होते-न-होते घटक जोरों से हँस पड़े। बोले—"अरे यह बात। हाँ लोग इसे अब भी आश्रम ही कहते हैं।"

"क्या इस जगह पहले कोई आश्रम था ?"

"हाँ। मैंने ही इसका नाम आश्रम रखा था। विधुर-आश्रम।"

"क्या आश्रम ?"

"विधुर आश्रम।" किशोर हँसा बोला—"विधवा-आश्रम तो बहुत से देखे हैं। लेकिन 'विधुर-आश्रम' आज ही सुना। नाम सुन्दर है।" घटक ने उदास होकर कहा—"लेकिन सुन्दर असुन्दर अब तो कुछ भी नहीं रहा। यहाँ के एस. डी. ओ. का एक दिन इस गाँव में पदार्पण हुआ। आदमी कुछ चिड़चिड़े स्वभाव का था। इस आश्रम के ऊपर लगा हुआ साइनबोर्ड पढ़कर बहुत बिगड़ा। मुझे बुलाकर कहा, इस अश्लील नाम का साइनबोर्ड हटा दो। समझ में न आया कि क्या अश्लीलता थी उस नाम में। लेकिन लाचार था। करता क्या ? हटाकर रख दिया। इस बात को बहुत दिन हो गये हैं लेकिन अब भी लोग इसे आश्रम के नाम से पुकारते हैं।" कुछ देर घटक चुप रहे। फिर

बोले—"खैर यह तो हुआ, लेकिन अभी तक आपका परिचय नहीं जान सका हूँ।"

किशोर ने अपना परिचय बताया। इस गाँव में आने का अपना उद्देश्य बताया। किराये के मकान की कठिनाई उनके सामने रखी। सब सुनकर घटक ने कहा—"कोई बात नहीं। जब तक आप इस गाँव में रहें, आश्रम में रह सकते हैं। मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। लेकिन आपको शायद यह जगह पसन्द न आये। मकान बहुत पुराना है न! जब से बना है तब से जरा भी परिवर्तन इसमें नहीं हुआ।"

किशोर नें पूछा—"आप अकेले ही रहते हैं यहाँ?

"और दुकेला कहाँ मिलेगा। असल में इस गाँव में मेरा घर नहीं है। मैं तारकेश्वर के पास के एक गाँव का रहने वाला हूँ। यह घर मेरे मामा का था। मामा को मरे आज करीब पन्द्रह वर्ष हो गये। तब से मैं यही हूँ। अपना गाँव तो मैंने बहुत दिन पहले छोड़ दिया था। या यों कहिये कि छोड़ देना पड़ा था।

"छोड़ देना पड़ा! क्यों?"

"वे बहुत सी बातें हैं। एक मजेदार कहानी है। फिर कभी सुनाऊँगा।"

"आपके गाँव में कोई हैं आपके?"

"कोई नहीं। सबको टिकिट कटाकर मैं अकेला बचा हूँ। भाई-बहन तो कोई न मेरा था ही और न पिता जी का। पिता जी छः महीने का छोड़कर मर गये। माँ बचीं। चौदह साल की उम्र में वह चल बसीं। फिर करीब दो तीन साल तक गाँव में रहा। लेकिन बड़ा ऊधमी था मैं। एक ऐसा ऊधम कर डाला कि फिर गाँव में रहना मुश्किल हो गया। वह कहानी फिर किसी दिन सुनाऊँगा। गाँव छोड़कर कुछ दिन कलकत्ते के आस-पास रहा। फिर बिहार यू. पी. राजस्थान, दिल्ली, बौम्बे, कराची न जाने कहाँ-कहाँ मारा फिरा और फिर एक दिन कराची के एक जहाज में अपने को एक खलासी के रूप में नौकर होकर विदेश चला

गया। लेकिन जम वहाँ भी न सका। और दो साल बाद वापिस भाग आया।"

कुछ देर चुप रहकर घटक ने कहा—"जब मैं छोटा था किशोर बाबू! तो एक दिन एक ज्योतिषी को माँ ने मेरा हाथ दिखाया था। ज्योतिषी ने मेरा हाथ देखकर बताया कि मेरा हाथ बहुत अच्छा है। दोनों हाथ भरे रहेंगे। कभी खाली न रहेंगे। लेकिन मैं इतना उत्पाती था कि माँ को शायद ज्योतिषी की बातों पर विश्वास न हुआ। लेकिन आज जिन्दा होतीं तो देख लेतीं कि ज्योतिषी की भविष्यवाणी कितनी सफल हुई है। सचमुच मेरे हाथ भी खाली न रहे। एक हाथ में बिस्तरा और एक में सूटकेस लेकर न जाने कहाँ-कहाँ घूमता फिरा हूँ। और आज भी टूटे-फूटे घर और दस बीघा जमीन का उत्तराधिकार पाकर स्थिर होकर बैठ गया हूँ। तो भी इस हस्तरेखा विचारक की भविष्यवाणी झूँठी नहीं हो पाई। दोनों हाथों में अधिकांश ही गाँजे की भरी हुई चिलम रहती है।"

"गाँजा क्या आप रोज पीते हैं?"

"रोज पीने की न पूछकर यह पूछिए कि दिन में कितनी बार पीता हूँ?"

किशोर को प्रश्न पूछने की अब जरूरत न थी। उत्तर उन्होंने बिना पूछे ही दिया—"अगर आप पूछें तो मैं आपको क्या जवाब दूँगा जानते हैं! छः बार, सात बार, आठ बार, दस बार और किसी-किसी दिन इससे भी ज्यादा।"

"इतना गाँजा पीते हैं आप?"

"हाँ"........"क्यों"

"क्यों का उत्तर उतना सरल नहीं है जितना कि पूछना है।"

"यह तो शरीर के प्रति हानिप्रद है।"

"हाँ शायद! लेकिन इसके पीने वाले लाभप्रद ही बताते हैं।"

किशोर चुप रहा। घटक भी कुछ देर चुप रहकर बोला—"न तो

इसके पीने वालों ने और न इसके व्यवसायियों ने कभी भी विज्ञापन-बाजी की तरफ़ ध्यान दिया। देते और कुछ पैसा खर्च करके बड़े-बड़े डाक्टरों से प्रशंसापत्र हासिल कर लेते तो इसका भी अच्छा-खासा प्रचार होकर रहता। जैसा कि स्निग्ध पदार्थ वैजीटेबिल और स्फूर्ति-दायक चाय मशहूर हो गई।

घटक कुछ देर चुप रहे। फिर बोले—"किशोर बाबू! दुनियाँ में क्या हानिप्रद है और क्या लाभप्रद, इसे समझना बड़ा कठिन है। हानि और लाभ की परिभाषा जितनी हम लोग सरल समझते हैं, उतनी है नहीं। इसके साथ एक बात और है किशोर बाबू! दुनियाँ में कुछ लोग होते हैं वे हिसाब किताबी सभी बातों में अपना लाभ देखकर ही कदम रखते हैं। और कुछ होते हैं भावुक प्रकृति के लोग, वे इस वास्तविक जगत के वास्तविक मनुष्यों से कुछ भिन्न होते हैं। उनकी सतह भी इनकी सतह से भिन्न होती है। एक होते हैं उस ढंग के जो अपने आँगन में साग-सब्जी बोते हैं और एक होते हैं उस ढंग के जो अपने आँगन में फूलों के पौधे लगाते हैं। इनमें से आप किसे फायदे की सोचने वाला कहेंगे। किशोर बाबू कुछ होते हैं जो खोने में पाते हैं। और कुछ होते हैं जो खाने को ही पाना ससझते हैं। किसी को मज़ा है रोने में और किसी को मजा मिलता है हँसने में। किसी को मिलन पसन्द है सुखान्त साहित्य पसन्द है और कोई पसन्द करता है वियोग और दुखान्त साहित्य को।"

किशोर ने कोई जवाब न दिया। चुपचाप सुनता रहा। पाँच मिनट पहले के घटक में और अबके घटक में मानो ज़मीन आसमान का अंतर हो। या शायद घटक वही हो उसके विचार भी वही हों। यह केवल मात्र गजेन्द्र मोक्ष का ही प्रभाव हो। फिर भी किशोर को घटक की बातों में मज़ा आया। और रोज़-रोज़ आता ही रहा। करीब सात-आठ दिन इसी तरह निकल गये। किशोर के लिये मानो इस अनजान अपरिचित प्रदेश में मन बहलाव की एक सामग्री मिल गई। और घटक

को मिल गया एक भक्त श्रोता। किशोर दिन-प्रति-दिन घटक की बातों में दिलचस्पी दिखाने लगा। कभी वास्तविक घटक की बातों में और कभी गजेन्द्र मोक्ष की कृपा पात्र घटक की बातों में। मानो घटक दो हों।

दिन कटते गये और शायद कटते भी जाते। किशोर की दुनिया घटक और राइस मिल तक ही सीमित रहती। न उसमें आवेश का ही कोई क्षण आ पाता और न उच्छ्वासों की वाष्प ही आ पाती। किन्तु जीवन में एक घटना घट गई और उस घटना ने किशोर के सीमित जीवन को मानो असीमित बना दिया। किनारों के बीच में सीमित नदी का प्रवाह मानो आकस्मिक बाढ़ का वेग पाकर सीमित किनारों की सीमा लाँघ कर दूर-दूर तक फैल गया।

: ६ :

एक दिन सुबह उठकर घटक ने किशोर से कहा—"यहाँ के देहातों की पंचायतें कभी देखीं है आपने ?"—"नहीं" "तो आज देखिये। आज मेरे इस आश्रम को ही पंच-भगवानों की चरण धलि पवित्र और पुनीत करेगी।"

"कैसी पंचायत है आज ?"

"जैसी पंचायतें हुआ करती हैं। पंचों को भी तो कुछ बैठे-ठाले खुराक चाहिये। बैठे-बैठे बिना किसी सुरुचिपूर्ण स्वाद के पाये उनका मुँह भी तो बेस्वाद सा हो उठता है।"

"तो आज के इस मुख-रोचक स्वादपूर्ण पदार्थ बनाने का सौभाग्य किसे प्राप्त हो रहा है ?"

घटक जरा मुस्कराये। बोले—"वह एक औरत है। जाति के हिसाब से औरत उम्र के हिसाब से लड़की।"

"और उसकी रोचकता" बात सुनकर घटक जरा हँसे बोले—

"रोचकता। यानी कि अपराध। अपराध तो एक नहीं एकाधिक हैं।

सुना है कि वह उच्छृखंल है। कोई शृंखला से उसे बाँध नहीं सकता। सुनते हैं वह असीम है। कोई सीमा उसे सीमाबद्ध नहीं कर सकता। सुनते हैं वह अबाध्य है। कोई उसे बाँध नहीं सकता। और उसकी इन इतनी सारी तपस्याओं ने एक साथ मिलकर सबको अपनी मुट्ठी की सीमा में बद्ध करने वाले पंचों का सिंहासन हिला ही नहीं डाला, बल्कि उसमें एक जोर का धक्का दे मारा है।"

"किन्तु उसका उच्छृखंल, अबाध और असीम रहना तो स्वाधीनता का द्योतक है। इसमें दोष क्या देखते हैं वे लोग?"

"स्वाधीनता हर सूरत में निर्दोष और निष्कलंक नहीं है किशोर साहब! सामूहिक स्वाधीनता ही ठीक है। किन्तु व्यक्ति की स्वाधीनता से तो अनेक तरह की असुविधाएँ खड़ी हो उठेंगी। व्यक्तियों के व्यक्तित्व का एक अश आदर्शवादी हो सकता है। किन्तु सम्पूर्ण आदर्शवादी नहीं हैं। व्यक्ति तो ऐसी अनेक वस्तुएँ अपने व्यक्ति के लिए चाहता है जो समाज के लिए हितकर नहीं हैं। इसलिए ये पंच नहीं चाहते कि कोई उनकी सीमाओं की शृंखलाओं को तोड़ डाले।"

"पंच नहीं चाहते। लेकिन आप क्या चाहते हैं?"

"मेरी बात पूछते हो किशोर तो मैं इस दुनियाँ का आदमी ही नहीं। वास्तविक दुनियाँ के ठोस धरातल पर खड़े रहने की ताकत मेरी कहाँ है। मेरा धरातल तो दूसरा है जो युक्ति और तर्क से बहुत दूर है। इसलिए किशोर बाबू जिस धरातल पर मैं हूँ ही नहीं, उस धरातल की बातों में मुझे कोई ख़ास दिलचस्पी नहीं है। फिर भी पंच मेरे ऊपर विश्वास करते हैं। और जिसका आज विवाह होगा, वह भी मुझे अपना समझती है।"

"तो क्या वह वास्तव में दोषी है ?"

इस आकस्मिक प्रश्न के लिए घटक प्रस्तुत न था। इसलिए कुछ क्षणों तक चुप रहा। फिर उसने गम्भीर और संयत वाणी में कहना शुरू किया—"आप सच बात जानना चाहते हैं किशोर बाबू ! किन्तु सच मैं कुछ आपको बता न सकूँगा। सत्य का सम्पूर्ण जानना बड़ा कठिन है। जो भी कोई जानता है वह एक अंश को ही जानता है। उस लड़की के एक अंश को मैंने पहिचाना है और एक अंश को पंचों ने। जिस तरह मैंने उसे समझा है, पंचों ने उस ढंग से उसे नहीं समझा। पंच क्या, उस ढंग से उसे कोई भी नहीं समझ सकता। वह बड़ी विचित्र है। ठीक अपनी बातों की ही तरह विचित्र। वह यहाँ की रहने वाली नहीं है। इस गाँव से उसका कोई सम्बन्ध भी नहीं है। करीब दो वर्ष हुए आकस्मिक तूफान की तरह वह इस गाँव में आई। गाँव की प्रत्येक वस्तु को उसने झकझोर और तोड़कर रख दिया। जो कुछ उपस्थित था उसे अस्त-व्यस्त कर डाला। इस गाँव में आकर जिसने पंचों का भय नहीं किया, उसमें वह पहली थी। फिर भी किशोर मैं जानता हूँ, विचित्र होते हुए भी वह बड़ी निरीह है। बड़ी एकाकिनी है। लोग उसे समझ नहीं सके। कोई उसे समझ नहीं सकेगा। मैंने भी उसे कितने अंशों में समझा है, नहीं जानता। लेकिन पूर्णतया अभी मैं नहीं समझ पाया हूँ, यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। फिर भी किशोर, मैं उसका पक्ष नहीं लूँगा।"

युवक किशोर के कच्चे मस्तिष्क ने उफ़ान लिया—"पक्ष नहीं लेंगे। यह इन्सानियत है ? मानवता है ? एक अकेली अबला नारी के ऊपर पूरे गाँव के पंच एक होकर अत्याचार करेंगे। और आप सुनते रहेंगे।"

घटक ने कोई जवाब नहीं दिया। वह एक मुस्कान मुस्कराता रहा। जिसकी परिभाषा किशोर की समझ में न आई। किशोर ने उत्तेजित होकर कहा—"लेकिन मैं उसका पक्ष लूँगा, चाहे इस दर प्रदेश

के सारे-के-सारे आदमी मेरे दुश्मन ही क्यों न हो जाँय। एक अबला के ऊपर होता अत्याचार मैं कभी भी आँखें बन्द रखे नहीं देख सकता। आप उसे अत्याचार नहीं मानते ?" घटक ने शान्त स्वर में ही उत्तर दिया—"मैं तुम से पहले ही कह चुका किशोर कि क्या अत्याचार है। और क्या सत्याचार है। इसके बारे में मैं कुछ भी नहीं जानता। पंचों ने भी उसके अंश का परिचय पाया है। मैंने भी उनकी तरह एक अंश का परिचय पाया है। सत्य क्या है मैं स्वयं नहीं जानता। पारसाल की ही बात है। गाँव में चेचक फैली। बीसियों आदमी चल बसे। पचासों पीड़ित हुए। गाँव-का-गाँव उजाड़ सा हो गया। कोई किसी की बात पूछने वाला तक न रहा। लोग चेचक का नाम सुनते ही ऐसे भागते जैसे साक्षात् मौत के डर से। मेरे शरीर में भी चेचक के दाने निकल आयें। डाक्टर मिलना मुश्किल था। और देख-रेख के लिये आदमी मिलना और भी मुश्किल। लोग अपने कुटुम्बी और आत्मियों को छोड़कर भाग रहे थे। मेरी देखभाल की किसे गरज थी। लेकिन जिसे गरज थी, वह आई। उस समय मुझे होश भी न था। लेकिन बीमारी जब जरा कम हुई तो मैंने देखा कि उस लड़की ने मेरी सेवा-शुसुसा का सारा भार अपने ऊपर उठा लिया है। बीमारी की हालत में मेरी आँखों में आँसू आ गये। उस समय उससे कुछ भी नहीं कह सका, आज तक भी नहीं कह सका हूँ। लेकिन किशोर जानता हूँ कि मेरा बड़े-से-बड़ा आत्मीय भी उतना नहीं करता, जितना उसने किया। किशोर मैंने पहले ही कह दिया लोग पूर्ण सत्य नहीं देखते-देखते हैं एक अंश को। बर्बर-से-बर्बर मनुष्य भी कुछ विशेष व्यक्तियों के प्रति दयावान है। कठोर-से-कठोर हृदय वाले के मन में भी अन्तः सलिला सरस्वती का दया स्रोत बहता है। इस बात को सब नहीं जानते। उस बीमारी के बाद उससे बैठकर बहुत सी बातें भी कीं। उस समय मैंने उसका परिचय जाना कि वह कितनी एकाकिनी है, कितनी निरीह है।"

किशोर ने कहा—"फिर भी आप उसका पक्ष नहीं लेंगे !"

"नहीं ! उसका पक्ष लेकर उसकी कृतज्ञता के ऋण को चुकाने की कोशिश में नहीं करूगा किशोर !"

किशोर ने कोई जवाब न दिया। बहुत देर तक वह चुपचाप बैठा रहा। इसके बाद अचानक ही उसने तल्लीनता भंग करते हुए कहा—"ताज्जुब इस बात का है कि इस बीसवीं सदी के मध्य युग में भी यह सड़ा-गला समाज और उसका कठोर शासन टिका हुआ है।"

"समाज तो हर हालत में रहेगा किशोर बाबू ! यह पुराने विचारों का समाज है। इसे अगर ख़त्म भी कर दिया जाय तो भी एक आधुनिक विचारों के समाज का निर्माण होगा। उसके भी कुछ अपने नवीन नियम होंगे। इसकी भी अपनी एक नवीन सीमा होगी। और उस सीमा को लाँघने वालों के लिए एक नया शासन भी होगा। जब तक मानव रहेंगे और उनकी सामूहिकता रहेगी तब तक समाज भी रहेगा···"

लेकिन किशोर इस बीच में अन्यमनस्क हो गया था। आज की इस होने वाली पंचायत से खुलकर विरोध करने के लिए उसकी शिराओं उपशिराओं में रक्त का प्रवाह तीव्र हो उठा था। घटक उठकर चला गया। किशोर बहुत देर तक उसी तरह बैठा रहा। इस समाज के प्रति वह एक जबर्दस्त नफ़रत अनुभव करने लगा और उसकी सारी दया, सारी करुणा, उस अपरिचिता के प्रति एक साथ उदय हो उठी। घटक की वह बात उसे याद आई जिसमें उसने कहा था कि वह बड़ी विचित्र है किशोर। उसे कोई नहीं समझ सकता, बहुत देर तक यही वाक्य कई-कई बार उसके दिमाग में गूँजता रहा। और फिर उसने सोचा वही क्यों इस दुनियाँ का प्रत्येक चरित्र ही विचित्र है। उतना सरल नहीं, जितना लोग समझते हैं। बैठे-बैठे उसे बहुत दिन की एक बात याद हो गई।

उस समय वह छोटा था। तब तक वह खड़गपुर न आया था और अपने कस्बे के ही एक छोटे से स्कूल में पढ़ता था। उसके घर से स्कूल तक एक कच्ची सड़क गई थी। सुबह वह उसी सड़क से स्कूल जाता

था। और शाम को उसी सड़क से लौटता। उस सड़क के दोनों किनारों पर मकानों की पंक्तियाँ थीं। उन पंक्तियों में एक मकान की सूरत उसके दिमाग में स्पष्ट हो उठी। छोटा सा किशोर जब उस मकान के सामने से गुजरता था तो सुबह शाम एक किशोरी वधू घूँघट हटाकर खिड़की पर खड़ी मिलती थी। मानो वह रोज उसी का इन्तज़ार करती रहती हो। किशोर उस समय बहुत छोटा था। वह उसकी तरफ देखता। उसकी आँखें कुछ भारी-भारी सी रहतीं और उसकी सूरत दुखित सी। किशोर ने उसे कभी भी मुस्कराते अथवा प्रसन्न मुद्रा में नहीं देखा। वह किशोर की तरफ देखती और किशोर उसकी तरफ। और कभी किशोर को वह जब किसी दिन दिखाई न पड़ती तो किशोर को कुछ फीका-फीका सा लगता। कुछ सूना-सूना सा। ठीक उसी तरह जिस तरह किसी चीज को एक स्थान पर रखी देखने की अभ्यस्त आँखें उसे वहाँ न पाकर फीकापन सा महसूस करती हैं। उसी ढंग की अनुभूति उसे वहाँ न पाकर किशोर को होती। लेकिन ऐसा होता था कभी-कभी, इत्तफ़ाक से। नहीं तो किशोर देखता, जब वह स्कूल जाता तो वह ठीक उसी जगह खड़ी मिलती। और जब लौट कर आता, तब भी वहीं। वह मुस्कराती कभी नहीं थी। लेकिन किशोर देखता कि जब वह पास आता तो उसकी आँखों में एक खुशी की चमक सी आ जाती थी। यद्यपि उसके ओठों पर मुस्कान की एक रेखा तक न खिचती। इसके बाद किशोर खड़गपुर चला गया। और उसे वहाँ के नीरस वातावरण में अपने कस्बे की और चीजों के साथ-साथ उसकी भी याद आई। यद्यपि किशोर उसका नाम तक न जानता था और यह तक न जानता था कि वह कौन है। और उससे बहुत दिनों बाद किशोर जब इन्टर का इम्तहान देकर गर्मियों की छुट्टियों में घर आया तो एक दिन उस रास्ते से घूमते वह मकान पड़ते ही उस किशोरी वधू की याद उसे हो आई। लेकिन वह खिड़की पर न थी। शाम को किशोर फिर आया। वह न मिली। दूसरे दिन, तीसरे दिन। लेकिन

वह न मिली। न जाने क्यों उसे देखने के लिए उसका मन अधीर सा हो उठा और एक दिन उसने अपने एक साथी से पूछा—"यह मकान किसका है ? तुम जानते हो ?"

"हाँ-हाँ यह···का मकान है जिसकी मिठाई की दुकान है।" "यह उसका मकान है ?"

"हाँ"

"इस घर में कौन-कौन रहते हैं।"

"कोई नहीं। वह खुद, उसकी बुढ़िया बहिन और उसकी बहू।"

"मैंने यहाँ पहले एक बहुत छोटी उम्र की बहू देखी थी।"

साथी हँसा, बोला—"हाँ हाँ ! वही उसकी बहू है। तीसरी, नहीं-नहीं चौथी। तीन बहू मर गईं, यह चौथी है।"

"यह उसकी बहू है।" और किशोर को उस सुन्दरी वधू के पति की सूरत याद करके उसका जी मिचलाने लगा। बड़े-बड़े बाहर को निकले दाँत, जिन पर पीले-पीले मैल की एक अच्छी खासी तह जम गई है। और बेहद मोटा शरीर। उपेक्षाकृत निकली हुई तोंद का वह कुरूप आदमी। जिसका शरीर चौबीसों घन्टे पसीने और मैल से चिपचिपा रहता है। किशोर को चुप देखकर उसके साथी ने कहा—"कोशिश करो कोई कठिन बात नहीं है। खूब नामी है, नामी।"

"नामी क्या ?"

"मालिक को धोखा देकर खूब नाम पैदा कर रही है।" साथी की बात का आशय किशोर समझ गया। लेकिन उसने कोई उत्तर नहीं दिया। और तीन चार दिन बाद एक दिन दोपहर को जब कड़ाके की धूप से सड़क बिल्कुल सुनसान थी तो किशोर पोस्टआफिस से घर लौट रहा था। उसने देखा खिड़की पर बैठी वह अपने बाल सुखा रही है। देखकर किशोर ठिठक कर खड़ा हो गया। उसने भी किशोर की तरफ देखा। चार-पाँच सेकिण्ड तक वह उसी तरह देखती रही। फिर उसके हमेशा बन्द रहने वाले ओंठ खिल उठे। और उसने खिड़की में से मुँह

निकाल कर सड़क की दोनों तरफ की निर्जनता का परीक्षण करके कहा—"तुम ! ठहरो जरा। मैं नीचे आ रही हूँ।"

किशोर खड़ा रहा और उसने जल्दी-जल्दी सीढ़ी से उतरने की पदचाप सुनी। फिर नीचे का दरवाजा खुला और किशोरी वधू जो कि अब अच्छी-खासी युवती हो गई थी, हँसी बोली—"आओ अन्दर आओ। किशोर ने न तो कोई जवाब ही दिया और न कदम ही बढ़ाया। युवती ने फिर एक घनिष्ठता के स्वर में कहा—"अन्दर आओ न ! घर में कोई नहीं है। मेरी ननद अपनी बहन के यहाँ गईं हैं। और उनके भाई दुकान पर हैं।"

किशोर को अपने उस मित्र की बात याद आ गई। 'नामी है'। लेकिन वह अन्दर चला गया। युवती उसे ऊपर वाले कमरे में ले गई। किशोर को पलंग पर बिठाकर वह जमीन में बैठ गई। लेकिन बिलकुल समीप। और स्नेहिल स्वर में बोली—"तुम काफी बड़े हो गये हो।" और फिर वह हँसी। फिर उसने किशोर के मुँह की तरफ़ गौर से देखा। फिर हँसी। बोली—"अरे तुम्हारे मूँछ दाढ़ी भी निकल आई हैं।" और वह हँसती रही। फिर उसने पूछा—"दाढ़ी कब से बनाने लगे हो ?"

"पारसाल से।"

"तुम तो अब पूरे आदमी से लगने लगे। मैंने तुम्हें कितना छोटा देखा था।" किशोर ने कोई उत्तर न दिया। कुछ बोलना चाहिए या किसी प्रकार का भाव-प्रदर्शन करना चाहिए इसलिए, वह ज़रा मुस्कराया। युवती ने पूछा—"कहाँ थे अब तक ?"

"खड़गपुर।"

"खड़गपुर ! कहाँ है खड़गपुर। कितनी दूर है ?"

"बहुत दूर है यहाँ से करीब एक हज़ार मील।"

"एक हज़ार मील ! यानी पाँच सौ कोस।" और उसकी आँखें कुछ आश्चर्य में फैल गईं। ठीक उसी तरह, जिस तरह बच्चे किसी ताज्जुब

में चकित रह जाते हैं। और किशोर न देखा वर्षों पहिले देखी किशोरी की झाँकी भी उसके मुख पर जरा देर के लिए खेल गई। थोड़ी देर बाद उसने पूछा—"वहाँ इतनी दूर तुम क्या करते थे ?"

"वहाँ मेरे पिता जी का व्यवसाय था।"

"व्यवसाय क्या ?"

"व्यापार।"

"तो सीधी बात क्यों नहीं करते ? अंगरेजी क्यों बोलते हो ?"

किशोर को हँसी आ गई उसकी बच्चों जैसी बात सुनकर। वह बोली—"काहे का व्यापार है ? हलवाई की दुकान है हमारी जैसी।"

"नहीं।"

"तो" बहुत चीजें हैं, सुपाड़ी धान, चावल।"

"तुम वहाँ क्या करते हो ?"

"पढ़ता हूँ।"

"यहाँ क्यों नहीं पढ़ते ? हमारे शहर में भी तो स्कूल है। तुम पहले जैसे यहाँ पढ़ते थे, कितना अच्छा लगता था। मैं रोज तुम्हें स्कूल जाते देखती थी। यहाँ क्यों नहीं पढ़ते।"

"यहाँ के स्कल की पढ़ाई मैं खत्म कर चुका।"

"खत्म कर चुके" फिर उसके मुँह पर बच्चों का सा आश्चर्य आ गया।

"तुम कितने पढ़े हो ?"

"मैंने इस साल नवाँ पास किया है।"

"पढ़ाई कितने दर्जे तक होती है ?"

किशोर को फिर हँसी आ गई और वह उसे पढ़ाई के बारे में समझाने लगा। वह बड़े ध्यान से सुनती रही और सुन सुनकर बोली—"तुम इतने होशियार हो गये हो। तुमने इतनी बातें कहाँ सीखीं ? कल-की सी बात है, तुम जरा-से बच्चे थे। तुम स्कूल से लौट कर आते थे। मैं तुम्हें रोज बैठ कर देखती थी। कितने अच्छे लगते थे

तुम ? तुम्हारे हाथों में और मुँह पर स्याही लगी रहती थी। किताबों का बस्ता कंधे पर लटकता था।

सचमुच कितने अच्छे लगते थे तुम। वही तुम, अब कितने बड़े हो गए हो। पूरे आदमी से लगते हो। और बातें तुमने कितनी सीख डाली हैं। वह हँसी। फिर बोली—"तुम्हारा नाम क्या है ?"

किशोर ने नाम बताया और फिर उसकी इच्छा हुई कि वह भी उसका नाम पूछे। और उसने पूछ ही डाला। सुनकर वह हँसी। बहुत देर तक हँसती रही। फिर जरा गम्भीर होकर बोली—"मेरा नाम ? मेरा नाम पूछकर क्या करोगे ? मेरा नाम लेकर पुकारा करोगे ? मैं तुमसे इतनी बड़ी हूँ। मुझे जीजी कहा करो।"

किशोर ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसे इस वक्त अपने साथी पर क्रोध आ रहा था, जिसने कहा था—'नामी है।' किशोर उठ खड़ा हुआ, बोला—"तो अब मैं चलता हूँ।"

"कल ठीक इसी वक्त आना। आओगे न ?"

"हाँ आऊँगा।" और जब वह चलने लगा तो उसने किशोर के बालों पर हाथ फेरा और उसके हाथ को अपने हाथों में लेकर चूम लिया। फिर बोली—"तुम मुझे बहुत अच्छे लगते हो। तुम जब यहाँ नहीं थे तो मुझे तुम्हारी कितनी याद आती थी।"

किशोर मुस्करा दिया। फिर वह बोली—"मैं तुम्हें अच्छी लगती हूँ ? तुम्हें मेरी याद आती थी ?" किशोर ने सच बात ही कही—"मुझे तुम्हारी याद आई थी।"

यह किशोर के मुँह से निकला पहला वाक्य था, जो उसके लिए सांत्वनाप्रद था। उसने फिर कहा—"तुम कल आओगे न ? ठीक इसी वक्त पर।"

और दो-तीन दिन तक किशोर उसी तरह आता रहा। फिर एक दिन उसने कहा—"किशोर ! सुनो। आज रात में वह (उसके पति) अपनी बहिन को लिवाने जायेंगे। तुम आज रात को यहाँ रहना, मेरे पास।

हम दोनों रात भर बैठकर कहानी कहेंगे और पूरी रात जागेंगे। कितना अच्छा लगेगा।"

और जब किशोर ने कहा कि उसकी माँ नाराज होगी। तो उसने कहा था—"कोई नाराज हो। तुम मेरे लिए इतना भी नहीं कर सकते ?"

और किशोर ने वायदा किया कि जैसे भी हो वह इन्तजाम करेगा और जिस समय वह घर से चलने लगा तो उसने किशोर के हाथ को अपने हाथ में लेकर हल्का सा दबाव दिया था। जिस दबाव को वह घर पर सारे दिन महसूस करता रहा और सारे दिन वयस के सन्धिस्थल पर नवीन आगत किशोर अपने मन में एक नव-उत्पन्न इच्छा से लड़ता रहा। सारे दिन उसकी हँसी उसे याद आती रही। और शाम को उसने अपनी माँ से कहीं बाहर जाने का बहाना किया और उसके घर पहुँच गया।

वह पहले-से ही अपेक्षा कर रही थी। ज्यों-ही उसने किशोर को देखा, उसने अत्यंत तीव्रता से किवाड़ खोल दिए और किशोर के हाथों को अपने हाथों में कसकर पकड़कर वह उसे अन्दर ले गई। उसके सामान्य ऊष्ण हाथ के स्पर्श ने मानो किशोर की धमनियों में प्रवाहित समस्त रक्त में एक ऊष्णता उत्पन्न कर दी। और जिस समय वह उसके पीछे-पीछे सीढ़ियों पर चढ रहा था तो उसकी साँस फूल रही थी। इसके बाद उसने किशोर को पलंग पर बैठाया, निकाई खाने को दी, और खुद जमीन पर बैठकर उससे बातें करती रही। हर बात में वह हँसी। इतनी जोर-जोर से कि उसके शरीर के सारे अवयवों में एक प्रकम्पन-सा उत्पन्न हुआ। किशोर के ऊष्ण रक्त में और भी उत्ताप सा आ गया। उसकी कनपटी की दोनों तरफ की शिरायें फूल कर फड़कने लगीं। किशोर के ऊपर नशा-सा छा गया और उसी नशे की हालत में वह एक अप्रत्याशित आचरण कर बैठा। पहले किशोर ने उससे कहा—"तुम वहाँ इतनी दूर क्यों बैठी हो, यहाँ बैठो।" और इस वाक्य

के साथ-साथ ही वह खड़ा हुआ और उसके हाथों को पकड़ कर उसने उठाया। लेकिन पलंग पर बैठाने के स्थान पर उसने उसे अपने वक्ष के पास समेट लिया। वह शुरु-शुरु में आश्चर्यचकित-सी रह गई। आश्चर्य से एक क्षरण के लिए उसके मुँह से एक शब्द भी न निकल सका। फिर उसनें कहना शुरू किया—"किशोर मुझे छोड़ दो। मुझे छोड़ दो।"

लेकिन किशोर ने उसकी बात सुनी ही नहीं। उसने अपनी पकड़ और भी मजबूत कर दी। और वह बार-बार चिल्लाने लगी—"मुझे छोड़ दो, मुझे छोड़ दो।" और आखिर में हारकर उसने किशोर के कंधे में जोर से काट लिया। लाचार होकर किशोर को उसे छोड़ना पड़ा। वह एक तरफ़ खड़ा हो गया। उसके शरीर के तीव्रता से दौड़ते हुए रक्त में शिथिलता आ गई थी। अपने दाँतों से काटे हुए किशोर के कन्धे पर हाथ फिराते हुए वह फूट-फूट कर रोने लगी—"किशोर यह तुमने क्या किया? तुम मेरे भाई हो। जानते हो, तुम मुझे इतने अच्छे क्यों लगते थे? इसलिए कि तुम जब छोटे-से थे तो तुम्हारी सूरत मेरे एक छोटे भाई से मिलती थी, जो मर गया है। वह बिल्कुल तुम्हारी तरह का था। इसलिए जब तुम स्कूल से आते थे तो मैं तुम्हें देखती थी। लेकिन तुमने पुरुष-जाति का ठीक ही परिचय दिया है। मैं समझती थी कि सभी पुरुष एक-से नहीं होते। लेकिन तुमनें साबित करके दिखा दिया कि सभी कुत्ते एक से होते हैं। सभी पुरुष एक-से होते हैं। तुम औरतों को बस एक ही निगाह से देख सकते हो। तुम साँप के बच्चे सब-के-सब एक-से जहर से भरे हुए हो। जाओ किशोर, तुमनें आज सचमुच मुझे दुःख पहुँचाया है। मैं कितनी दुखी हूँ। कितनी अभागिन हूँ।"

और उसके पिछले शब्द सिसकियों में डूब गये। किशोर का मुँह नीचे की तरफ़ लटक गया था। वह चुपचाप नीचे उतर आया। रात भर आत्मग्लानि से उसे नींद नहीं आई। और इसके एक साल बाद फिर वह जब गर्मियों की छुट्टियों में घर आया तो उसी अपने पुराने

साथी के साथ घूमते हुए वह उसी के मकान के सामने होकर गुजरा। और जैसे ही उसने उस मकान की तरफ देखा। उसके साथी ने कहा—"वह मर गई भाई। अनैतिकता के अपराध में उसके मालिक ने अपने हाथों से गला घोंट डाला।"—

बात सुनकर किशोर के पैरों की शक्ति-सी निकल गई। एक बन्द दुकान के छज्जे पर बैठकर उसने कहा—"थक गया भाई, जरा बैठ लूँ।"

उसके बाद किशोर के जीवन में एक नया परिवर्तन आया। वह उदास-सा रहने लगा। और एकान्त जीवन पसन्द करने लगा। महीने-दो-महीने के लिए नहीं, पूरे जीवन-भर के लिए। और इसके साथ-साथ एक अनुभव भी उसे हुआ कि वास्तव में मानव-चरित्र को समझना अत्यन्त दुःसह है। दुनियाँ में मूर्ख-से-मूर्ख आदमी यह दावा करता है कि वह चलती चिड़िया को पहचानता है। हो सकता है वह चलती चिड़िया को बखूबी पहिचानता हो। किन्तु चिड़िया की आड़ लेकर जिस चरित्र पर इंगित रहता है उस मानव-चरित्र को पहचानना इतना सरल नहीं है।

: ७ :

आज किशोर को कई साल पहले की वही पुरानी बात याद हो आई। और आज के ये पंच जो किसी निर्दोष नारी के प्रति एक दृढ़ धारणा बना बैठे थे, उन पंचों से लड़ने के लिए वह मन-ही-मन उत्तेजित हो उठा। पूरे दिन भर वह इन्हीं विषयों में उलझा रहा। इसके बाद शाम हुई। घटकदा के ऊबड़-खाबड़ आँगन की सफाई हुई। फर्श बिछे। मसनदें लगीं। हुक्के सजाकर रखे गए। अलग-अलग जाति के पंचों के लिए

अलग-अलग हुक्का। इसके बाद दो-दो एक-एक करके लोगों का एकत्रित होना शुरू हुआ। और धीमे-धीमे हुक्कों के धूम्र से वह स्थान सुवासित हो उठा। घटक ने किशोर को अपने पास ही बैठाया था, ठीक पंचों के बीच में। इसके बाद घटक ने सबसे उसका परिचय कराया। सभी प्रसन्नता के साथ उससे मिले। किन्तु किशोर अपेक्षाकृत गम्भीर ही रहा। उसकी भौंहों के सन्धिस्थल में एक हल्का-सा बल पड़ा हुआ था। और मुद्रा में क्रोध की स्पष्ट झलक थी। लेकिन मुद्रा की उस झलक के ऊपर किसी ने ध्यान नहीं दिया। सिर्फ घटक ने ही इस बात को लक्ष्य किया। और वह दो-तीन बार उसकी ओर देखकर मुस्कराया।

सभी पंच इकट्ठे हो चुके थे। सिर्फ सरपंच के आने की देर थी। इसलिए सब उन्हीं की इन्तजार में बैठे हुए थे। सरपंच ऐसे मौके पर अपनी थोड़ी-सी प्रतीक्षा ही पसन्द करते हैं। इसलिए नियत समय को टालकर ही उनका शुभागमन होता है। प्रतीक्षामान समुदाय में अनेक प्रकार का वार्तालाप प्रारंभ हो गया था। भीड़ के एक बड़े अंश में कलियुग के प्रभाव के ऊपर आलोचना हो रही थी और वे लोग कलियुग के उस भावी काल के ऊपर वार्तालाप कर रहे थे, जब एक एक बालिश्त के आदमी होंगे और चने के पेड़ से बाँस में हँसिया बाँध कर चने तोड़ा करेंगे। इसके बाद कल्की अवतार होगा। और फिर इस नीच युग का अन्त। कोई-कोई यह भी प्रगट कर रहा था कि कल्की अवतार हो भी चुका है। ऐसे ही वार्तालापों के बीच में जब तर्क से वितर्क उग्र रूप ले बैठा तो सरपंच के दर्शन हुए। वे धीर मंथर गति से कछु हर्ष न विषाद का-सा भाव लिए हुए झूमते-झूमते आये। आगे-आगे नाई लालटेन दिखाता आ रहा था। उसके इस आगमन ने सबके गलों को शान्त कर दिया। मध्यस्थल का उनका आसन लोगों ने स्वतः ही जलाशय में इष्ट कनिपात की तरह छोड़ दिया। अपने भारी भरकम शरीर को निःस्वार्थ के धन की भाँति आसन पर छोड़ते हुए उन्होंने अपनी कमर मसनद से टेक दी। इसके पश्चात अपने खल्वाट ललाट

पर हाथ फेरकर उन्होंने दूसरे उपपंचों से पूछा—"उसको बुलाया, क्या नाम है उसका ?" कुछ आदमियों नें एक साथ कहा—"अमला।"

"हाँ हाँ, वह अमला है या गमला। बुलाया उसे ?"

लोगों ने बताया अभी नहीं बुलाया। वे जरा क्रुद्ध होकर बोले—"तो बुलाओ उसे। अभी तक बुलाया क्यों नहीं, विचार क्या मेरा करोगे ?" उपपंचों में से एक ने नाई को आवाज दी—"अरे ओ जुगला, बुला ला उसे।"

जुगला उर्फ जुगल चन्द्र परमानिक लालटेन हाथ में लेकर फिर प्रस्तुत हो उठे। सरपंच ने कहा—"और सुन, कहना घटकदा बुला रहे हैं।" घटकदा ने हँसकर कहा—"इतनी बड़ी पंचायत की खबर तो उसने सुन ली होगी। मेरे नाम की क्या जरूरत है ?"

"अरे भाई, तुम्हारे नाम से चली तो भी आयगी।"

घटक ने कहा—"अच्छा यही कहना।"

जुगलचन्द्र परमानिक (नाईयों की एक पदवी) लालटेन हिलाते-हिलाते चले गए और कुछ देर बाद पास के खेतों में उनकी वापिसी की सूचना फिर उसी लालटेन द्वारा मिली। और उनके साथ-साथ एक सफेद छाया, जो शायद जुगलचन्द्र से आगे आने की कोशिश कर रही थी। और दूर से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जुगलचन्द्र मानो उसके साथ घिसटते आ रहे हैं।

पंच लोग अपने को अपेक्षाकृत गम्भीर बनाने की कोशिश करने लगे, सरपंच अपनी वाणी में कठोरता लाने का प्रयास करने लगे। और किशोर ने आँखें बन्द कर लीं। वह एक दीन-हीन अबला नारी का चित्र अपने दिमाग में अंकित करने लगा, जो अभी-अभी इस पंच-समाज के बीच में आ खड़ी होगी। और जिसे दूसरों की शुभकामना से चिन्तित पंच लोग अनेक प्रकार के अपशब्द और दुर्वचन सुनायेंगे उसने मन-ही-मन विरोध के लिए साहस बँटोरना शुरू कर दिया। किन्तु घटकदा इन सबके विभिन्न भावों के बीच में एक विचित्र

भाव में ही थे। उनके ओठों पर एक मुस्कान थी। जा कि अस्पष्ट न होकर बिल्कुल स्पष्ट और सजीव थी।

इन विभिन्न भाव-भंगिमाओं को विशेष प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। पंचों के साथ-साथ किशोर के कानों ने भी सुनी एक नारी की कड़कदार आवाज—"कहाँ है घटकदा, क्यों बुलाया है मुझे ?"

आवाज में भय अथवा संकोच का लेश तक न था। आवाज रोबीली थी। सिर्फ नाम के लिए नहीं काम के लिए भी। उस रौबदार आवाज की अच्छी प्रतिक्रिया हुई। रौबीली मुद्रा का अभिनय करने वाले सरपंचों की बोलती बन्द हो गई। कुछ देर के लिए किसी के मुँह से एक शब्द भी न निकला। किशोर ने आँखें खोलीं। और उस नारी की छाया की ओर देखा। लालटेन के अपर्याप्त प्रकाश में वह उसका मुँह न देख सका।

फिर भी जो कुछ उसने देखा वह उसकी कल्पित दीन-हीन अबला नारी के विपरीत था। उसकी कल्पना की गंध भी वहाँ न थी। वह मन-ही-मन खुश भी हुआ। इसी की जरूरत थी। इसी की आवश्यकता थी। मानो वह भी यही चाहता था।

किन्तु इस भूमिका के पश्चात जिस कथानक का आरम्भ हुआ वह किशोर के लिए नवीन था। और नवीनता के साथ-साथ उसके मनोभाव को विपरीत दिशा में मोड़ने वाला भी।

अमला ने फिर उसी रौबदार आवाज में कहा—"कहाँ है घटकदा ? क्यों बुलाया है मुझे ?"

जवाब घटकदा को नहीं देना पड़ा। दिया सरपंच ने ही, किन्तु तत्काल नहीं। कुछ देर रुक कर और रौब में भी नहीं, साधारण ढंग से बोले—"घटकदा ने तुम्हें नहीं बुलाया। बलाया है मैंने।"

"तो तुमने मुझसे घटकदा की बात क्यों कही ?" यह बात युगलचन्द्र से कही गई थी। जिसके जवाब में उन्होंने बत्तीसी प्रदर्शित कर दी। सरपंच ने कहा—"मैंने ही जुगला से ऐसा कहने को कहा था।"

"क्यों किस लिए ?"

"उस बात को छोड़ो। पहले मैं जो कुछ पूछूँ उसका जवाब दो।"

"क्यों उस बात को क्यों छोड़ूँ ? पहले इसका उत्तर दो कि मुझे झूठ बोलकर क्यों बुलाया गया ?"

"तुम्हें नहीं मालूम था कि यहाँ तुम्हारे ही लिए पंचायत हो रही है ?"

"मालूम था।"

"तो फिर।"

"तो फिर क्या ? घटकदा नाम नहीं लिया जाता तो मैं नहीं आती ?"

"इस बात को हम लोग पहले से जानते थे।"

"इसीलिए झूठ बोला। पंचायत की शुरूआत ही झूठ से करते हो।"

"झूठ कैसे हुआ। घटकदा क्या इस पंचायत में नहीं है ?"

"नहीं, घटकदा इस झूठों की पंचायत में नहीं है।"

किशोर ने घटकदा की ओर देखा। वे अब भी मुस्करा रहे थे। किन्तु इस जरा-सी लड़की की यह बात सरपंच सहन न कर सके। मसनद के सहारे पड़ा हुआ उनका भारी भरकम शरीर तन गया।

वे सीधे बैठ गए। बोले—"लड़की तुम सारी पंचायत का अपमान कर रही हो। जानती हो इसकी क्या सजा है ?"

अमला ने अकड़ कर कहा—"शायद फाँसी।"

सरपंच ने कहा—"फाँसी से भी बड़ी। फाँसी से तो सारे कष्टों से छुटकारा मिल जाता है। यह इतनी सस्ती नहीं है। इसकी मंहगाई से तुम सारे जीवन भर अफसोस करोगी। इस गाँव से तुम्हें निकाल दिया जायगा। तुम्हारे घर में आग लगादी जायगी। और……"

लेकिन बीच में ही अमला बोल पड़ी—"सर मुँडवा कर गधे की

पीठ पर घुमाया जायगा ।" इसके बाद वह हँसी। लेकिन रौब की हँसी। और फिर बोली—"सरपंच साहब, कितनी शताब्दी पहले के ख्वाब देख रहे हैं?" सरपंच का मुँह गुस्से से तमतमा उठा। उनका विद्रोह और वह भी उनके आधीन सारे समाज के सामने। उन्होंने पहले कभी भी न देखा था। वह कुछ कहने ही वाले थे उससे पहले वह बोल पड़ी—"अदालतें कचहरी और पुलिस शायद दुनियाँ से अभी नहीं मिटीं। और उन सबके द्वारा मन चाहा काम प्राप्त करने का सबसे बड़ा अस्त्र पैसा। उसकी भी मेरे पास कमी नहीं है। बैंक का एक चैक वकील के लिए और एक भुनी हुई रकम दारोगा जी की जेब में भर देने से मैं बिल्कुल अभय हो जाऊँगी। तुम जो जी चाहो कर सकते हो। मैं तुम्हारी जरा भी परवाह नहीं करती।"

सबके मुँह खुले-के-खुले रह गये। यह जरा सी लड़की इतने बड़े साहस का परिचय देगी, इसकी किसी ने कल्पना तक न की थी। न्याय उन्होंने अनेक किये थे। और स्वतन्त्रता के साथ मन चाहे किये थे लेकिन इस प्रकार की पुलिस और कचहरी की बाधा उनके न्याय में कभी नहीं आई। सब के हौंसले पस्त हो गये। किसी के मुँह से कोई बात न निकल सकी। अमला ने कहा—"मैं चल दी घटकदा।"

घटकदा ने भी कोई जवाब न दिया। वह अब भी मुस्करा रहे थे। अमला ज्यों ही मुड़ी त्यों ही भीड़ में से किसी ने कहा—"जरा सुनो तो।"

वह रुक गई। किशोर ने देखा ये वे ही भद्र पुरुष थे, जो कलकत्ते की गाड़ी में किशोर के साथ आये थे। उनकी वाक्-शक्ति में किशोर को विश्वास था। इसलिए कौतूहल के साथ हँसते-हँसते उसनें अपनी दृष्टि भले आदमी की तरफ फेरी। अमला भी उनकी तरफ मुखातिब हुई। भले आदमी ने कहा—"ये लोग तुम्हारे भले के लिए तुमसे कुछ कहना चाहते हैं।"

"दूसरों को उपदेश देने वालों की इस दुनियाँ में कमी नहीं है

काका ।" अमला उन्हें काका ही कहती थी। किन्तु इस क्रोध के समय भी वह उनसे काका कहकर श्रद्धा जनायेगी इसकी उन्हें उम्मीद नहीं थी। इसलिए उनका साहस दूना हो गया। बोले—"बेटी ! यह मैं जानता हूँ कि तुम समझदार हो। साथ-साथ बुद्धिमती भी हो। फिर भी समझदारी से भी बड़ी चीज अनुभव है और वह अनुभव तुम्हें बुड्ढों से ही मिलेगा। मुझे तुमसे ज्यादा कुछ नहीं कहना, सिर्फ इतना कहना है कि धर्म का जीवन यापन करो, सत्य को समझो, और सत्य पर चलो।"

अमला हँस पड़ी। बोली—"दुनिया में सत्य क्या नहीं है काका ? मेरे आचरण में तुम्हें मिथ्या का आभास किस तरह मिलता है ? वह भी तो मेरी एक इच्छा की सत्यता पर आधारित है। मैं जो कुछ करती हूँ उसे भी तो मेरे अन्तःकरण की अभिलाषा की सत्यता ही प्रेरणा देती है। मिथ्या तो इसे तब कहा जा सकता था, जब मैं अपने अन्तःकरण की सत्य इच्छा को बनावटी आदर्शवाद के चक्कर में बलपूर्वक दमन करती। मैं तो ऐसा करती नहीं। और न निष्काम कर्मयोगी का, करना कुछ और दिखाना कुछ, अथवा समझना कुछ, ही अनुसरण करती हूँ। मैं तो, जो सत्य एक इच्छा के रूप में मेरे मन में जाग्रत होता है, उसी पर चलती हूँ। इसलिए इसे सत्य के विरुद्ध तो कहा नहीं जा सकता। हाँ पसन्द का सवाल अवश्य हो सकता है। हो सकता है तुम्हें कुछ पसन्द हो और मुझे कुछ। किन्तु काका इसे मत भूलो कि भिन्न-भिन्न रुचि; भिन्न-भिन्न प्रकृति और भिन्न-भिन्न प्रवृतियाँ लेकर मानव यहाँ आता है। दुनियाँ की कोई भी दो चीजें एक-सी नहीं हैं। किसी एक का चेहरा दूसरे के तदनुरूप नहीं होता। ठीक उसी तरह सभी की पसन्दें भी भिन्न होती हैं। हो सकता है तुम्हें दिन के प्रकाश से प्रेम हो और मुझे रात के अंधकार से। लेकिन प्रकाश और अंधकार इन दोनों में से कोई भी असत्य नहीं है। दोनों ही ध्रुव-सत्य हैं। अंधकार भी उतना ही सत्य है जितना आलोक। कुरूपता भी उतनी ही

सत्य है जितना सौन्दर्य। विष की भी उतनी ही सत्य प्रतिक्रिया होती है जितनी अमृत की। उज्ज्वलता भी उतनी ही सत्य है जितनी मलिनता। अपनी-अपनी पसन्द और सुविधा-असुविधा का सवाल अवश्य पैदा हो सकता है, किन्तु सत्य से दूर उसे नहीं कहा जा सकता।"

यह नवीन दर्शन काका और उनके साथियों की समझ में कुछ आया या नहीं यह तो ईश्वर ही जाने किन्तु इस समाज में बैठे हुए जिन दो आदमियों ने इसे समझा उन दोनों पर इसकी विभिन्न प्रतिक्रिया हुई। घटक के मुस्कराते ओंठ मुस्कराहट से और भी फैल गये। और किशोर, उसकी भौहें चढ़ गईं। शुरू में एक अबला नारी की पंचों के शासन से रक्षा करने के लिए वह प्रस्तुत होकर बैठा था। किन्तु उस अबला ने जब सबला बनकर उन पंचों का कड़ा विरोध किया तो उसे खुशी ही हुई। इसके बाद अपने पूर्व परिचित भद्र पुरुष निरंजन बाबू को जब उसने बोलते देखा तो उसे मनोविनोद हुआ। किन्तु उस मनोविनोद के मूड के बीच में जब उस अबला ने एक निस्संकोच ही नहीं बल्कि एक अत्यन्त लज्जा रहित और अश्लील दलील सत्य के विरोध में दे डाली तो उसकी भृकुटियाँ तन गईं। सुबह से ही जिस नारी की सम्मान-रक्षा के लिए वह मन-ही-मन अनेक प्रकार की तैयारियाँ कर रहा था वह भाव अचानक विरोधी तत्वों में बदल गया और इस लज्जाहीन नारी को कड़ा उत्तर देने के लिए उसका मन छटपटाने लगा। किसी भी प्रकार अपने को संयत न कर पाकर वह बोल उठा। बोलने के उसके वाक्य बिल्कुल असंयत थे। किन्तु बोली में अशिष्टता न थी। यथा व्याख्या सम्भव अपनी वाणी में नम्रता लाकर उसने कहा—"सत्य की परिभाषा इतनी सरल नहीं है देवी जी! जितनी सरलता के साथ आपने उसकी कर डाली। याद रखिये, सत्य ही सुन्दर है और सुन्दर ही सत्य है। मिथ्या ही कुरुप है और कुरुप ही मिथ्या है। सुविधा और असुविधा के साथ सत्य का कोई सम्बन्ध नहीं।"

सुनकर अबला हँस पड़ी। उसकी हँसी ने तमाम उत्तेजित

वातावरण को टुकड़े-टुकड़े कर डाला। वह बोली—"महाशय ! सत्य को सुन्दर और सुन्दर को सत्य कर पीछे से सुविधा असुविधा के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है कहकर आपने अपनी दलील का स्वयं ही खंडन कर डाला।"

गुस्से से किशोर पागल हो उठा। उत्तेजित होकर उसने चिल्ला कर पूछा—"किस तरह ?"

"किस तरह ?" कहकर वह फिर हँसी। फिर अकस्मात हँसी को रोककर उसने घटक से पूछा—"घटकदा यह कौन हैं ? मैंने इन्हें पहले कभी नहीं देखा।"

घटकदा ने कहा—"तुम इन्हें नहीं पहचानोगी अमला ! यह यहाँ के नहीं हैं। बाहर के हैं।"

किशोर उत्तेजित था। उसने घटक और अमला की बात मानो सुनी ही नहीं बोला—"मेरी बात का उत्तर दीजिये ?"

अमला ने हँस कर कहा—"आपकी बात का उत्तर अवश्य दूंगी। लेकिन यहाँ नहीं। उत्तर अगर लेना हो तो कभी फिर मुझसे मिलकर ले-लीजिये—आप यहाँ के हैं नहीं। बाहर के हैं। आप पंचों में से नहीं हैं। इसलिए पंचायत में खड़े होकर आपको उत्तर देने की कोई जरूरत नहीं है।"

किशोर ने उसी उत्तेजित अवस्था में कहा—"उत्तर आपके पास है ही नहीं। आप देंगी क्या ?"

अमला फिर हँसी। उस ढंग की हँसी जिससे बच्चों की बातों का टाला जाता है। फिर बोली—"महाशय ! दुनिया में कोई भी तर्क ऐसा नहीं है जिसका उत्तर न हो। दुनिया की सारी तर्क अभी बाकी है। बशर्ते कि सिर्फ तर्क का ही सवाल हो।"

किशोर चुप हो गया। किन्तु उत्तेजना उसकी शेष न हुई। अमला ने घटक से कहा—"जा रही हूँ घटकदा" और फिर निरंजन बाबू की तरफ मुखातिब होकर बोली—"चल दी काका" किन्तु बातों में कभी

भी निरस्त्र न होने वाले निरंजन बाबू इस तरह अपनी हार मानने को तय्यार न थे। बोले—"जाओ और नीति-शास्त्र का यह श्लोक याद करती हुई जाओ कि यद्यपि शुद्धं लोक विरुद्धं नाकरणीनं नाचरणीयं ?"

बात सुनकर वह फिर हँस पड़ी। बोली—"सत्य का और इस श्लोक का कितना सम्बन्ध रहा काका ?"

मोटी बुद्धि के काका उसकी बात को बोधगम्य न कर सके। वह अपना राग ही अलापते रहे। बोले—"बेटी ! हमारे भारतवर्ष की सतियों की गौरव गाथा दुनियाँ के बीच में एक अमर कहानी है। इसकी मिसाल तुम्हें ढूँढ़े कहीं न मिलेगी। आहा, कहाँ गईं वे भारत की सती नारियाँ, जिनके सतीत्व की बदौलत आज भी चन्द्र-सूर्य आकाश में टिके हुए हैं। जिनके सतीत्व के सत्य से आज भी समुद्र में ज्वार-भाटा आता है।"

निरंजन बाबू बातचीत की साधारण शैली से भाषण की सीढ़ी पर चढ़ गये। गले की आवाज को अपेक्षाकृत ऊँचा और गंभीर करके उन्होंने भारत की सतियों के गौरवमय पृष्ठ उलटने शुरू कर दिये। सती गांधारी की कहानी। राजपूतनियों के जौहर की अमर-कथा। और न जाने कौन-कौन-सी सतियों के नाम और उनकी अमर कीर्ति का विशद विवरण वे सुनाने लगे, सुनाने की इस उत्तेजना के जोश में उन्हें होश भी न रहा कि अमला कब हँसती हुई वहाँ से चली गई। होश दिलाया सरपंच ने। खीझे हुए स्वर में सरपंच ने कहा—"वह सती तो यहाँ से चली गई जिसके लिए इतनी उछल-कूद कर रहे हो। बैठो, चुपचाप। अब क्या सतियों की गौरव-गाथा सुनाकर हम लोगों को सती करना है ?"

निरंजन बाबू शर्मिन्दा होकर बैठ गये। उनकी वह हालत हुई जो नशा टूटने के बाद शराबी की होती है।

दो तीन मिनिट तक वातावरण शान्त रहा। इसके बाद एक उपपंच ने सरपंच से पूछा—"अब क्या करने का इरादा है ?"

"इरादा है," अपना सर झुँझलाकर सरपंच ने उत्तर दिया—"हमारी बला से वह चाहे जो कुछ करे। अपने हाथों जहर खाने वाले को रोकने से हमारा क्या लाभ ? और फिर वह यहाँ की रहने वाली नहीं है। वह हमारे समाज के नियमों को मानकर चले या न चले हमारी बला से।"

मुखियागीरी पर अकस्मात रूप से आये हुए आघात को कुशल सरपंच ने इस प्रकार शेष किया और साथ-साथ उस दिन की पंचायत भी। और वे उठ पड़े। धीमे-धीमे सभी उठे और आज के इस आलोच्य विषय के कलरव से गाँव के खेतों और गली-कूचों को गुंजरित करते हुए वे सभी चले गये। किशोर अभी तक उत्तेजित अवस्था में था। सरपंच ने जो पुलिस और अदालत के डर से अपना शासन अमला के ऊपर से हटा लिया, इसे किशोर बहुत ज्यादा पसन्द न कर सका। सब के चले जाने के बाद वह घटक से बोला—"घकटदा इतनी लज्जा हीन औरत मैंने अपने जीवन में नहीं देखी।"

घटक ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह मुस्कराता रहा। कुछ देर बाद फिर किशोर ने कहा—"घटकदा ! मेरे पास कुछ रुपया है। इसके अलावा अपनी राइस मिल को बेच दूँगा। कुल मिला कर पन्द्रह सोलह हजार रुपये हो जायेंगे। क्या उतने रुपयों से इसके पैसे के घण्मड को चूर्ण करके इसे उचित दण्ड नहीं दिया जा सकता ?"

"क्यों नहीं ! लेकिन आप इतना रुपया खर्च क्यों करेंगे ?"

"मुझे अपने रुपयों की इतनी चिन्ता न होगी। जितना संतोष इसे दंड मिलने से होगा, और कुछ न सही समाज का एक सड़ा-गला घाव तो नष्ट होकर रहेगा।"

घटक ने कहा—"ठीक है और साथ-साथ समाज के दूसरे नीरोग अंगों को इस प्रकार गलने से बचाया जा सकेगा।"

और बात समाप्त न होते-होते बिना मेघ के वज्रपात के समान

घटकदा अट्टहास कर उठे। किशोर हत बुद्धि के समान उनकी ओर देखता रह गया। लेकिन जब घटक की हँसी का प्रवाह उत्तरोत्तर ऊर्ध्व-गामी होता चला गया तो उसने जरा झुँझला कर पूछा—"आप इतना, हँस क्यों रहे हैं ?" घटक ने कोई उत्तर न दिया। उसी प्रकार हँसता रहा। किशोर ने अपने प्रश्न को दोबारा दुगनी झुँझलाहट के स्वर में दुहराया। इस बार घटक ने अपनी हंसी को यथासम्भव संयत किया। फिर बोले—"किशोर साहब ! हँस रहा हूँ उस छोकरी के अभागे भाग्य पर।"

किशोर कुछ न समझ सका। वह उसी तरह उनकी तरफ देखता रहा। घटक ने उसके भाव को लक्ष्य करके कहा—"समझे नहीं। उसके काई जमे फिसलने योग्य भाग्य पर हँस रहा हूँ। जहाँ कोई टिक ही नहीं सकता। सुबह जरा उम्मीद हुई थी कि चलो इस लम्बी-चौड़ी दुनियाँ में उसका भी एक हिमायती उत्पन्न हुआ।

लेकिन हाय रे उसका दुर्भाग्य। उस हिमायती की हिमायत कुछ क्षण भी न टिक सकी। फिसल कर ठोस धरातल पर गिर पड़ी। और वहाँ से जब उठी तो बिलकुल रुपान्तरित होकर। सुबह जो व्यक्ति उसके लिए अकेले ही इतने बड़े समाज से लोहा लेने को प्रस्तुत था वही व्यक्ति उसका इतना विरोधी बन गया कि अपना सर्वस्व लुटाकर भी वह इस क्षण उसे शासित करने को प्रस्तुत है। किशोर साहब ! इसे कहते हैं भाग्य की विडम्बना। जो लोग भाग्य के अस्तित्व पर विश्वास नहीं करते, उनमें से कोई इस समय मिल जाता तो कान पकड़ कर उसे दिखा देता कि देख, और आँखें खोल कर देख, कि यह भाग्य की करामात है या और किसी चीज की।"

घटक फिर हँसा वही अटूट हँसी।

किशोर मन-ही-मन लज्जित हो उठा। अत्यन्त लज्जित। लेकिन इस प्रकार उसे अपने जीवन में अनेक बार लज्जित होना पड़ा है। वही क्यों दुनियाँ के जितने एकान्त प्रिय हैं। वे लोग अपनी व्यवहारशून्यता

तथा शीघ्र प्रभावित होने वाले अपने स्वभाव के कारण इस प्रकार प्रायः ही लज्जित होते हैं। इस आगत लज्जा ने किशोर के क्रोध को बहुत कुछ अंशों में हलका कर दिया। लेकिन उससे क्रोध की जड़, उस विचित्र नारी के प्रति सद्य उत्पन्न घृणा, हलकी न हो सकी। फिर भी उसे प्रदर्शित करने का आवेश नहीं रहा। वह अन्तःकरण के भीतर के किसी कोने में गोपन होकर बैठी रही। कुछ देर बाद, जब क्रोध, लज्जा और घृणा की अनुभूति से किशोर को मुक्ति मिली तो वह अपनी सरल अवस्था में लौट आया और उसने घटकदा से प्रश्न किया—"घटकदा बातचीतों में वह औरत अशिक्षित और मूर्ख तो मालूम नहीं देती। फिर भी उसने जो बातें कहीं, उन बातों का मतलब अभी तक मेरी समझ में नहीं आ रहा। क्या उसकी बातें बेमानी नहीं थीं ?"

"किशोर, मैंने तुमसे पहले ही कहा था। उसकी सारी बातें बेमानी हैं। उसके सारे आचरण बेमानी हैं। उसके पूरे-का-पूरा जीवन बेमानी है। जिसके कोई मानी नहीं लगा सकता। जिसे कोई नहीं समझ सकता। न मैं ही उसे समझा सका हूँ। न तुम उसे समझ सकोगे। न दुनियाँ ने उसे समझा है। और तो और जिसने उसे निर्वासित किया, उसका वह पति भी, उसे नहीं समझ सका। यह मैं तुमसे दावे के साथ कह सकता हूँ।"

"क्या यह विवाहित है ?"

"हाँ विवाहित भी है। साथ-ही-साथ पति के द्वारा घर से निष्काशित भी।"

किशोर कुछ देर तक आश्चर्य की मुद्रा में बैठा रहा। फिर उसने प्रश्न किया—"घटकदा एक बात पूछूँ ?"

घटकदा अभी-अभी बातों के बीच में ही गांजे की दो-चार कशें खींच चुके थे इसलिए सरस स्वर में ही उत्तर दिया—"पूछो यार ! सुबह से पूछ ही तो रहे हो। एक बात पूछूं कहने की क्या जरूरत है ?"

किशोर ने कहा—"मैं पूछ रहा था कि आप पूरी-की-पूरी पंचायत में तटस्थ ही रहे। इसका कुछ कारण समझ में नहीं आया।"

प्रश्न सुनकर घटक कुछ हँसे और फिर उत्तर भी जो दिया वह भी हँसी में था या गम्भीरता के साथ में इसे किशोर न समझ सका! वह बोले—"किशोर बाबू, अमला का उत्तर आपने सुना जो उसने अपने काका को दे-दिया था कि इस दुनियाँ में सत्य क्या नहीं है काका? उसकी उस उक्ति के अनुसार मैं चोर की चोरी का भी तमाशा देखता हूँ और कोतवाल के शासन को भी तटस्थ होकर देखता हूँ। और सोचता हूँ दोनों में जिसमें सचाई की दृढ़ता होगी वही जीतेगा। अमला ने कहा था सत्य अन्धकार भी है और आलोक भी। उसकी उक्ति के अनुसार सत्य अपराध भी है और शासन भी और जो अपने पक्ष को असत्य मानता है कमजोर वही है, तो मैं इन दोनों ध्रुव सत्यों के संघर्ष का तमाशा देखता हूँ। देखता हूँ कि कौन अपने पथ पर दृढ़ खड़ा हुआ है। शासन की प्रेरणा लिए हुए है वह या अपराध की प्रेरणा लिए हुए और जो हार जाता है उसे समझ लेता हूँ कि वह असत्य प्रेरणा लिए हुए था, समझे!"

लेकिन वास्तव में किशोर कुछ भी नहीं समझा। घटक की बातों में जो उद्देश्य था उसे न समझ कर किशोर की समझ में सिर्फ इतना ही आया कि घटक भी अमला की बातों का समर्थन कर रहा है।

कुछ देर रुक कर घटक ने कहा—"आज सत्य-पथ पर कौन था? किशोर बाबू जानते हैं आप?"

किशोर ने गम्भीर दृष्टि से घटक की ओर देखा। घटक ने कहा—"अमला। क्योंकि जीत आज उसकी हुई, इसलिए सत्य आज उसी के पक्ष में था। आज अपराध को ही सत्य का समर्थन मिला किशोर! और न्याय और शासन के पक्ष में आज सत्य नहीं रहा। जानते हो क्यों? इसलिए कि जो आज काम और शासन का पक्ष लेकर आये थे,

उनके उस पक्ष-ग्रहण में कमजोरी थी, शिथिलता थी। वे केवल मात्र अभिनय कर रहे थे। अपराधों के विरुद्ध उनकी आत्मा में दृढ़ प्रेरणा न थी। इसलिए वे पुलिस और अदालत के नाम से डर गये और सिर्फ अपने शासन करने के अभिनय की रक्षा के लिए उन्होंने अमला को दूसरे समाज की बताकर अपना शासन उस पर से हटा लिया। और इस तरह उन्होंने प्रमाणित किया कि वे सत्य से दूर थे।"

किशोर ने पूछा—"इसके अलावा वे कर ही क्या सकते थे घटकदा?" घटक ने कहा—"क्या कर सकते थे, यह उनके सोचने की चीज है, मेरी नहीं लेकिन उनकी प्रेरणा में अगर दृढ़ता होती तो आज जीत उन्हीं की होती।"

किशोर ने कहा—"मगर······"बीच ही में घटक बोल उठे— "सारी रात क्या आज इन मगरमच्छों के बीच में निकाल देनी है किशोर बाबू? सोना नहीं है क्या? रात तो अब ज्यादा रही नहीं।"

बिस्तर पर लेट कर भी किशोर को बहुत देर तक नींद नहीं आई। उसे अमला और घटक दोनों की बातें एक-सी लगीं। किन्तु एक के प्रति वह असीम घृणा का भाव लेकर सोया और दूसरे के प्रति बढ़ते हुए प्रेम का भाव लेकर। प्रेम का भाव जिस घटक को मिला उसकी जड़ में शायद उसका पुरुष रूप हो। लेकिन घृणा जिसे मिली उसे सिर्फ इसलिए मिली कि वह एक नारी थी।

: ८ :

किशोर की राइस-मिल के मैनेजर राजेन्द्र बन्दोपाध्याय किसी कार्य विशेष से बाहर गए हुए थे। इसलिए अभी तक किशोर को अपनी मिल देखने का सौभाग्य भी न मिल सका था। उस दिन वे अपने गन्तव्य स्थान से घर लौटे और किशोर के आने का समाचार सुनकर उसके

पास दौड़े आए। अपनी अनुपस्थिति की क्षमा माँगी। आने की सूचना न देने की शिकायत की और उनकी अनुपस्थिति में जितना कष्ट किशोर को हुआ उसके लिए एक लम्बी चौड़ी क्षमा-याचना की। इसके पश्चात वह किशोर को मिल का निरीक्षण कराने ले गये। वहाँ घंटों बैठ कर हिसाब समझाया। जिसमें लाभ का अंश बहुत अधिक नहीं था, फिर भी किशोर के एकाकी जीवन के लिए पर्याप्त था।

हिसाब समझाने के बाद राजेन्द्र बाबू ने किशोर के मन की थाह लेनी चाही।—"आप यहाँ कितने दिन तक रुकेंगे?"

"फिलहाल तो कोई जाने का इरादा है नहीं।"

उत्तर राजेन्द्र बाबू के लिए सन्तोषजनक न था। और उसका आभास भी उनकी आकृति पर स्पष्ट हो उठा। वह किशोर की आँखों से भी छुपा न रह सका। किशोर ने कहा—"लेकिन मैं मिल का काम जरा भी न देख सकूँगा। आप जिस तरह आज तक काम देखते आये हैं उसी तरह देखते रहिए। मैं सिर्फ गाँव में रहने के लिए आया हूँ। कभी-कभी समय मिलने पर पाँच सात मिनट के लिए मैं मिल में घूम जाया करूँगा, बस और कुछ नहीं।"

यह बात राजेन्द्र बाबू के लिए अत्यन्त सन्तोषप्रद थी। उनकी सारी उम्मीदें और सारी आशाएँ इस मिल के ऊपर ही केन्द्रीभूत थीं। और किशोर के आगमन ने अकस्मात ही उन आशाओं की जड़ों को, उनकी कल्पना में हिला डाला था। किन्तु किशोर की इस बात से उन्हें काफी सन्तोष हुआ और वह सन्तोष का भाव भी उनकी आकृति पर सजीव हो उठा। उत्साह और आनन्द से उनका मुखमंडल रक्तवर्ण हो उठा और उसी आनन्द के आवेश में बोले—"इसके लिए आप निश्चिन्त रहें। मेरा यह अधम शरीर जीवन भर आपकी सेवा के लिए प्रस्तुत है। मैंने सारे जीवन आपका नमक खाया है। मेरे शरीर के एक-एक जर्रे में आपका नमक बिंधा हुआ है। इसलिए मेरा यह शरीर जीवन-भर आपका ही गुलाम रहना पसन्द करेगा।"

खुशामद सुनने की लालसा बहुत लोगों में पाई जाती है। किन्तु सुन-कर निर्विकार भाव से सहन कर लेने की क्षमता विरलों में ही होती है। किशोर में दोनों में से कोई बात नहीं थी। न उसमें खुशामद सुनने की लालसा ही थी और न सहन करने की क्षमता ही। लज्जा से उसका मुँह लाल हो उठा और उसी लज्जित स्वर में उसने कहा—"आप इस प्रकार की बातें मेरे सामने कभी न करें। मैं तो आपके बच्चे के समान हूँ।"

उत्तर से राजेन्द्र बाबू सन्तुष्ट हुए और प्रभावित भी। बोले—"सो तो है ही। आप जब खड़गपुर पढ़ते थे उस समय मैंने आपको वर्षों गोद में खिलाया है।"

"आपने मुझे पहले खड़गपुर में देखा था?"

"वाह देखा नहीं था? मैं पहले आपकी खड़गपुर की गद्दी पर ही मुनीम था।"

"अच्छा, मुझे याद नहीं पड़ता।"

"आपको याद कैसे पड़े? आप उस समय बहुत छोटे थे।"

इसके बाद कुछ देर तक राजेन्द्र बाबू चुप रहे। फिर बोले—"आप यहाँ पर रहेंगे कहाँ?"

"यही मेरे लिए एक समस्या है।"

"उसके लिए मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ। लेकिन किया क्या जाये? मिल में तो जगह है नहीं और मेरा घर इतना छोटा है कि मेरे बच्चों को ही मुश्किल पड़ती है।"

राजेन्द्र बाबू का घर छोटा भी था और साथ-साथ वह इतने बेवकूफ भी नहीं थे कि मालिक को अपनी छाती पर ही बसायें। बोले—घटक के यहाँ "आप जहाँ ठहरे हैं, वह जगह कैसी है?"

"जगह तो ठीक है और काफी भी। लेकिन इमारत के नाम पर वहाँ सिर्फ एक कमरा है। जिसमें मुझे घटक के साथ ही रहना पड़ेगा।

श्रौर मैं चाहता यह हूँ कि कम-से-कम एक कमरा ऐसा हो जो मेरा व्यक्तिगत हो।"

राजेन्द्र बाबू ने इसका समर्थन किया। बोले—"हाँ कम-से-कम इतना तो होना ही चाहिए।"

"सुना है, यहाँ किराये के मकान भी नहीं मिलते।"

"जी, यही तो सबसे बड़ी दिक्कत है। लेकिन मैं कोशिश करूँगा।"

"हाँ, कोशिश करिए। मुझे सिर्फ एक कमरा चाहिए। श्रौर कुछ नहीं।"

"मैं देखूँगा। श्राप क्या यहाँ कोई दूसरा व्यवसाय शुरू करेंगे?"

"नहीं। कुछ भी नहीं। यहाँ कोई लायब्रेरी नहीं है?"

"जी, पास के कस्बे में एक लायब्रेरी है।"

"किताबें कितनी होंगी उसमें?"

"जी, किताबें उसमें हजारों हैं।"

"तो बस ठीक है, मेरा मन यहाँ लग जायगा।"

"दिन में एकाध बार मिल की तरफ भी घूम जाया करें।"

"नहीं। मिल में जाने की फुर्सत मुझे न मिल सकेगी। उसका पूरा भार श्रापके ऊपर ही रहेगा।"

"तो मैं क्या श्राठवें दिन श्रापकी सेवा में हिसाब पेश किया करूँ?"

"नहीं महीने में एक बार श्रथवा दूसरे महीने।"

इससे बड़ी सन्तोष की बात राजेन्द्र बाबू के लिए श्रौर क्या हो सकती थी श्रौर किशोर के लिए भी यह एक सबसे बड़ा सन्तोष का विषय था। सारे झंझटों से मुक्त होकर वह साहित्य का श्रध्ययन करेगा। संचय तो दुनियाँ में एक तरह का नहीं हैं। एकाधिक प्रकार के हैं। कोई श्रर्थ का संचय करता है, कोई शक्ति का। कोई ख्याति का, वह यहाँ समस्त संचयों से बचकर मस्तिष्क के खाद्य का संचय करेगा। जीवन के सौन्दर्य, मधुरता श्रौर स्फूर्ति का संचय करेगा।

राजेन्द्र बाबू के सर पर मिल का सारा भार सौंपकर वह घटक

के यहाँ लौटा। आज मानो उसे एक नई स्फर्ति मिली, नई चेतना मिली, नया जीवन मिला। अपने जीवन के भविष्य का एक रंगीन चित्र उसके दिमाग में सजीव हो उठा। जहाँ वह होगा और उसकी किताबें होंगी और होगी उसकी कापी पेंसिल। अपने जीवन के एकाकीपन की व्यथा वह उस कापी के पन्नों पर उड़ेल देगा। अपने हृदय की सारी कसक उन पन्नों पर चित्रित कर देगा। वह लिखेगा उनके लिए जो एकाकी हैं। वह गायेगा उनके लिए जिनके कानों ने कभी प्रेम का संगीत नहीं सुना। वह रोयेगा उनके लिए जिन्हें कभी भी किसी से आँसू की एक बूँद नहीं मिली। किशोर एक भावुकता में बह चला। एक मीठी भावुकता में। उसके प्राणों का संगीत उसकी कविता प्रेय.ी होगी। किताबें उस प्रेयसी की सहचरी। और···कापी पेंसिल और सभी चीजों के लिए उसने ऐसी ही रंगीन उपमायें दे डालीं। मिल से लेकर घटक के आश्रम तक वह एक रंगीन वायु में उड़ता रहा। मानो फेनिल समुद्र के फेन के ऊपर वह बहता हुआ आया हो। और वह फेनिल समुद्र मधुर मदिरा के रूप में हो।

घटक के आश्रम पर पहुँचकर उसे ऐसा लगा मानो उसे किसी ने तट पर ला पटका हो। घटक गजेन्द्रमोक्ष का पाठ कर रहे थे। उनकी गाँजे की चिलम से चार अँगुल ऊपर उठकर आग दहक रही थी। किशोर को देखते ही वह सम्मान के स्वर में चिल्ला उठे—"अरे आओ भाई, आज तो तुम पूरे दिन मिल के ही हो लिए।"

जीवन की वास्तविकता पर उतर कर उसके स्वर में कुछ उदासीनता सी आ गई। बोला—"हाँ, हिसाब-किताब में कुछ देर लग गई।"

"कैसी चलती है मिल?"

"ठीक है।"

"आय ठीक-ठाक है न?"

"बुरी नहीं। मेरे अकेले के लिए काफी है।"

"बैठो" घटक ने अपने नीचे की चटाई से कुछ जगह छोड़ दी। घटक कुछ देर तक अपने गजेन्द्रमोक्ष में व्यस्त रहे । फिर बहुत सारा धूम्र नाक और मुँह में से एक साथ त्याग करते हुए बोले—"समुद्र देखा है कभी ?"

"नहीं तो।"

"देखने की इच्छा है ?"

"ऐसी कोई खास इच्छा नहीं। मौका पड़ने पर देख भी सकता हूँ। लेकिन यहाँ तो पास में कहीं समुद्र है नहीं ?"

"विज्ञान के इस युग में पास बनाते कितनी देर लगती है किशोर बाबू।"

इसके बाद घटकदा ने एक जोर का गाँजे का कश खींचा और उसके धुँए को छोड़ते हुए बोले—"समुद्र देखने का एक निमंत्रण आया है ।"

"समुद्र का निमंत्रण ? क्या विलायत के किसी मित्र ने निमंत्रण भेजा है ?"

"नहीं। नहीं। विलायती समुद्र नहीं। देशी समुद्र, सोलहो आने स्वदेशी।"

"मैं समझ नहीं पा रहा हूँ, स्पष्ट रूप से बताइये ।"

घटकदा उस समय गाँजे में लगे हुए थे। आँख के इशारे से उन्होंने कुछ देर रुकने को कहा। फिर धूम्र-त्याग और स्वर-निर्माण दोनों एक साथ करते हुए बोले—"गंगासागर का मेला सुना है कभी ?"

"हाँ सुना तो है। लेकिन उसके बारे में ज्यादा कुछ नहीं जानता।"

"ज्यादा जानकर क्या करोगे। इतना जान लो कि साल में तीन दिन समुद्र के किनारे धर्म-पिपासुओं की एक अच्छी खासी भीड़ इकट्ठी होती है।"

"तो फिर।"

"तो फिर क्या हमारे इस श्रीनगर गांव में भी धर्म-पिपासु महिला

पुरुषों की कमी नहीं है। अभी जब तुम राइस मिल गए थे तो कुछ आदमी और औरतें मेरे पास आई थीं। वे कह रहे थे कि अगर मैं उनके साथ चला चलूँ तो वे लोग गंगा-सागर जाने को इच्छुक हैं।"

"क्यों, उन्हें आपकी क्या जरूरत है?"

"भाई, देहाती आदमी हैं। गाँव से बाहर कभी गये नहीं। अकेले जाने में थोड़ा डर-सा लगता है।"

"तो आपने उन्हें क्या उत्तर दिया?"

"मैंने? मैंने उनसे कहा कि मेरा और मेरे एक दोस्त का यानी कि तुम्हारा आने-जाने, खाने-पीने का खर्च वे लोग अगर दे सकें तो मैं चलने को तैयार हूँ। वे लोग बड़ी खुशी से इस पर राजी हो गये।"

घटक ने फिर एक कश खींचा। फिर बोला—"सारे का सारा गाँव पुण्य-संचय करने दौड़ रहा है। जीवन-भर पाप-संचय करता रहा हूँ। तुम अगर साथ चलो तो थोड़ा-सा पुण्य-संचय भी कर आऊँ।" बात-समाप्त करके घटक जोरों से हँस पड़ा। किशोर ने भी उस हँसी में साथ दिया। और फिर उसने बताया कि पुण्य-संचय करने की उसकी रंचमात्र भी इच्छा नहीं है।

घटक ने इस बात के उत्तर में वही उत्तर दिया जो अभी-अभी कुछ देर पहले रास्ते में आई भावुकता के बीच में उसके दिमाग में पैदा हुआ था। घटक ने कहा—"पुण्य-संचय न सही ज्ञान-संचय ही सही। सभी क्या तीर्थों में पुण्यसंचय करने ही जाते हैं। कोई जाता है जेब काट कर अर्थ संचय करने। कोई जाता है परिभ्रमण का आनन्द-संचय करने। तो कोई कुछ संचय करने। दुनिया में संचय तो एक तरह का नहीं है, अनेक तरह के हैं। किसी की प्यास शक्ति-संचय की है। किसी की यश-संचय की तो किसी की अर्थ-संचय की। प्रत्येक वस्तु संचय करने वाला संचय-कर्त्ता अपनी संचित वस्तु के अलावा दूसरी संचय-वस्तु की तरफ ध्यान भी नहीं देता। तुमने सुना होगा फलाने ने देश के लिए इतना त्याग किया, अमुक ने समाज के लिए सर्वस्व दे डाला। और दुनियाँ

उसके इस त्याग को विचित्रता की दृष्टि से देखती है। किन्तु किशोर! ध्यान से अगर देखा जाय तो विचित्रता उसमें कुछ है नहीं। अपने अपने संचय की पिपासा-मात्र है।"

घटक के उत्तर हमेशा विचित्र होते थे। यह भी उसी ढंग का था। किशोर ने कोई जवाब न दिया। घटक ने कहा—"चलो घूम आओ थोड़ा-सा। बहुत कुछ देखने को मिलेगा। कितनी ही नदियों का संगम-स्थल है समुद्र। और भी बहुत कुछ। साथ-साथ एक पैसे का खर्च नहीं। आना-जाना खाना-पीना सब कुछ मुफ्त।" घटक की बात सुनकर किशोर हँसा। बोला—"आपने पहले जितनी चीजें गिनाईं वे सब मेरे लिए लोभनीय अवश्य हैं, किन्तु आपकी पिछली बात मेरे लिए जरा भी लोभनीय नहीं, बल्कि लज्जाजनक है। इसलिए चलना ही अगर पड़ा तो मैं सम्पूर्णतया अपने खर्चे से जाऊँगा।"

"ठीक है यह तो और भी अच्छा है। लेकिन भाई इस पद को हटाओ। कहो कि चलना ही है और जरूर चलूँगा।"

किशोर ने स्वीकृति दे-दी। घटक ने मुस्कराकर कहा—"इसके अलावा तुम्हारा एक फायदा भी है।"

प्रश्नसूचक दृष्टि से किशोर ने देखा। पूछा—"वह क्या।" "वह यह कि तुम्हारे सत्य मिथ्या की मीमांसा भी रास्ते में हो जायगी।" किशोर कुछ समझ न सका। बोला—"क्या मतलब?"

"मतलब ऐसा कौन सा कठिन है। कल की पंचायत में जिस छोकरी से तुमने सत्य के ऊपर तर्क करने की इच्छा प्रकट की थी वह अमला भी अपने साथ चल रही है।"

"अमला? उसकी भी पुण्य-संचय करने की अभिलाषा है?"

"अब यह कैसे कहूँ कि पुण्य-संचय करने की अभिलाषा है या तुम्हारे सत्य-मिथ्या के तर्क की मीमांसा करने की अभिलाषा है।"

कह कर घटक जोरों से हँस पड़ा। लेकिन इस बार की हँसी में किशोर ने जरा भी सहयोग नहीं दिया। कल से ही उस विचित्र निर्लज्ज

नारी और उसके नाम से किशोर को एक अत्यन्त घृणा अनुभव हो रही थी। घटक का यह समाचार उसके लिए संतोषजनक नहीं था। फिर भी किशोर को जाना पड़ा। दुनियाँ में बहुत-से काम अनिच्छा होने पर भी करने पड़ते हैं।

: ६ :

हिन्दुओं के जितने तीर्थ हैं शायद उसके अर्द्ध शतांश भी दूसरे धर्मावलम्बियों के नहीं हैं। हिन्दू-मस्तिष्क संकोची और कृपण नहीं रहा है। विस्तृत हृदय लेकर उसने विस्तृतता की ही सृष्टि की है। अनेक देवता, अनेक तीर्थ, अनेक शास्त्र और तो और विवाह भी अनेक। लेकिन आज के इस एकवाद के युग में सब खत्म होकर वह एकवाद अब शून्यवाद की तरफ अग्रसर हो रहा है। आज की इस नवीन संस्कृति ने मानव को वेग तो दिया है किन्तु आवेग छीन लिया। आवेगहीन मानव शुष्क वेग को लेकर ही निरन्तर दौड़ रहा है।

लेकिन इस एकवाद के युग में भी अनेक वाद पंथियों की संख्या कम नहीं है। एकवादी आधुनिक अनेक चेष्टा करने पर भी संस्कारों से मुक्त नहीं हो पाया है। सिद्धांत एक दूसरी चीज है और जीवन एक दूसरी चीज। ब्रह्म-समाज के संस्थापक केशवसैन ने एक स्थान पर लिखा है कि जब वे प्रतिमा-पूजन के कड़े विरोध में देशव्यापी आन्दोलन उठा रहे थे। उस समय भी उनकी स्वयं की स्थिति ऐसी थी कि शालिग्राम के आकार का कोई पत्थर उनके पैरों तले आ जाने पर उनका मन संकुचित हो उठता था तो हृदय और मस्तिष्क में अंतर है। उनका ज्ञानी मस्तिष्क जिस समय प्रतिमा पूजन को सिद्धांततः एक मूर्खता मान बैठा था ठ[illegible] समय पार्थिव पूजा के संस्कारों में पला हुआ उनका

हृदय अपने मस्तिष्क से पूर्णतया सम्मत न हो पाया था। संस्कारों की मुक्ति युक्ति से नहीं होती। तो तीर्थ-पर्यटन के संस्कारों में पले हुए हिन्दुओं का आवेश इस शून्यवाद के युग में भी कम नहीं हो पाया है। और जब उन्हें तीर्थ-पर्यटन का जोश आता है तो संक्रामक रूप से आता है। भेड़-चाल नाम की जो एक कहावत है, बंगाल, गुजरात, मद्रास, बिहार, यू० पी० कहीं के भी हिन्दू इस कहावत के प्रभाव से बच नहीं पाये हैं। और भेड़ों के झुण्ड की ही भांति भारत के सभी प्रान्तों के वासी इन तीर्थ-यात्राओं के लिए निकल पड़ते हैं।

हिन्दुओं के अनेक तीर्थों में गंगासागर नाम का एक तीर्थ है। जिसके बारे में कहावत है कि और तीर्थ बार-बार, गंगासागर एक बार। कहावत की सत्यता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि पूरे साल भर में तीन दिन के लिए ही यह मेला लगता है। गंगासागर के बारे में पुराणों में एक बड़ा दिलचस्प किस्सा है। वह इस तरह है: अयोध्या के राजा सगर ने भृगुमुनि के आश्रम में भूख-हड़ताल शुरू कर दी। ठीक इस युग के काँग्रेसियों की तरह। लेकिन काँग्रेसियों के प्रस्ताव से सगर का प्रस्ताव सर्वथा भिन्न था। उनका प्रस्ताव व्यक्तिगत था और वह था पुत्र कामना। जीत आखिर सगर की हुई। भृगु को हथियार डालने पड़े। और उन्होंने संतुष्ट होकर जो वरदान दिया इस युग में उससे बड़ा अभिशाप और हो ही क्या सकता है। प्रथम पत्नी से असमंजस नाम का एक पुत्र और द्वितीय पत्नी से एक साथ साठ हजार पुत्र। अच्छा हुआ जो आज का बर्थ-कन्ट्रोल का युग वह न था। जबकि सारे विज्ञान की दृष्टि सृजन-शक्ति का ह्रास करने पर लगी हुई है। और खाद्य पदार्थों को लेकर किसमें सृजन करने की शक्ति कम है और किसमें विशेष इसका अनुसंधान शुरू हो गया है।

इस युग में साठ हजार तो दूर साठ हजार के सारे शून्यों को हटा कर जो बाकी बचता है। वही अगर किसी मध्यम श्रेणी के घर में जन्म ले-लें तो घर एक चिड़ियाखाना नहीं तो कबूतरखाना तो अवश्य बन

जाता है। खैर इसके पश्चात् इतने पुत्र पाकर सगर ने अश्वमेध की रचना की और इसे देखकर इन्द्रासन छिन जाने के भय से भयभीत इन्द्र ने आकर अश्व की चोरी कर डाली। ठीक उसी तरह इस युग में वोटों में चोरी होती है और जिस तरह राजनैतिक पहलवान अपने दोषों को दूसरों के मत्थे मढ़कर चैन की नींद लेते हैं, इन्द्र ने भी वही किया। घोड़ा छुपाया लेजाकर कपिल मुनि के आश्रम में। सगर ने अपने साठ हजार पुत्रों को यज्ञ का अश्व खोजने के लिए भेजा। सारी पृथ्वी खोजने के पश्चात् उन सगर-आत्मजनों ने अश्व-कपिल मुनि के आश्रम में ही बँधा पाया। फिर क्या था, उन साठ हजारों ने एक साथ मिल कर मुनि को गाली देना शुरू कर दिया। कपिल मुनि ध्यान में थे हल्लागुल्ला सुनकर उनकी समाधि टूटी। और कुपित दृष्टि से सगर-पुत्रों की ओर देखा। बस बात-की-बात में साठ के साठ हजार भस्म हो गये। बहुत खोजने के पश्चात् सगर की दूसरी रानी से उत्पन्न असमजस के पुत्र अंशुमान ने उन साठ हजारों भस्म पितृ भ्राताओं का पता लगाया। इसके बाद उनका उद्धार करने की चिंता लगी। लेकिन वे कुछ न कर सके। बहुत दिनों बाद अंशुमान के पुत्र दिलीप और उनके पुत्र भागीरथ ने परिश्रम, जैसा कि आजकल राजनैनिक नेता चुनावों में करते हैं, करके गंगा को पृथ्वी पर लाकर अपने पितृ-पुरुषों का उद्धार किया। गंगासागर-तीर्थ में जहाँ साठ हजार सगर-पुत्र भस्म हुए, उसका पुराणों में एक बहुत बड़ा महत्व है।

पौष मास की संक्रांति के दिन यहाँ बहुत बड़ा मेला लगता है। कलकत्ता-प्रवासी, बिहारी, पंजाबी, मारवाड़ियों के अलावा बंगाल के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न भाषाएँ हो सकती हैं। भिन्न-भिन्न रूप और आकृति हो सकती है। आचार-व्यवहार और खान-पान भी पृथक-पृथक हो सकता है। फिर भी एक वस्तु ऐसी है जिसके सूत्र में बंधने का सच्चा परिचय तीर्थ-स्थानों में ही मिलता है। जहाँ कि भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी हिन्दू कन्धे-से-कन्धा मिलाकर भाषा की भिन्नता

भूल कर, अन्तःकरण की अभिन्न भक्ति और अप्रथक श्रद्धा के साथ एक साथ पूजा सम्पादन करते हैं। एकाधिक प्रदेशों के इस सम्मेलन को देख कर अनुभव होने लगता है कि बिहार और नवाखाली से लेकर सिन्ध और उत्तर प्रदेश तक के सभी हिन्दुओं का बाहरी आचरण प्रथक-प्रथक होने पर भी उनका हृदय एक है, रक्त एक है, अस्थि एक है, और मज्जा एक है।

गंगासागर बंगाल के २४ परगने जिले में हिन्द उपसागर के किनारे का एक स्थान है। स्टीमर, मोटर-बोट, तथा नौकाओं द्वारा लक्षाधिक यात्री यहाँ इस तीन दिन के मेले में एकत्रित होते हैं। किशोर को स्टीमर से जाने का सौभाग्य प्राप्त न हुआ। नौका से जाने का परम दुर्भाग्य ही मिला। किन्तु इस नौका-यात्रा के नौ दिन तक सिकुड़ कर बैठे रहने में भी किशोर ने जो एक अतीव आनन्द उपलब्ध किया, उसे वह सारे जीवन नहीं भुला सकता।

मेदिनीपुर जिले के घाटाल शहर से सीधी गंगासागर तक के लिए नावें जाती हैं। ये नावें यू० पी० की नावों की अपेक्षा आकार में बड़ी होती हैं। कोई-कोई तो इतनी बड़ी होती है जिसमें सौ-सवा-सौ आदमी मजे से लेट कर जा सकते हैं। साधारणतया नाव के दो भाग होते हैं। एक ऊपरी और एक निचला। निचला हिस्सा नाव की तह से लगा हुआ होता है। प्रकाश और वायु का पर्याप्त स्थान न होने की वजह से उसमें अधिकांश यात्रियों और नाविकों का सामान ही भरा जाता है। फिर भी मेले की अधिक भीड़-भाड़ के समय नाव-मालिक दस पाँच सस्ते किराये के यात्रियों का चालान भी उस सामान के साथ कर देते हैं। ऊपरी हिस्सा होता है नाव का ऊपरी भाग; उस पर मजबूत तख्ते बिछे रहते हैं और उस ऊपरी भाग को धूप और वर्षा से बचाने के लिए बाँस की मजबूत खपच्चियों की एक गोलाकार छत भी रहती है। उस छत के ऊपरी भाग पर मोमजामा अथवा कोलतार से प्रलेपित टाट बिछा रहता है। बांस की खपच्चीयों की वह छत काफी मजबूत रहती है।

दोनों किनारों के दृश्यों को देखने के लिए अथवा पौष के जाड़े के दिनों में धूप खाने के लिए दस-बीस आदमी उस छत पर मज़े से बैठ सकते हैं।

नाव के किराये पर यात्रियों को दो-चार सुविधाएँ और रहती हैं। भोजन बनाने के लिए लकड़ी और मिट्टी की हाँडी तथा पत्तलों की व्यवस्था उस किराये में ही शामिल रहती है। इसके अलावा पानी में जल की व्यवस्था भी नाव के व्यवस्थापकों की तरफ से ही होती है। आगे चलकर समुद्र के ज्वार-भाटे की वजह से नदियों का पानी खारा हो जाता है। वह पीने योग्य नहीं रहता। इसलिए नाविक यात्रा के प्रारंभ में ही मिट्टी की बड़ी-बड़ी गोलों में पानी का अच्छा खाशा संचय रखते हैं और बीच-बीच में नाव जहाँ जा सकती है। वहाँ भी किसी पास के जनपद से उस संचय को फिर से पूर्ण कर लेते हैं।

उस पुण्यार्थी यात्रा-दल में अधिकाँश उस वर्ण के हिन्दू होते हैं, जो अच्छी-भली हालत में उन नाविकों के हाथ का पानी किसी भी हालत में न पियें। लेकिन यह नियम नाव पर बैठकर लागू नहीं होता। पूछने पर उत्तर मिलता है। गंगा के वक्ष पर कोई दोष नहीं। और गंगा का वक्ष नहीं भी हो तो भी ऐसी कोई खास बात नहीं है। शास्त्रों ने उसकी भी व्यवस्था कर दी है। 'आपत्ति काले मर्यादा नास्ति'। जिस धर्म ने अनेक मर्यादाएँ स्थापित की हैं, अनेक द्वार बन्द किए, उस धर्म ने थोड़ी-सी दयालुता भी दर्शाई है। धर्मार्थियों के स्वार्थ का सम्पूर्णतया दमन उसने नहीं किया। विशेष परिस्थिति और समय के नाम पर उन बन्द दरवाजों में छिद्र भी रख दिए हैं, जहाँ से अपनी स्वार्थ-रक्षा के लिए धर्मार्थी उन छिद्रों में से अपने विशाल वायु को बड़ी सुगमता के साथ निकाल सकता है।

खैर। नाव में संभावित सभी प्रकार की सुविधाएं रहती हैं।

घटक के नेतृत्व में जिस नाव को जाना था। उसमें कुल पिचासी यात्री थे। किन्तु संख्या के अनुपात से नाव का आकार भी अपेक्षाकृत छोटा था। उन पिचासी यात्रियों में चार-पाँच पुरुषों को छोड़कर

सभी महिलायें थीं। सभी जगह पुण्य-संचय करने के कार्य में महिलायें ही अधिक उत्साह दिखाती हैं। नाव में स्थान प्राप्ति के समय एक अच्छी-खाशी हलचल हुई थी। अपने साढ़े तीन हाथ शरीर को येन-केन प्रकारेण फैलाने लायक स्थान पर आधिपत्य करने के लिए एक अच्छा-खासा वाक्-युद्ध हुआ। वाक्-युद्ध में सभी प्रान्तों की औरतें समान भाव से प्रवीण हैं। और वाक-प्रश्नों की भाषा में भले ही पार्थक्य हों, भाव सम्पूर्ण-तया एक सा ही होता है। उसमें तिलमात्र भी फर्क नहीं होता। कर्ण एक ही रूप से पवित्र होते हैं। यह बात किशोर को मन-ही-मन स्वीकार करनी ही पड़ी।

खैर जगह मिली सभी को। किसी को हाथ सिकोड़ कर तो किसी को पैर सिकोड़ कर। नाव के यात्रियों में सभी श्रीनगर के नहीं थे। अधिकांश संख्या बाहर के यात्रियों की थी। श्रीनगर के कुल पन्द्रह यात्री थे, जिनमें घटक और किशोर को छोड़कर सभी महिलाएं थीं। श्रीनगर के दल ने एक ही स्थान पर अपना दखल जमाया। बीच में घटक और किशोर का आसन था।

: १० :

श्रीनगर से घाटाल तक मोटर में आन के वक्त अपनी साथ की सवारियों को किशोर ने गौर से न देखा था। नाव का वातावरण शान्त होने पर उसने साथ की महिलाओं पर दृष्टि दौड़ाई और वह दृष्टि बहुत देर तक वापिस न आ सकी। श्रीनगर जैसे जन-पद में ऐसी भी रूपराशि निवास करती है, इसकी कल्पना भी किशोर के लिए असंभव थी। किशोर ने देखा और जी भर कर देखा। सारी शिष्टता और सभ्यता भूल कर देखा। एक इकहरे शरीर की हलकी सी दुबली पतली

युवती। याद नहीं आया उसे कि ऐसा निर्दोष सौन्दर्य उसने पहले कभी भी देखा है। वह वाक्शक्ति-शून्य होकर देखता ही रह गया। सुनने में यह बात शायद हास्यास्पद-सी लगे। लेकिन दुनियाँ में दो ही चीजें ऐसी हैं जिनके सामने पड़ने पर स्तंभित रह जाना पड़ता है, सौन्दर्य और प्रतिभा।

कुछ देर पश्चात् जब किशोर का शीघ्र ही किसी वस्तु से प्रभावित होने वाला मस्तिष्क कुछ संयत सा हुआ तो किशोर ने उस युवती को पास की एक औरत से बात करते सुना। आवाज कुछ पहिचानी सी लगी। और अकस्मात् ही उसकी स्मृति ने पहचान डाला। यह वही आवाज थी जो दो दिन पहिले एक निर्लज्ज नारी के मुँह से उसने सुनी थी। और रोशनी के अपर्याप्त प्रभाव में जिसकी आकृति वह ठीक ढंग से नहीं देख पाया था। और यह वही युवती थी जिसके लिए दो दिन से वह एक अत्यंत घृणा का भाव अपने मन में पोषण किये बैठा था।

किन्तु धन्य है उस निर्दोष सौन्दर्य के लिए जिसने अपनी विशाल शक्ति से एक क्षण में ही किशोर की सारी घृणा, सारी विरक्ति चूर-चार करके रखदी। और उस स्थान पर रह गया केवल आकर्षण। केवल आज जी भर कर उसे देख लेने की इच्छा।

भावुक किशोर शीघ्र ही भावुकता की लहरों पर तैरने लगा। उसे लगा जैसे बहुत दिन की भूली हुई कोई कविता उसे याद हो आई हो। और लगा जैसे बहुत दिन से, युग-युग से, वह इस नारी से परिचित हो।

मनोविश्लेषण का यह भी एक बड़ा विचित्र सिद्धान्त है। सभी भावुक युवक किसी सुन्दरी युवती को देखते ही अनुभव करने लगते हैं कि वह उसकी युग-युग की परिचिता है।

\+ \+ \+

शाम हुई, नदी के ज्वार में भाटा पड़ा और जौनपुरी नाविकों ने

हिन्दी की कजरी गाने के पश्चात हनुमान-भक्ति-शून्य बंगाल में हनुमान जी की जय बोलकर लंगर उठा दिया।

हनुमान जी की पूजा बंगाल में ज़रा भी नहीं है। यहाँ के लोग काली, मनसा, चंडी और दुर्गा के भक्त हैं। बिहारी, यू० पी० और राजस्थान के भक्त यदि पुरुष-शक्ति हनुमान और भैरव की उपासना करते हैं तो बंगाली भक्त करते हैं नारी-शक्ति काली और दुर्गा की उपासना। बंगालियों ने अपने पुरुष शिव को नारी दुर्गा के चरणों में अर्पित कर दिया है। बंगालियों की भाषा, आव-भाव, रहन-सहन में यदि नारी की कोमलता का लालित्य है तो हिन्दी-भाषा-भाषियों के प्रत्येक आचरण में पुरुष की कठोरता का अभास।

नाव की प्यासी सवारियाँ बंगाल के विभिन्न जिलों से आई थीं। उनकी एक ही भाषा में एकाधिक प्रकार के उच्चारणों को सुनकर 'योजनान्ते भाषा' का सिद्धान्त अनायास ही प्रमाणित हो जाता है।

यू० पी० में जैसे बलिया और मथुरा की बोली में ज़मीन आसमान का फ़र्क है इतना ही पूर्व बंग की मौखिक भाषा और पश्चिम बंग की व्यावहारिक भाषा में है।

इसके अलावा पूर्व बंग वालों के उच्चारण पर इस्लामी उच्चारण की छाप पड़ गई है। ज को ज़ और ख को ख़ ये लोग ठीक उर्दू वालों की तरह ही व्यवहार करते हैं। उर्दू वाले यदि शब्द विशेष पर करते हैं तो ये लोग प्रत्येक शब्द पर। पश्चिम बंग वाले यदि कहते हैं 'की खाच्छैन' तो ये लोग कहते हैं 'क़ी ख़ाइताशैन'।

नाव के चलते ही इन विभिन्न भाषाओं का कलरव शान्त हुआ। अधिकांश यात्री बाबा कपिलमुनि की जय बोल कर येनकेनप्रकारेण अपने पैरों को फैलाकर खर्राटे भरने लगे। घटक दा ने गजेन्द्रमोक्ष का सामान निकाला और बाबा कपिलमुनि की जय बोल कर दियासलाई किशोर के हाथों में थमा दी। क्षणभर में ही नाव का वातावरण गाँजे के धूम्र से सुरभित हो उठा।

सुबह दैनिक और नित्य नैमत्तिक कर्मों के लिए बहुत थोड़ी देर के लिए नाविकों ने नाव किनारे लगाई। इसके बाद पूरे दिन भर नाव कहीं पर नहीं रुकी। दैनिक प्रयोजनीय कर्मों के लिए नाव के साथ ही अस्थायी व्यवस्था थी। एक अस्थायी बाथरूम भी बाँस की खपच्चियों का नाव के साथ बनाया गया था, और नाव की एक छोटी सी कोठरी में भोजन बनाने की भी व्यवस्था थी। लेकिन अधिकांश यात्रियों ने उस दिन भोजन नहीं बनाया। चिवड़ा और मूड़ी के आहार से ही उदर-ज्वाला शान्त करके वह मेले की ओर अग्रसर होने लगे। किशोर ने भी घटक के साथ उपरोक्त आहार ही किया। इसके बाद घटक ने किशोर से कहा—"चलो ऊपर धूप में बैठें।"

ऊपर की छत गोलाकार बाँस की खपच्चियों की थी। बैठने में जरा सावधानी की आवश्यकता थी। सावधानी के साथ ही दोनों बैठ गये। इस स्थान पर नदी का चौड़ाव बहुत अधिक नहीं था। दोनों किनारों को मजे से देखा जा सकता था। नाव जिस एक किनारे के अधिक पास थी, वहाँ के दृश्य दृष्टि के लिए ज्यादा सरल थे। किनारों पर बसे हुए छोटे-छोटे जनपद के दैनिक कार्यों का निरीक्षण किशोर उत्सुकता के साथ करने लगा। ग्राम की बधुएँ नदी से घरों के लिए पानी ले जा रही हैं। उनकी कमर के एक ओर रखी हुई पीतल की कलसी सोने की भाँति धूप में चमक रही हैं। यू० पी० की तरह यहाँ की औरतें सर पर पानी के घड़े नहीं ढोतीं। कमर की एक बगल में एक हाथ के सहारे ले जाती हैं उस पानी लेजाने की क्रिया में भी एक लालित्य है। एक मन-मोहक भंगिमा है। यू० पी० की पनिहारिनों की भंगिमा में स्वास्थ्य झलकता है। किन्तु यहाँ की पनिहारिनों की भंगिमा में कोमलता झलकती है, नारीत्व झलकता है।

और झलकता है लालित्य। बंगाल की सभी चीजें, वहाँ के देहात, वहाँ की प्रकृति, वहाँ की भाषा सभी कुछ में एक नज़ाकत है, एक कोमलता है, जो शुष्कता और कठोरता से दूर है। और तो और यहाँ का खाद्य तक सरस है। यहाँ की मिठाइयाँ भी शुष्क नहीं। उनसे भी रस टपकता है।

किशोर देखने लगा। उन छोटे आकार वाली हल्की-फुल्की सी बंगाली बधुओं को। छोटे से अवगुंठन ने मानो चार चाँद लगा दिए हों। अवगुंठन से मुक्ति पाकर नारी को आदर्श साँचें में ढाला जा सकता है। उसके अबलापन को कुछ अंशों में दूर किया जा सकता है। लेकिन साथ-साथ एक विशिष्ट सौन्दर्य भी उनसे छिन जाता है। सौन्दर्य की एक निजस्व विशिष्टता नष्ट हो जाती है। यह बात किशोर को माननी ही पड़ी। उस छोटे से अवगुंठन में से जब किसी प्रकार की असावधानी से उसके उस चन्द्र-बदन का दर्शन हो जाता है तो ऐसा लगता है मानो एक क्षण के लिए चाँद से बदरी हट गई हो। मेघ शून्य चन्द्र का भी अगर अपना एक सौन्दर्य है तो मेघाच्छादित चन्द्र भी अपना एक विशिष्ट सौंदर्य रखता है।

किसी-किसी गाँव की कुमारिकाएँ भी पास के घाट से पानी लेने जा रही हैं। उनके खुले हुए मुक्त केश नितम्बों को पार करके मानो चरण चूमने जा रहे हों। किशोर उन लम्बे केश वाली किशोरियों को भावुकता के साथ देखने लगा। कल जब से उसने अमला को देखा है और उसके निर्दोष सौंदर्य को देखा है तो मानो उसके जीवन का एक नया पृष्ठ आरंभ हुआ है।

कल जब तक नाव में प्रकाश रहा और दृष्टि में देखने की क्षमता रही, वह अमला की तरफ देखता रहा। अशिष्ट बन कर देखता रहा। सारा शिष्टाचार भूल कर देखता रहा। अब तक किशोर की आँखों में प्राकृतिक सौंदर्य के लिए ही पिपासा रही है। लेकिन प्राकृतिक सौंदर्य में आकर्षण हो सकता है, सजीवता नहीं है। हृदय को तोड़-मरोड़ कर

रख देने की क्षमता नहीं है। वह शक्ति सिर्फ इसी नारी के सौंदर्य में है। प्राकृतिक सौंदर्य शान्तिदायक है और नारी का सौंदर्य अशान्तिदायक। प्राकृतिक सौंदर्य मनमोहक है और नारी का सौंदर्य मन को गुदगुदाने वाला। प्राकृतिक सौंदर्य चेतना देता है और नारी का सौंदर्य प्रेरणा। प्राकृतिक सौंदर्य से तृप्ति मिलती है और नारी के सौंदर्य से स्फूर्ति।

इसी प्रकार की भावुकता में जब किशोर बिल्कुल डूब सा गया तो कब अमला उसके और घटक के बीच में आ बैठी इसका उसे होश भी नहीं रहा। होश आया अमला और घटक की बातों से। घटक अमला से पूछ रहा था—"तुम इन्हें जानती हो अमला।" जवाब में अमला हँसी और बोली—"हाँ एक दिन पंचायत की दो एक तर्क-वितर्क को अगर जानना कहो, तो जरूर जानती हूँ।"

घटक ने किशोर का पूरा परिचय दिया और फिर बोला—"रहा अमला का परिचय, उसे तो तुम मुझसे सुन ही चुके हो।" अमला ने एक वाक्य और जोड़ दिया—"और सच्चा परिचय तो पंचायत के मुखियाओं के मुँह से मिल गया होगा।" किशोर भावुकता से उतर आया था। बात सुन कर मुस्करा दिया। अमला ने कहा—"उस दिन सत्य के सम्बन्ध में कुछ बोल रहे थे, उस दिन मुझे फुर्सत नहीं थी। आज बोलिए मैं सुनूँगी।" सत्य की मीमांसा करने का साहस अब किशोर का नहीं रहा था। उस दिन का सारा आवेश, सारी उत्तेजना, सारी घृणा चूरचार हो गई थी और उसके स्थान पर एक नये सत्य ने जन्म लिया था। और वह यह कि अमला का सौंदर्य स्वयं एक अकाट्य सत्य है, जिसका विरोध नहीं किया जा सकता। फिर भी किशोर ने उत्तर दिया—"उस दिन की पूरी बातें मुझे याद नहीं हैं। मैं क्या कहना चाहता था यह भी याद नहीं है और आप क्या कह रही थीं यह भी याद नहीं है।"

सचमुच आज किशोर को कुछ भी याद नहीं था। अमला के सौंदर्य की विशिष्टता ने उसकी याद कमजोर कर डाली थी। और उस पर भी जब वह सामने थी।

अमला ने कहा—"मैं याद दिलाए देती हूँ। मैंने उस दिन कहा था। दुनियाँ में जो कुछ है, चाहे वह कुरूप है या सुरूप, सभी कुछ सत्य है। बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय वाला सत्य एक व्यावसायिक ओढ़नी ओढ़े हुए है। सत्य आलोक भी है और अंधकार भी है। आलोक को सत्य मानव ने इसलिए माना है कि वह उसके लिए असुविधाजनक है। आपने इसके उत्तर में कहा था कि सुविधा और असुविधा से सत्य का कोई सम्बन्ध नहीं। और साथ-साथ यह भी कहा था कि सत्य केवल वही है जो सुन्दर है। इसलिए उस दिन आपकी इन पारस्परिक विरोधी दलीलों को सुनकर मैं हँस पड़ी थी।"

किशोर ने कहा—"उस दिन की सारी बातें मुझे पूरी तरह याद नहीं। लेकिन आज अगर आप सत्य के बारे में पूछें तो मैं फिर वही उत्तर दूँगा। सत्य वही है जो सुन्दर है। और मिथ्या वही है जो कुरूप है। सत्य मानव की सुविधा और असुविधा के साथ बदलता नहीं। सत्य एक अपरिवर्तनशील वस्तु है। उसका किसी भी स्थिति में परिवर्तन नहीं होता।"

अमला हँस पड़ी। बोली—"आपका पक्ष और उसके समर्थन की आपकी दलीलें बिल्कुल विरोधी हैं किशोर बाबू। सत्य को आप अपरिवर्तनशील भी मानते हैं। और केवल सुन्दर को ही सत्य मानते हैं। ऐसा किस तरह हो सकता है?

"क्यों?"

"देखिए मैं आपको बताती हूँ।" अमला जरा पास आ गई फिर बोली—"आप सुन्दर को सत्य इसीलिए न मानते हैं कि वह देखने में प्रिय है तथा मानव के लिए कल्याणकारक है।"

"जी।"

"और असुन्दर को असत्य इसलिए मानते हैं कि वह मानव के लिए कल्याणकारक नहीं है तथा देखने में अप्रिय है।"

"जी।"

"तो आपकी इन बातों से क्या सिद्ध हुआ। सिद्ध हुआ कि सत्य का सुविधा और असुविधा से सम्बन्ध है। जहाँ मानव की सुविधा है। वहाँ सत्य है और जहाँ असुविधा वह असत्य।"

किशोर शीघ्रता में कुछ जवाब न दे सका।

अमला ने कहा—"इस स्थिति में तो सत्य अपरिवर्तनशील नहीं रहता। वहाँ वह परिवर्तनशील हो जाता है।"

किशोर इस बार भी कोई उत्तर नहीं दे सका।

अमला ने कहा—'आप अगर सुन्दर को ही सत्य मानते हैं। और जो कुछ कल्याणकारक है, उसी को सत्य मानते हैं तो कहिए कि सत्य परिवर्तनशील है। और वह जनकल्याण के लिए हमेशा बदलता रहता है।"

किशोर ने कहा—"ठीक है। अगर यही कहने से ठीक हो तो मैं यही कह सकता हूँ। लेकिन सत्य उसी को मानूँगा जो सुन्दर है।"

"और असुन्दर को?"

"उसे सत्य नहीं मान सकता।"

"असुन्दर के अस्तित्व को मानते हैं या नहीं।'

"अस्तित्व तो दुनियाँ में अनेक चीजों का है।"

"जिसका अस्तित्व है वह तो मिथ्या हो ही नहीं सकता। और अगर आप असुन्दर के अस्तित्व को नहीं मानते। तो जो कुछ असुन्दर है। जो कुछ कुरूप है। वह सभी सुन्दर है और सभी सत्य है। अगर आप असुन्दर के अस्तित्व को मानते हैं, तब भी वह सत्य है। और अगर उसके अस्तित्व को नहीं मानते तब भी वह सत्य है। किशोर बाबू दुनियाँ में असत्य कुछ भी नहीं है।"

किशोर इसका जवाब न दे सका। जवाब दिया घटक ने। बोला—"अमला, तुम दोनों की बातचीत के बीच में बोलना उचित है या नहीं यह तो नहीं जानता। लेकिन प्रयोजनीय अवश्य है। मेरे सिद्धान्त के अनुसार किशोर भी गलत है और तुम भी। किशोर ने सत्य की परिभाषा

बताई अपरिवर्तनशील। और तुम बताती हो जिसका दुनियाँ में अस्तित्व है वह सब सत्य है। सत्य कोई एक वस्तु नहीं। वह सिर्फ एक गुण है। तुम कहती हो बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय वाला सत्य व्यावसायिक ओढ़नी ओढ़े हुए है। लेकिन व्यवसाय शब्द का प्रयोग करके तुम जिसे छोटा बनाने की कोशिश कर रही हो, वह व्यक्तिगत व्यवसाय है। समष्टिगत व्यवसाय छोटा नहीं। वह महान है। व्यक्ति के समष्टि का नाम ही जगत है। और वहाँ हम सब एक व्यावसायिक बँधन में बँधे हुए हैं। व्यक्ति को सुख और शांति के साथ जीवनयापन करने के लिये समष्टि के सहयोग की आवश्यकता होती है। और उस सहयोग में व्यक्ति के अकेलेपन का कोई मूल्य नहीं। मूल्य उसके समष्टिगत जीवन का है। व्यक्ति की प्रवृत्तियाँ भिन्न हो सकती हैं। उसकी इच्छाएँ पृथक-पृथक हो सकती हैं किन्तु समष्टि के साथ जीवनयापन करने के लिए व्यक्तियों की इच्छाओं का दमन करके समष्टिगत सुख और शान्ति के लिए एक समष्टिगत सिद्धान्त की आवश्यकता होती है। जिसमें कि समष्टि का हित हो और सार्वजनिक कल्याण हो। और इस सिद्धान्त का नाम ही सत्य है। और उसकी परिभाषा भी प्रत्येक स्थिति में प्रत्येक समय में एक ही है। और वह है जनकल्याण।"

"लेकिन घटक दा! इस तरह तो आप व्यक्ति के अस्तित्व को ही नष्ट कर रहे हैं। व्यक्ति से ही तो समष्टि बनता है।"

"व्यक्ति से ही समाज बनता है। मैं इस बात को मानता हूँ। लेकिन व्यक्ति सीखता जो कुछ है वह समाज से ही सीखता है। उसकी जितनी अभिलाषाएँ हैं, जितनी इच्छाएँ हैं, वह सब उसने समाज से सीखी हैं। इसलिए व्यक्ति समाज का ही एक अंग है। वह समाज से ही प्रेरणा पाता है और समाज से ही चेतना।"

अमला चुप थी, वह शायद कुछ सोच रही थी।

घटक ने कहा—"तुमने उस दिन कहा था अमला कि अपराध करने की प्रवृत्ति भी सत्य है। लेकिन मैंने तुम्हें अभी बताया कि सत्य कोई

वस्तु नहीं। सत्य कोई पदार्थ नहीं। वह तो सिर्फ एक गुण है। एक दिन था अमला जब मानव असभ्य था। जिस समय वह अकेला था। उस समय वह अपनी सारी इच्छाओं को सत्य मानता था। और उन पर आचरण करता था। वह अपनी उदर की ज्वाला को मिटाने के लिए दूसरे को पकड़कर खा जाता था और कभी पकड़ाई में आने पर दूसरों का शिकार बन जाता था। उस समय उसके सामने मुसीबतें ही मुसीबतें थीं। संघर्ष ही संघर्ष था। एक दिन वह इस संघर्ष से घबड़ा उठा। और इस संघर्ष को दूर करने के लिए उसने सत्य के अनुसंधान की चेष्टा आरंभ करदी। और शीघ्र ही उसे सत्य के दर्शन हुए। और उसने माना कि सत्य वही है जो समष्टि के हित के लिए हो। उसने एक संगठन बनाया, एक समाज बनाया। उसके नियम बनाये। और उन नियमों को सत्य के रूप में माना और अनियम को मिथ्या के रूप में। मानव का वह अनुसंधान आज भी समाप्त नहीं हुआ है। और किसी दिन वह समाप्त हो भी नहीं सकेगा। मानव हमेशा नवीनता का इच्छक है। और पुराने के प्रति वह उदासीन है। जब तक मानव रहेगा और उस की इच्छाएँ रहेंगी तब तक वह इस अनुसंधान में लगा ही रहेगा और प्राचीनता के खंडहरों पर नवीनता का निर्माण करेगा। लेकिन निर्माण कुछ भी हो मैं सिर्फ दृढ़ता का कायल हूँ। उस दिन पंचायत शेष होने पर मैंने तुम से क्या कहा था किशोर। मैं अपराध और शासन दोनों को सत्य मानता हूँ। मैं सिर्फ दृढ़ता पसन्द करता हूँ। जिसमें दृढ़ता होती है, जीत उसी की होती है। और जो जीतता है वही सत्य है।"

घटक की लम्बी-चौड़ी स्पीच ने वाद-विवाद के क्रम को तोड़ डाला। मानो वह सभा शेष की सभापति की स्पीच हो जिसके बाद कार्यवाही शेष हो जाती है। सचमुच कार्यवाही शेष ही हो गई थी। तीनों में से अब किसी की भी इस दार्शनिक वाद-विवाद को आगे बढ़ाने की इच्छा नहीं थी। और न तीनों में से कोई भी इस दर्शनशास्त्र जैसे शुष्क विषय में दिलचस्पी ही रखता था। किशोर कवि था और जीवन की

वास्तविकता से दूर था। वह जो तर्क कर रहा था वह सिर्फ तर्क के लिए ही कर रहा था। घटक का भी अपना दूसरा मार्ग था। वह तो सिर्फ अब गाँजा शेष होने की वजह से ही इस शुष्क विषय पर इतनी गंभीरता के साथ उतर आया था। गाँजे की एकाध दम अगर लग जाती तो वह सत्य के इस तरह चिथड़े उड़ाता कि अमला और किशोर हँसे बिना न रहते। हाँ सिर्फ अमला एक अवश्य ऐसी थी जिसके साथ कुछ सत्य था। वह स्वेच्छाचार को सत्य मानती थी। अपनी प्रत्येक इच्छा को सत्य मानती थी। फिर भी इस विषय को लेकर किसी से तर्क करने की उसकी कोई इच्छा नहीं थी।

वार्तालाप का विषय बदलने को हुआ। बदलने की चेष्टा अमला ने ही की। बोली—"छोड़ो भी घटक दा। तुम तो पूरी मानव जाति के इतिहास का रोना ले बैठे। किशोर बाबू को छोड़ कर और भी तो दुनियाँ में आदमी हैं घटक दा। सभी क्या सिर्फ इस संसार में दूसरों का भला करने के लिए आए हैं। कुछ आए हैं इस दुनियाँ के क्रम में बँधने। और कुछ आए हैं अपने पराक्रम से दुनियाँ के क्रम को मोड़ने। सभी तो एक उद्देश्य और एक प्रवृत्ति को लेकर नहीं आए। दुनियाँ में दो तरह के आदमी हैं। घटक दा एक सिर्फ जीने के लिए जिन्दा रहते हैं। और दूसरे आनन्द और स्फूर्ति के लिए जिन्दा रहना चाहते हैं। पहिले खाना खाते हैं इसलिए कि उन्हें जीवित रहना है। इसलिए दैनिक आहार को यथासंभव स्वादहीन बनाकर उस खाद्य के पोषण तत्वों को ही वे लोग ग्रहण करते हैं। उनके सभी काम इस तत्व ग्रहण की परिभाषा लिए हुए हैं। विवाह करते हैं तो सन्तान प्राप्ति के लिए पत्नी को प्यार करते हैं तो इसलिए कि वह उन्हें सन्तान देती है। अथवा उनकी संतानों की जननी है। लेकिन दूसरे वे भी उन्हीं की तरह खाद्य पदार्थ के पोषण तत्व से अपनी जिन्दगी का आहार ग्रहण करते हैं। किन्तु खाद्य को यथासंभव रोचक बनाने की भी चेष्टा करते हैं। जीवित रहने के लिए ही वे आहार नहीं करते। आहार में एक आस्वाद

भी है इसलिए भी करते हैं। पत्नी सन्तान देती है। अथवा उनकी संतानों की जननी है। अथवा एक कर्तव्य समझकर पत्नी को प्यार नहीं करते। बल्कि प्यार इसलिए करते हैं कि प्यार करना उन्हें अच्छा लगता है।"

लेकिन अपनी लम्बी चौड़ी स्पीच खत्म करके उसने अकस्मात् ही प्रसंग बदल दिया। बोली—"छोड़ो इन चीजों को। हाँ ताश खेलोगे घटक दा।"

घटक ने कहा—"ताश खेलने के लिए कम से कम चार आदमियों की आवश्यकता है। हम लोग सिर्फ तीन हैं।"

"तो लूडो।"

लूडो नाम शायद अँगरेजी है। खेल भी अंगरेजी। लेकिन अब शुद्ध भारतीय। बंगाल में इसका घर-घर रिवाज है। ज्यादातर इसे औरतें और छोटे-छोटे बच्चे ही खेलते हैं। खेल कोई कठिन नहीं, बिल्कुल सरल है। शतरंज की बिछात की तरह ही एक पट्ठे के चौकोर टुकड़े पर चार कोनों में चार घर बने हुए हैं। इसके अलावा रंगबिरंगे छोटे-छोटे निशानों का पूरे उस पट्ठे पर फैलाव रहता है। चलने के लिए प्लास्टिक की एक छोटी सी गोट होती है। उस पर एक से लेकर छै तक निशान होते हैं। उस गोट को एक लकड़ी की डब्बी में रख कर गिराया जाता है। छै आते ही चलने की बारी शुरू होती है। प्रत्येक के पास चार-चार प्लास्टिक की बिन्दियां होती हैं। जो जितनी जल्दी मंजिल तय करके अपनी चारों बिन्दियों को सुरक्षित स्थान में पहुँचा देता है जीत उसी की होती है। मंजिल में कुछ झंझट भी है। पीछे वाली दूसरे प्रतिद्वन्द्वी की बिन्दी का नम्बर रखी हुई बिन्दी के स्थान पर पड़े तो वह बिन्दी फट जाती है और लौट कर उसी स्थान पर आ जाती है जहाँ से चलना शुरू होता है।

साधारणतया यह खेल चार आदमियों में होता है। लेकिन दो या तीन भी इसे खेल सकते हैं। किन्तु बिना चार आदमियों के खेल में जटिलता नहीं आती। शीघ्र ही समाप्त हो जाता है।

घटक ने हँस कर कहा—"सींग कटा कर जब बछड़ों में आ मिला हू तो लूडो भी खेलना पड़ेगा। आँख-मिचौनी कहोगी तो वह भी खेलनी पड़ेगी। ले आओ लूडो।"

नाव की छत पर ही लूडो की बिछात लगी। बहुत देर तक खेल जमा। बीच-बीच में खेल का बेतकल्लुफ भी चला। और इस तरह उस खेल ने अमला और किशोर को कुछ पास खींच कर रख दिया।

: १२ :

जब तक परिचय की निकटता न थी तब तक किशोर में अमला को देखने का एक अशिष्ट का सा साहस था। लेकिन इस निकटताने उस साहस में कुछ शिथिलता ला दी। फिर भी उदासीनता न थी। केवल वह साहस जो एक अपरिचिता के प्रति रहता है समाप्त हो गया था। और उसके स्थान पर चोर घुसा था। जब अमला का ध्यान दूसरी ओर होता तो वह चोर फायदा उठाता।

किशोर को मानो जीवन की एक नई अनुभूति से परिचय मिला। जीवन का एक मधुर रहस्य उसकी आँखों के सामने स्पष्ट हो उठा। किशोर की इस चोर दृष्टि को अमला ने न पकड़ा हो यह बात नहीं। बीच-बीच में अकस्मात् पकड़ लेती है। अमला के कपोलों पर ऊष्णता आ जाती है। और उसकी झुलसन किशोर के कपोलों को भी बाकी नहीं छोड़ती। किन्तु अमला की उस समय की दृष्टि में उपेक्षा नहीं होती। शासन भी नहीं होता। होता है प्रश्रय और एक अस्पष्ट सी मुस्कान का आभास। उस मुस्कान में व्यंग होता है या और कुछ इसे किशोर नहीं पकड़ पाता। किन्तु उसकी आंखें नीचे की ओर झुक जाती हैं। फिर वह बहुत देर तक उन्हें ऊपर नहीं उठा पाता।

नाव गंगासागर की ओर अग्रसर होती ही गई। कभी त्वरित गति से ओर कभी मंथर गति से । हवा अनुकूल थी। पूरी रात नाविकों ने नाव किनारे से नहीं लगाई । दूसरे दिन नाव रुकी, किनारे के एक गाँव के घाट पर। गाँव कुम्हारों का था। यहाँ से नाविकों ने हाँडी खरीदीं। और यात्रियों को तट पर भोजन बनाने की आज्ञा भी प्रदान कर दी। नाव के सभी यात्री ठोस जमीन पर कदम रखने के लिए लालायित थे। नाविकों का आदेश पाते ही बात की बात में नाव खाली हो गई । किनारे से कुछ दूर एक पेड़ के नीचे नाविकों ने चूल्हे बना दिए। भोजन बनाने की सामग्री लेकर अधिकांश यात्री भोजन बनाने में लग गए । कुछ गाँव में घूमने चले गए। किशोर कुछ देर तक किनारे पर चहलकदमी करता रहा। फिर नाव में आ बैठा। पूरी की पूरी नाव खाली थी। उसने अन्दर की एक छोटी सी खिड़की खोलली और किनारे के दृश्यों को देखने लगा। गाँव के पास से मैदान में ताड़ और खजूर के पेड़ों की कतारें बराबर चली गईं हैं। खेतों की फसल कट चुकी है। और जहाँ तक दृष्टि जाती है वहाँ तक खेत ही खेत नजर आते हैं। नदी के किनारे एक किशोरी बधू कुछ उदासीन मुद्रा में खड़ी हुई हैं। उसने अपने साड़ी के छोर को एक विशेष ढँग से नितम्बों पर बाँध लिया है। उसकी मुद्रा में कुछ उदासीनता है । आँखों में कुछ विषाद सा है। शायद भविष्य की कल्पनाओं के स्वप्न देख रही हो। अथवा वर्तमान को मन ही मन तोल रही हो या शायद अतीत उसके दिमाग में सजीव हो उठा हो। उसके मुँह का वह भोला सा भाव किशोर को बहुत अच्छा लगा। काश वह चित्रकार होता। लेकिन कवि तो है। उसने अपने सूट-केस में से कागज पैन्सिल निकाली। उस किशोरी की तरफ कुछ क्षणों तक देखता रहा। फिर उसने अपने दिमाग में एक कविता लिखना शुरू किया। लेकिन दिमाग में कविता आने से पहिले आँखों में एक कविता प्रस्फुटित हो उठी। अमला नदी से नहाकर लौटी थी। उसकी भीगी हुई साड़ी उसके अंगों से मिल चुकी थी। और उसके

सद्यस्नात चरणचुम्बी कुन्तल कंधे की एक बग़ल से पीठ पर लटक रहे थे। और वे नितम्ब प्रदेश को पार करके उसके छोटे-छोटे सुहावने पैरों की तरफ बढ़ने की कोशिश कर रहे थे। बाल भीगे हुए थे। उनमें से पानी की छोटी-छोटी बूँदें इस प्रकार टपक रहीं थीं मानो रूप कथा की कोई सुन्दरी अभी-अभी नृत्य-कक्ष से चली आ रही हो और उसके बालों में पिरोए हुए मोती टपक-टपक कर गिर रहे हों। अमला के बालों पर धूप का प्रतिबिम्ब पड़ रहा था। और उनसे गिरती हुई पानी की छोटी-छोटी बूँदें ठीक मोतियों की भाँति ही चमक रहीं थीं। उसके बाल ठीक अंधकार की भाँति ही काले थे। और ठीक अंधकार की भाँति ही सघन। माँग में लगा हुआ सिंदूर अभी पूरी तरह धुल नहीं पाया था। उसकी क्षीण रेखा अंधकार जैसे बालों में ठीक इस प्रकार लग रही थी मानो सघन निविड़ अंधकार के वक्ष में ऊषा का उदय हुआ हो। सुगठित देह की सुहावनी भंगिमा के साथ वह जब नाव के भीतर आई तो किशोर देखता रह गया। शिष्टाचार की गंध भी वहाँ न रह पाई, संकोच का लेश भी वहाँ न रह सका। अमला ने किशोर की यह निर्वाक स्थिति देखी और वह हँस पड़ी। जैसे अंधकार की निविड़ता में एक क्षण के लिए चांदनी खेल गई हो। उस हँसी से किशोर को अपनी स्थिति का पता लगा। उसकी चेतना लौटी, शिष्टता लौटी, संकोच लौटा। और वह लज्जित होकर फिर खिड़की के बाहर देखने लगा। लेकिन इस बार उसकी आँखें खिड़की के बाहर कुछ भी न देख सकीं। वह खुली हुई थीं। फिर भी उनकी ज्योति मानो उनके पास न थी। देखने वाली तो आँखें नहीं होतीं। वह तो कोई दूसरी ही चीज होती है। आँखें तो सिर्फ उस दूसरी चीज को सहयोग भर देती हैं। इस बार देखने वाला कहीं दूसरे स्थान पर था और आँखें कहीं दूसरी जगह।

अमला सूखी साड़ी और तौलिया लेकर चली गई। किशोर उसी तरह बैठा रहा। उसके दिमाग में न तो इस समय कोई कविता का ही

भाव था और न कोई भावना। वह शून्य था। ऐसे बहुत से क्षण मानव मस्तिष्क के लिऐ आते हैं जब वह कुछ भी नहीं सोच पाता।

पाँच सात मिनिट बाद अमला फिर लौट आई। इस बार उसने साड़ी बदल ली थी। बाल भी अब पहले की भाँति भीगे हुए नहीं थे। किन्तु पहले की भाँति ही वह पीठ पर फैले हुए थे। किशोर ने आँखों की एक कोर से उसकी ओर देखा और फिर आँखें नीची कर लीं। अमला फिर हँस पड़ी। इस हँसी के साथ-साथ उसके शरीर का अंग प्रत्यग एक प्रफुल्ल कम्पन से थिरक उठा। और फिर उसने एक प्रश्न कर डाला। प्रश्न इस तरह का आकस्मिक था जिसे सुनने को किशोर जरा भी प्रस्तुत न था। बोली—"सत्य क्या है किशोर बाबू ?"

सत्य की मीमांसा एक दिन पहिले ही शेष हो चुकी थी। आकस्मिक रूप से यह प्रश्न फिर उठेगा। इसकी कल्पना भी किशोर ने न की थी। वह कुछ अप्रस्तुत सा होकर बोला—"जी।" अमला ने फिर उसी वाक्य को दुहराया। किशोर ने कहा—"मैं मतलब नहीं समझा।"

"मैं सत्य की परिभाषा पूछ रही थी। साथ-साथ यह भी पूछना चाहती थी कि नारी और उसके रूप को सत्य के मीमाँसकों ने क्या बताया है ?"

किशोर कुछ हतप्रभ सा हो उठा। अमला ने कहा—"सत्य के सभी विचारक नारी के रूप को एक छल के रूप में मानते हैं। और उसका प्रमाण क्या देते हैं, जानते हो। उसके प्रमाणस्वरूप उस छल से जो कि केवल भ्रम मात्र है। इतना घबड़ाते हैं कि नारी से दूर रहना ही उन्हें पसन्द है। और इस तरह प्रमाणित कर देते हैं कि वह छल ही सबसे बड़ा सत्य है। जो उनके सारे आदर्शवाद को चूरचार करके रख देता है।"

अमला की इस बात का आशय किशोर के दिमाग में स्पष्ट न हो सका।

अमला हँसी और फिर बोली—"जब से इस नाव में आई हूँ, आप

भी इस छल की परीक्षा के चक्कर में पड़ गए हैं। और वह छल इतना सत्य प्रमाणित हुआ है कि आपकी दृष्टि मेरे शरीर पर से हट ही नहीं पा रही।"

किशोर का सर मानो लज्जा से गढ़ गया। शीतकाल के इन दिनों में भी उसके माथे पर स्वेद की बूँदें स्पष्ट हो उठीं। किन्तु किशोर ने देखा अमला की वाणी में शासन था, एक मीठा उलाहना था। भंगिमा में भर्त्सना न थी प्रफुल्लता थी। दृष्टि में कठोरता न थी आश्रय था। और इन सब चीजों ने मिलकर उसके मन में साहस का संचार किया। किसी प्रकार शब्दों को बटोरते हुए उसने कहा—"मैं आपसे क्षमा···क्षमा माँगता हूँ।"

अमला ने कहा—"क्षमा माँगने लायक अपराध तो इसे मैं मानती नहीं किशोर बाबू। लेकिन हँसी आती है उन लोगों पर जिनके सिद्धान्त कुछ हैं और जीवन कुछ।"

"मैं शर्मिन्दा हूँ अमला देवी।"

"शर्मिन्दा होने को मैं अच्छा नहीं मानती।" और फिर अकारण ही हँस पड़ी। बोली—"क्या आप दुनियाँ के अधिकाँश आदमियों की निगाहों में नारी रमणी के रूप में शीघ्र ही प्रस्फुटित हो उठती है। रमणी के अलावा नारी और भी कुछ है इसे वह शीघ्र ही नहीं समझते।"

वह फिर अकारण ही हँसी और अपनी बात की गम्भीरता को उसने हल्का कर दिया। किन्तु लज्जा का वह भाव जो अभी-अभी किशोर के मन में उठा था। हल्का न हो पाया। उसने फिर वही क्षमा की भावना दुहराई।

सुनकर अमला ने कहा—"क्षमा सिर्फ एक मौखिक शिष्टाचार है। उसके अलावा और कुछ नहीं।"

बात समाप्त करके वह हँसी। और फिर उठ कर चली गई। किशोर चुपचाप बैठा रह गया। एक आत्मग्लानि से उसके मन का

कोना-कोना भरपूर हो उठा। मन ही मन उसे अपने ऊपर अत्यन्त क्रोध आया। उसे यह हो क्या गया है। वह ऐसा तो कभी नहीं था। एक दिन की बात उसे और याद हो आई। जब उसने एक नारी के प्रति इससे भी ज्यादा अशिष्ट व्यवहार किया था। उस नारी ने भी कहा था—"सभी कुत्ते एक से होते हैं। और सभी पुरुष एक से होते हैं।" और आज इस नारी ने भी कहा—"अधिकांश पुरुषों की निगाह में नारी रमणी के रूप में शीघ्र ही प्रस्फुटित हो उठती है।" आज की इस नारी की बातें और उसके शहर की उस नारी की बातें दोनों ही एकसी थीं। और उस दिन भी जितनी लज्जा और आत्मग्लानि का अनुभव किशोर ने किया था। आज भी उतना ही उसने किया। बीच के इन आठ दस वर्षों में उसमें रंचमात्र भी परिवर्तन नहीं हुआ। यह सोचकर किशोर को अपने ऊपर अफसोस हुआ। किन्तु आश्चर्य भी हुआ। इतने दिनों तक यह माँसलोलुपता उसके दिल के किस कोने में छुपी थी। इसका वह पता भी न लगा सका। बहुत देर तक वह उसी तरह बैठा रहा। और बीच में अगर बाधा न पड़ती तो शायद घंटों तक वह उसी तरह बैठा रहता।

घटक ने आवाज दी—"किशोर ! आओ भाई खाना तैयार हो गया है।"

घटक की आवाज के साथ ही वह हड़बड़ा कर उठ बैठा और चुपचाप घटक के पीछे चल दिया। नियत स्थान पर पहुँच कर घटक ने एक बोरा बिछा कर कहा—"लो इस पर बैठो" किशोर बिना कुछ कहे बैठ गया। केले के एक पत्ते पर अमला ने ही उसके सामने भोजन परोसा। गरम-गरम खिचड़ी और आलू का भुर्ता।

बहुत देर पहिले से ही पके हुए खाद्यान्न की गंध ने किशोर के नासापुटों से प्रवेश करके उसकी जठराग्नि को प्रबल कर रखा था। लेकिन भोजन सामने आते ही जठराग्नि की प्रबलता में शिथिलता आ गई। इसमें दोष भोजन का न था। दोष था परोसने वाले का।

श्रौर सामने बैठी हुई उसकी उपस्थिति का। अत्यन्त बेमन के साथ उसने खाना शुरू किया। लेकिन पाँच-सात ग्रासों से अधिक वह गलाधकरण न कर सका। पानी पीकर उसका उठने का उपक्रम देख कर ही घटक चिल्ला पड़ा—"क्या हुश्रा किशोर बाबू ?"

"कुछ नहीं।"

"तो खाना क्यों छोड़ दिया।"

"खा तो लिया।"

"इसे खा लेना कहते हैं।"

"इससे ज्यादा भूख नहीं है।" घटक हँसा बोला—"मेरी भी शुरू-शुरू में ऐसी ही श्रादत थी। नाव में बैठते ही दो बातों में से एक बात होती थी। या तो भूख लगती ही न थी। श्रौर लगती थी तो इतनी जोरों से कि क्या कहूँ। लेकिन श्रब पहली बात नहीं होती। दूसरी ही होती है। श्राज तो इतनी ज्यादा भूख है कि श्रमला के लिए थोड़ा बहुत प्रशाद छोड़ भी पाऊँगा या नहीं इसमें भी सन्देह है।" बात समाप्त करके घटक दा जोरों से श्रट्टहास कर उठे। लेकिन दोनों श्रोताश्रों में से कोई भी इस हँसी में जरा भी सहयोग न दे सका।

लेकिन घटक दा ने किशोर के न खाने के बारे में जो कारण बताया श्रमला के मन में वह कारण न बैठ सका श्रौर श्रसली कारण भी उसे समझते देर न लगी। फिर भी वह मुँह से कुछ बोली नहीं। किशोर उठकर नाव में चला गया।

खाना समाप्त करके घटक श्रौर श्रमला भी नाव में श्रा गये। धीरे-धीरे सभी यात्री श्रपने वाणी बल के द्वारा बिछाए हुये नियत श्रासनों पर श्रा जमे। नदी में भाटा पड़ा। नाविकों ने श्रपनी पतवारें संभालीं श्रौर नाव तीव्र गति के साथ श्रागे बढ़ने लगी।

घटक ने कहा—श्राश्रो किशोर। बैठे-ठाले दो एक हाथ ताश के हो जायें। ताश है न तुम्हारे पास श्रमला।"

श्रमला ने कहा—"हाँ है।"

अमला ताश निकाल लाई। तीन खेलने वाले तो ये थे ही। एक चौथे को और घटक ने बुला लिया और बिछाये हुए अपने कम्बल की धूल झाड़कर घटक जमकर बैठ गए। लेकिन किशोर ने वैसा कोई भाव जाहिर न किया। उसने अनमने भाव से उत्तर दिया—"मेरी ताश खेलने की तबियत नहीं है। आप लोग खेलिए। मैं ऊपर छत पर बैठ कर किताब पढ़ूँगा।"

घटक ने एक बार उसकी तरफ देखा। किन्तु उसके उदासीन मुख की परिभाषा को वह न पढ़ सका। घटक ने फिर कुछ न कहा और किशोर अपने सूटकेस में से एक मोटी सी किताब लेकर ऊपर चला गया।

लेकिन जिस किताब पढ़ने का बहाना करके वह ऊपर आया था। वह किताब उसने खोली भी नहीं और न कोई विचार ही उसके मस्तिष्क में उठा। शून्य मस्तिष्क के साथ वह नदी के विराट रूप को देखने लगा। नदी का अब वह क्षुद्र रूप न था। विशाल समुद्र के संसर्ग में आकर उसकी संकीर्णता मिट चुकी थी और दोनों तरफ संकुचित किनारों के बीच का व्यवधान अब बहुत ज्यादा हो गया था। एक किनारे से दूसरा किनारा मुश्किल से ही दृष्टिगोचर होता था।

नीचे की मंजिल में बैठे यात्रियों का कलरव शान्त था। किशोर के चले आने के बाद घटक ने अपने ताश खेलने के प्रस्ताव को स्थगित करके सोने के लिए पैर फैला दिए थे। और नाव के सभी यात्री उनके इस दिवानिद्रा में पूर्णरूपेण सहयोग दे रहे थे।

नदी की चंचल लहरों से नाव में जो एक हलचल शुरू हो गई थी वह निद्रित यात्रियों की निद्रा में और भी सहायता पहुँचा रही थी। भाटे का पानी एक मधुर कलकल ध्वनि के साथ समुद्र की तरफ दौड़ रहा था। और अपने साथ नाव को भी उसी गति में बहाए लिये जा रहा था। हवा अनुकूल थी। नाविकों ने पाल बाँध दिया। नाव की गति में और भी तीव्रता आ गई। बिहारी नाविक डाँड रखकर गाने

गा रहे थे। किशोर को उनका गाना अच्छा लगा। उनकी आवाज तेज और सुरली थी। वे गा रहे थे :—

पिया हमरा के। हमरा के बाजूबन्द गहिना गढ़ाव पिया हमरा के। हमरा के बाजूबन्द हमरा के चीर। हमारा के मोहन माला गलवा के बीच। दोऊ जो बनवा के बीच। पिया हमरा के······

कट्टनी के बाजू बन्द कट्टनी के चीर,
कट्टनी के मोहन माला गलवा के बीच।
दोऊ जोबना के बीच। पिया हमरा के······
छपरा के बाजूबन्द पटना के चीर,
गया जी की मोहन माला गलवा के बीच।
दोऊ जोबनवा के बीच। पिया हमरा के······

और किशोर ने देखा कि उन नाविकों में से जिसकी सबसे कम उम्र है वह पतला-दुबला इकहरे शरीर का लड़का इस गाने के बीच उदासीन सा हो उठा है। उसकी आँखें भीगी-भीगी सी हो उठी हैं। वह गाने में सहयोग दे रहा है। किन्तु सहयोग देते हुए भी सुदूर के किसी जनपद में बैठी हुई अपनी प्रियतमा की याद ने उसे अपने में खो दिया है। पीले रंग के सिंदूर से अपनी माँग भरे उस ग्राम-बाला की आकृति उसके मानसपटल में सजीव हो उठी है। महीनों की प्रतीक्षा से वेदनायुक्त हुई उसकी आँखों की वेदना की याद इस गाने की कसकभरी आवाज ने उसे दिला दी है।

एक दिन पहले इसी छोकरे ने किशोर से कहा था —"बड़ा बुरा काम है, बाबू साहिब यह मल्लाहों का।" और किशोर ने जवाब दिया था—"दुनियाँ में काम कोई भी बुरा नहीं है, भइया। लेकिन आज के मनुष्यों की प्रवृत्ति ऐसी हो गई है कि कोई भी अपने काम से सन्तुष्ट नहीं है।"

और उस लड़के ने मनुष्यों की प्रवृत्ति के बारे में कोई दिलचस्पी न

दिखाकर अपनी ही बात कही—"दूसरों के काम फिर भी अच्छे हैं, उनके बाल-बच्चे तो साथ रहते हैं।"

किशोर ने पूछा था—"तुम्हारी शादी हो गई है ?"

"जी ! पारसाल इन्हीं दिनों में हुई थी। शादी के महीने भर बाद ही यहाँ चला आया। तब से अब तक घर नहीं जा सका हूँ।"

और उसकी आँखें भीगी-भीगी सी हो गईं थीं। किशोर को सांत्वना का कोई भी वाक्य न सूझा। वह चुपचाप बैठा रहा और वह छोकरा उसी प्रकार का उदासीन भाव लेकर बहुत देर तक बैठा रहा था।

आज भी किशोर ने देखा कि उसकी आकृति कल की तरह ही उदासीन थी और आँखों में कल का सा ही भीगापन था।

पहिला गीत समाप्त करके नाविकों ने दूसरा गीत छेड़ दिया था—"मोर पिया हराइल कलकत्ता दर्म्यान रे साँवरिया। और सावरे बेला करन गये असनान रे साँवरिया।

कासे कोलू टोला ढूँढ़ा। खिदिरपुर खोला सानी।
गा से गली-गली में ढूँढ़ा। ढूँढ़-ढूँढ़ भई हलकानी॥

किशोर सुनता रहा। बिहारी भाषा के उनके गीत उसे बहुत सुन्दर लग रहे थे। साथ-साथ उसने यह भी जाना कि समझ सकने पर दुनियाँ की सभी भाषाओं में एक निजस्व मिठास है। एक सुन्दर आस्वाद है। कुछ देर के लिए किशोर अपने मन की पूर्व स्थिति को भूल बैठा। संगीत और सौन्दर्य यह दोनों वस्तुएँ ही ऐसी हैं।

: १३ :

शाम को घटक ने किशोर को खाने के लिए नीचे बुलाया। लेकिन अमला को देखते ही उसकी आत्मग्लानि फिर से लौट पड़ी। भूख का नामोनिशाँ तक न रह पाया। उसने कहा—"भूख नहीं है।"

घटक ने पूछा—"क्यों ?"

"न जाने क्यों।"

"तबियत तो ठीक है ?"

"हाँ।"

"लेकिन भूख का होना तबियत खराब होने की पूर्व सूचना है। आज मेरी खुद की तबियत भी ठीक नहीं है। शरीर कुछ भारी-भारी सा है।"

शिष्टाचार का तकाज़ा था कि वह इसकी सहानुभूति में कुछ कहे। लेकिन किशोर ने एक शब्द भी अपने मुँह से न निकाला। वह जिस तरह आया था उसी तरह लौट गया। सिर्फ चलते वक्त अपने बिस्तर से गर्म चद्दर अवश्य खींच ले गया।

वह फिर उसी बाँस की छत पर जा बैठा। रात हो गई थी। मौसम में कुछ ठण्डक भी आ गई थी। गर्म शाल को उसने अपने कंधों पर से पैरों तक डाल लिया। आकाश में इस समय खंडित चन्द्र था और उसका क्षीण आलोक नदी के ऊपर पड़ कर पानी को रजत के समान चमकीला बना रहा था। आगे पीछे दूसरी चलने वाली नौकाओं से नाविकों की गाने की आवाज कानों को स्पष्ट सुनाई दे रही थी और उन नौकाओं में जलते हुए प्रदीपों का प्रतिबिम्ब असंख्य रूपों में नदी में बन कर लहरों से खेल रहा था। बीच-बीच में एकाध स्टीमर के भोंपू की आवाज भी सुनाई दे रही थी और कभी-कभी कोई स्टीमर इस नाव के पास से भी गुजर जाता। साथ-साथ नाव को भी लहरों में झकझोर जाता। मन की खिन्नता और अनुताप की ज्वाला लेकर जब किशोर इन दृश्यों को देखने में लीन था तो उसने देखा कि अमला सीढ़ियों से ऊपर चढ़ रही है। वह जरा संभल कर बैठ गया। अमला ने पास आकर पूछा—"ठण्ड तो कम नहीं है। आप इस तरह खुले में क्यों बैठे हैं ?"

गर्म शाल को हिलाते हुए उसने कहा—"चद्दर ओढ़ रखी है।"

"इस चद्दर से ठंड रुक जायेगी ?"

किशोर ने कोई जवाब नहीं दिया।

अमला पास आकर बैठ गई और बैठते ही अचानक उसने प्रश्न किया—"खाना क्यों नहीं खाया ?"

किशोर ने कोई जवाब नहीं दिया।

अमला ने फिर कहा—"मैं पूछती हूँ, खाना क्यों नहीं खाया ?"

"भूख नहीं थी।"

"झूठ।" किशोर ने अनुभव किया स्वर में आत्मीयता थी। निकटता थी। फिर भी उसने कोई जवाब नहीं दिया।

अमला कुछ देर चुप रही। फिर बोली—"दोपहर की मेरी बातें इतनी चुभ गईं।"

किशोर फिर भी चुप रहा।

अमला ने कहा—"लेकिन जहाँ तक मुझे याद पड़ता है मैंने ऐसी कोई बात नहीं कही थी जो कड़ी हो। मैंने जो कुछ कहा था हँसकर कहा था और हँसी में ही कहा था। मैंने कल्पना तक नहीं की थी कि आप उसका इतना बुरा मानेंगे, या इतना दुख आपको पहुँचेगा।"

"दुख ! आपकी बात से कोई दुख नहीं। मुझे तो अपने पर पश्चाताप है।"

"मैं पश्चाताप को बहुत अच्छी चीज नहीं मानती किशोर बाबू। पश्चाताप सिर्फ वे ही करते हैं जिन्हें अपने पर विश्वास नहीं अथवा जो अपने को नहीं समझते।"

किशोर ने कोई जवाब न दिया।

अमला ने कहा—"और फिर आपके पश्चाताप का तो कोई भी मूल्य नहीं है। उसकी सृष्टि तो आपके मन में अपने आप नहीं हुई। उसमें तो मेरा हाथ है, मैं अगर प्रतिवाद न करती। मुझे देखने के आपके आचरण की आलोचना न करती, तो यह पश्चाताप आपके मन में पैदा ही न हो पाता और अभी इसका क्या ठीक कि यह पश्चाताप

किस दिशा में मुड़ेगा। मैं चाहूँ तो इसे बिल्कुल विपरीत दिशा में मोड़ सकती हूँ।"

बात समाप्त करके वह हँस पड़ी। इस बार किशोर ने चन्द्रमा के क्षीण आलोक में उसकी ओर देखा और उसकी हँसी के लालित्य का भी मन से उपभोग किया। अमला की हँसी किशोर को ऐसी लगी मानो एक सुन्दर पुष्प की कली अचानक खिल उठी हो और इस अचानकता की शीघ्रता में उसके अन्दर का सारा पराग उसके चारों तरफ बिखर गया हो।

किशोर की सारी आत्मग्लानि, सारा क्रोध और पश्चाताप मानो इस हँसी ने धोकर रख दिया और वह हँसती हुई उस सुन्दर आकृति की ओर एकटक देखता रह गया।

अमला ने हँस कर पूछा—"कहिये कहाँ गया वह पश्चाताप। कहाँ गई वह आत्मग्लानि।"

और किशोर को उत्तर देने का अथवा लज्जित होने का मौका दिये बिना ही वह बोल पड़ी—"खैर छोड़िये इन बातों को। पहिले आप खाना खाइये।"

अमला ने एक कटोरदान जिसे वह ऊपर चढ़ते समय साथ लाई थी खोला और किशोर के सामने रख दिया। उसमें खजूर के गुड़ और नारियल के सम्मिश्रण से लगाये हुए चार पाँच छोटे-छोटे लड्डू थे। नीचे तले हुये चिवड़े।

किशोर ने कहा—"मुझे भूख नहीं है।"

अमला ने फिर आत्मीयता के साथ कहा—"बहाना।"

किशोर चुप हो गया। अलमा ने कहा—"लो खाओ ज्यादा खुशामद करना मुझे अच्छा नहीं लगता।"

बात में इतनी आत्मीयता आ गई थी, इतनी निकटता आ गई थी कि अब किशोर तकल्लुफ न कर सका। उसने खाना शुरू कर दिया।

अमला ने कहा—"खाओ ! मैं एक गिलास पानी ले आऊँ।" और वह पानी लेने नीचे उतर गई। पाँच सात मिनट बाद जब वह पानी लेकर वापिस आई तो उसनें देखा कि किशोर ने कटोरदान बिल्कुल साफ कर दिया है। हँस कर बोली—"देखा ये है सत्य के समर्थकों की स्थिति। कितना सत्य होता है उनकी बातों में और आचरण में। अभी थोड़ी देर पहिले कहा था भूख नहीं है और पाँच मिनट में ही आध सेर के करीब पकवानों को उदरस्थ कर डाला। प्रशाद का एक कण भी तो नहीं छोड़ा।"

किशोर कुछ झेंप सा गया और झेंप मिटाने के लिए बोला—"गल्ती हुई।"

"ओह तो प्रशाद न छोड़ने को आपने गल्ती भी मान लिया। अच्छा पश्चाताप है आपका। यह भी उम्मीद थी कि आपके आहार के बाद में प्रशाद की भी आकाँक्षी हूँ और सिर्फ गल्ती से ही उसे भूल गये।"

किशोर और भी लज्जित हो गया। बोला—"नहीं मेरा मतलब यह न था। मेरा मतलब था, आप मेरे साथ भी तो खा सकतीं थीं। साथ बैठ कर खाने वाली चीज उच्छिष्ट नहीं होती।"

"हाँ उच्छिष्ट तो नहीं होती। किन्तु उँगली छू पहुँचा पकड़ना इसे ही कहते हैं। किशोर साहब उम्मीद किये बैठे थे कि मैं उनके साथ बैठ कर खाऊँगी और इस तरह इस प्रणय की कहानी की भूमिका का आरम्भ होगा।"

वह हँस पड़ी। लेकिन इस हँसी में सिर्फ एक व्यंग था अथवा कटुक्ति थी, किशोर इसे न समझा सका।

अमला फिर जरा सा हँसी और बोली—"खाना-पीना तो हुआ। पश्चाताप भी मिटा। अब कहिये आप को कोई प्रणय संगीत सुनाऊँ अथवा प्रणय संवाद।"

उसकी हँसी और उसकी बातें अब भी किशोर के लिए एक पहेली ही थीं। वह कुछ न बोला।

अमला ने कहा—"संगीत का तो अभी समय नहीं है। क्योंकि अभी भी नाव की सवारियों पर निद्रा का प्रकोप नहीं हुआ है। साथ-साथ नाव किनारे से चल रही है। पास के किसी गाँव में कुम्हार अथवा धोबियों के घर भी हो सकते हैं। वैसे बंगाल के कुम्हार, धोबी गदहे नहीं रखते। गदहों का रिवाज तो बहुतायत से यू० पी० में ही है।"

बात कहकर वह हँसी और बहुत देर तक हँसती रही। किशोर के बन्द ओठ भी उसके सहयोग में जरा फैल गये।

"तो सम्वाद ही सुनाऊँ।"

और वह सम्वाद सुनाने के लिये अपने को तैयार करने लगी। लेकिन हँसी उसे इस बुरी तरह आ रही थी कि वह अपने को रोक नहीं पा रही थी। किसी प्रकार उसने अपनी हँसी को संयत किया और गले को साफ करके नाटकीय ढंग से उसने कहना शुरू किया—"मधु से पूर्ण मधुमास है। मादकतायुक्त पवन है। चाँद हँस रहा है। तारे मुस्करा रहे हैं। रात गा रही है। नाव नृत्य कर रही है। लहरें ताल दे रही हैं। स्टीमर झूम रहे हैं। मंडूक अलाप ले रहे हैं। गीदड़ वीणा वादन में लिप्त हैं। और....और... मैं तो भूल गई, आप बताइये।"

किशोर के लिये अब भी यह सब एक समस्या था। फिर भी वह हँस रहा था। अमला ने कहा—"हाँ और याद आ गया। मलय में प्रकम्पन है। हवा में मस्ती है। पवन में उन्माद है। वायु में सौरभ है। और ऐसे सुहावने वातावरण में दो अपरिचित आत्माएँ एक होने के लिये आकुल हो उठी हैं। उन आत्माओं के आकुल क्रन्दन से भयत्रस्त होकर गीदड़ हाँफते हुये दौड़ रहे हैं, गर्दभ अलाप रहे हैं। कौए संगीत की सृष्टि कर रहे हैं।"

बात कहते-कहते उसे इतनी जोर की हँसी आई कि हँसते-हँसते वह

एक तरफ को गिर गई। लेकिन तुरन्त ही सँभल कर उसने कहा—"देखा हँसते-हँसते ऐसी गिरती कि नदी के अतल जल में ही होश आता। और इस तरह यह प्रणय की भूमिका बिना किसी परिच्छेद के लिखे ही समाप्त हो जाती।"

कुछ देर के लिये उसकी हँसी रुक गई। लेकिन वह कुछ देर एक क्षण भर ही थी। हँसते हुए फिर बोली—"पहिली निगाह में ही प्रेम। किशोर साहब एक बार मेरी एक नवयुवक से इस पहिली निगाह में ही प्रेम के ऊपर बातचीत हुई थी। उसने कहा था प्रेम पहिली निगाह में ही होता है। मैंने इसके जवाब में उसे बताया था कि जीवन में भले ही यह बात होती हो। लेकिन साहित्य में साहित्य पढ़ने वालों की रुचि इस पहली निगाह में होने वाले प्रेम के किस्सों से दब गई है। उन्हें पहिली निगाह में ही प्रेम की उत्पत्ति अब अच्छी नहीं लगती। उसके लिए वे लोग अब दूसरी तीसरी चौथी अथवा इससे भी कोई एक बड़ी संख्या पसन्द करते हैं। इसके जवाब में उसने कुछ बताया भी था। लेकिन स्मृति इतनी क्षीण है कि उस युवक के साथ उसकी बताई बातों को भी भूल बैठी। क्या आप इस विषय पर कुछ प्रकाश डाल सकेंगे। इतना आपको विश्वास दिलाये देती हूं कि आपकी बताई बातों को मैं याद रखू गी।"

हँसी के साथ ही कहे हुये इन वाक्यों का उत्तर किशोर ने गम्भीरता में दिया। बोला—'माफ करिये। मेरा इस विषय में जरा भी अध्ययन नहीं है।"

"जरा भी अध्ययन नहीं है? तब तो बड़ी बदकिस्मत हू ँ मैं। इस बार मैं एक निपट अनाड़ी के हाथों में पड़ी।"

किशोर की ग्लानि लौटी। लेकिन इस बार आत्मग्लानि नहीं। दूसरे के प्रति ग्लानि। मन ही मन वह इस लज्जाहीन, नारी के प्रति घृणा से पूर्ण हो बैठा। अचानक ही वह उठ बैठा। बोला—"मैं नीचे चल दिया।"

हँसकर अमला ने उत्तर दिया—"इतनी जल्दी। अरे अभी तो भूमिका का प्रथम भाग भी पूर्ण नहीं हुआ।"

लेकिन बात किशोर के कानों में गई नहीं। वह जल्दी-जल्दी काठ की सीढ़ी को पार करके नीचे उतर गया और अपने बिस्तरे पर लेट कर उसने रजाई से अपने को मुँह तक ढक लिया। लेटे-लेटे वह इस विचित्र नारी की बातें सोचनें लगा। कितनी विचित्र है यह, कितनी लज्जाहीना, कितनी बेशर्म। लेटे-लेटे उसे घटक की बातें याद आईं, 'सुनते हैं वह उच्छृंखल है। कोई उसे शृंखला में नहीं बाँध सकता। सुनते है वह अबाध है। कोई उसे सीमाबद्ध नहीं कर सकता, सुनते हैं वह असीम है कोई उसे सीमित नहीं कर सकता।"

इसके बाद उसे पंचायत की बातें याद आईं। पंचों के प्रश्न याद आए। उसके निर्भीक निर्लज्ज उत्तर याद आए। सत्य की विकृत परिभाषा याद आई। याद आई पंचायत शेष की अपनी घृणा और उन सब यादों के ऊपर उसी घृणा की जीत हुई। एक असीम घृणा के भाव से अपना हृदय मस्तिष्कपूर्ण करते हुये वह सो गया।

: १४ :

दूसरे दिन दोपहर को फिर नाव खाना वगैरह पकाने के लिये रुकी। नाव की सभी सवारियाँ भोजन बनाने के आयोजनों को लेकर उतर गईं। किशोर भी उतरा। कई दिन से पानी के ऊपर रहकर काठ की नाव में बैठे बैठे ठोस जमीन पर घूमने के लिये उसका मन आज आकुल हो उठा था। ठोस जमीन पर पैर रखने में काफी अच्छा लगा। नाव में एक जगह बैठ-बैठे अथवा लेटे-लेटे उसके शरीर के जोड़ अकड़ गये थे। उन्हें जमीन पर चलनें से कुछ कसरत मिली।

आज नाव किसी गाँव में न रुककर मैदान में रुकी थी। शायद पास ही कोई गाँव हो। क्योंकि जहाँ नाव रुकी थी वहाँ चारों ओर खेत ही खेत थे। और खेतों का होना गाँव की नजदीकी का सबूत था। और इसी सबूत के अधार पर नाव रुकते ही घटक दा गाँव के अनुसन्धान में शीघ्रता से चले गये। कई दिनों से उनका गाँजा शेष हो गया था। और बिना गजेन्द्र मोक्ष के घटक घटक ही न रहते थ। उनकी सारी स्फूर्ति, सारा बातूनीपन इस गाँजे से ही सम्बन्धित था।

नाविकों ने खेत की मेंड़ पर चूल्हे काट दिये। और हाँड़ी, लकड़ियाँ, पत्तलें लाकर रख दीं। अब नदी नहीं रही। समुद्र शुरू हो गया है। यों खारी पानी तो नदी में मीलों आगे से ही शुरू हो गया था। नाविकों ने मीठे पानी की संचित गोलों में से पानी लाकर रख दिया।

दाल और चावल की हाँड़ियाँ चढ़ी, रंधन की गंध से क्षुधित यात्रियों की जठराग्नि प्रबल हो उठी। सभी आकुलता के साथ बाट जोह रहे थे। लेकिन हवा तेज़ थी। आग ठीक ढंग से लग नहीं पा रही थी। खाना बनाने में अपेक्षाकृत विलम्ब हुआ और फिर खुले आकाश के नीचे सब की पत्तलें पड़ीं। हवा की अनुकम्पा से धूल-कंकड़ मिश्रित खाद्य बड़ी तृप्ति के साथ सबने उदरस्थ किये। मन ही मन बनभोज का आनन्द उपभोग किया और भाटे के आने की सूचना पाते ही नाव पर चढ़ गये।

घटक का शुभागमन पत्तलें पड़ने से पूर्व ही हो गया था। घटक के चेहरे पर प्रफुल्लता थी। गाँजे की पुड़िया अमला और किशोर को दिखाकर मुस्कराते हुये उन्होंने कहा—"मिल गया। लेकिन दाम बहुत ज्यादा लगे। पाँच पैसे ज्यादा लग गये।"

बात सुनकर दोनों मुस्करा दिये। भोजन से पहिले घटक ने दम लगाई। अमला ने जब किशोर के लिए खाना परोसा तो घटक ने कहा

—"हें हें हें इतना मत दो । देखा नहीं कल कितना खाया था। बेकार बिगड़ाने से क्या लाभ।"

अमला ने कहा—"लेकिन आज तो कल नहीं है घटक दा आज है।"

और किशोर जब खाने बैठ गया तो अमला ने कहा—"कल जो कुछ था। वह आज भी रहा आयेगा या आज जो कुछ है वह कल भी बना रहेगा। इस परिवर्तनशील संसार में आप इतनी बड़ी उम्मीद कर सकते हैं।"

घटक ने कोई जवाब नहीं दिया। लेकिन किशोर जब खाना खा कर उठनें लगा तो उसकी साफ और एक भी कण विहीन पत्तल को देखकर घटक ने कहा—"वाकई किशोर आज तो तुम कल के किशोर नहीं रहे। आज तो तुमने मुझे भी पीछें छोड़ दिया।

किशोर ने कोई जवाब न दिया। मुस्करा कर नाव की छत पर चला गया। थोड़ी देर बाद घटक भी उसकी बगल में जा बैठा। नाव चल दी। नाविकों ने पाल बांध दिया। साथ-साथ डांड भी खेने लगे। अत्यंत तीव्र गति से नाव आगे बढ़ने लगी।"

यहाँ अब नदी की मृदुल लहरों की थपकियाँ नहीं रहीं। विशाल सागर की उन्मत्त हिलोरें शुरू हो गई हैं। उनमें नींद दिलाने की कोमल थपथपाहटों का माद्दा नहीं रहा। नाव को बार-बार झकझोर कर लोगों की आँखों से नींद भगाकर उन्हें त्रास और भय से व्याकुल कर देने का कार्य अब समुद्र ने शुरू कर दिया है। पहिले के मृदु दोलन को समाप्त करके असीम जल राशि समुद्र की लहरों ने ताण्डव शुरू कर दिया है। नाव की सभी सवारियों का निवास रेल स्टेशनों से बीसियों कोस दूर है। और उन सवारियों में अधिकांश ऐसे हैं जो रेल तो दूर कभी मोटर में भी नहीं बैठे। हाँ अगर घाटाल तक मोटर में आने की उनकी यात्रा को इसमें सम्मिलित न किया जाय।

उन यात्रियों में से अधिकांश की जरूरतें पदब्रज अथवा बैलगाड़ी में पूरी हो जाती हैं। समय बदला, युग बदला, मानव बदला लेकिन वे नहीं बदले। हजारों वर्ष पूर्व के यातायात के साधन आज भी उनमें उसी प्रकार वर्तमान हैं। उनमें रंचमात्र भी परिवर्तन नहीं हुआ। और परिवर्तन हो भी क्यों। जिसे जितनी आवश्यकता है आविष्कारों का उतना ही उसे प्रयोजन है। और वह प्रयोजन जितना भी मिले तृप्त नहीं हो सकता। जितना मिलता है प्यास उतनी ही बढ़ती है। लेकिन देहात में रहने वाले इन ग्रामीणों के प्रयोजन सीमित हैं, इच्छाएँ सीमित हैं, स्वप्न सीमित हैं। और उस सीमा में वे सन्तुष्ट है, सुखी हैं, तृप्त हैं।

तो पदब्रज और बैलगाड़ियों में ही चलने के अभ्यस्त इस नाव के यात्री समुद्र की लहरों से उत्पन्न ताण्डव के प्रभाव से त्रस्त हो उठे, भयभीत हो उठे। भोजनान्ते शयन का विचार काफूर हो गया। लेकिन खड़े रहने अथवा बैठने की भी सामर्थ्य उनमें न रह पाई। नाव में अब इतनी जोर की हलचल थी कि बैठने या खड़े रहने में चक्कर आने लगे। लेटना ही उन्होंने ठीक समझा। लेकिन निद्रा विहीनलेटना। और मुँह ढंक कर वे अपने-अपने इष्ट देवों का जाप करने लगे।

घटक और किशोर के अलावा एक अमला ही ऐसी थी जो उनके पास बैठने के किये ऊपर की छत पर आई। नाविकों ने चिल्लाकर कहा—"नीचे उतर जाइये। नाव इतनी जोर से हिल रही है कि आप छत से उछलकर नीचे पानी में गिर जायेंगी।"

अमला ने कोई जवाब न दिया। मुस्करा कर वह घटक और किशोर की बगल में जा बैठी।

घटक ने पूछा—"तुम्हें डर नहीं लग रहा अमला। नाव की हलचल से चक्कर नहीं आ रहे।"

"नहीं। मैं लहरों से जीवन भर खेली हूँ घटक दा। लहरें मुझे प्रिय हैं। हलचल मुझे पसन्द है। मैं सारे जीवन को ही एक हलचल मानती

हूँ। और शान्ति को मौत का प्रतीक। शान्ति में सुख है। सुख में तृप्ति है। और तृप्ति के माने हैं समाप्त हो जाना। मैं तृप्ति नहीं चाहती। शान्ति नहीं चाहती। चाहती हूँ हलचल, अतृप्ति और अविनष्ट पिपासा।"

किशोर ने सुना। उसकी भौंहों में बल पड़ गये। लेकिन कुछ बोला नहीं। घटक ने कहा—"जाने क्या बकती रहती हो। तुम जो बातें करती हो उनमें से आधी बातें पागलों की सी होती हैं। इसीलिये गाँव वाले तुम्हारे बारे में गलत धारणा बनाए हुए हैं।"

"गाँव वालों से मुझे शिकायत नहीं है घटक दा। वह मुझे ठीक रूप में ही समझते हैं।

और जरूरत न होते हुए भी वह हँस पड़ी। घटक ने कहा—"मैं तुम्हारी इस बात को नहीं मान सकता अमला, किसी को समझना उतना सरल नहीं है, जितना कि लोग समझते हैं।"

और फिर समुद्र के पानी की ओर इंगित करके घटक ने कहा—"यह देखो। समुद्र का पानी। कितना साफ़ है। कितना निर्मल है। प्यास के लिये कितना आकर्षण है इसमें। किन्तु जीभ से छुआने पर गला तक कड़ुआ हो जायगा। बहुत सी चीजें सिर्फ देखने भर से सही-सही मालूम नहीं देती। आस्वादन से ही मालूम पड़ती हैं। तो अमला तुम्हारे बारे में भी यही बात है। तुम भी इस समुद्र के पानी की तरह मायावी हो, जो है कुछ और धोखा कुछ देता है।"

अमला ने हँस कर कहा—'घटक दा। आपने तो मुझे शिष्ट भाषा में गाली भी दे डाली। लेकिन दादा समुद्र के पानी से जो धोखा मिलता है उस धोखे में समुद्र के पानी का दोष नहीं। दोष तो धोखा खाने वाले का है। समुद्र का पानी जो है वही है। उसी तरह अमला भी जो कुछ है वही है। घटक दा अगर उसे नहीं समझ पाये तो दोष अमला का नहीं है घटक दा का है। घटक दा अगर समुद्र के पानी को जल समझ बैठे तो उस बेचारे खारे पानी का क्या दोष। उसी तरह अमला

है जो और लोग उसे जिस रूप में समझते है उस रूप को घटकदा न समझकर किसी दूसरे रूप की उम्मीद करें तो अमला इसके लिए लाचार है। वह इसके लिए कुछ भी नहीं कर सकती।"

घटक हथेली पर गाँजा मल रहे थे। गाँजा मलते-मलते उन्होंने एक बार अमला की ओर देखा, लेकिन कुछ बोले नहीं। अमला ने कहा—"मैं जो कुछ हूँ। उसी रूप को सबके सामने रखती हूँ। लोग इसे पसन्द करते है या नहीं मैं इसकी चिन्ता नहीं करती। मैं लोगों की खुशी के लिये नहीं हूँ, अपनी खुशी के लिए हूँ। मैं अपने को खुश रखती हूँ और इसकी चिन्ता नहीं करती कि कोई मुझे प्यार करता है अथवा घृणा। किसी को मुझसे अनुराग है, अथवा विराग।"

पूरे-का-पूरा वाक्य अमला ने गम्भीरता के साथ ही कहा और अभ्यास के अनुसार वह हँसी भी उसी गम्भीरता के साथ।

किशोर ने उठने का उपक्रम करते हुए कहा—"मैं नीचे चलूँ घटकदा।" घटक ने उसका हाथ पकड़कर पूछा—"क्यों ?"

"यों ही"

"नहीं बैठो। एक मजदार कहानी सुनो।"

: १५ :

घटक ने चिलम में गाँजा सजाया और दियासलाई किशोर के हाथ में थमा दी। कुछ देर तक घटक गाँजे में व्यस्त रहे। फिर बहुत सा धूँआ नाक और मूँह से निकालकर बोले—"वह देखो सामने डाइ-मंड हारबर दिखाई दे रहा है।"

दोनों ने समुद्र के तीर पर बसे हुए डाइमंड हारबर शहर को देखा और फिर प्रश्नसूचक दृष्टि घटक की ओर उठाई। घटक ने चिलम उलट दी। फिर बोले—"जब-जब यहाँ से निकलता हूं एक घटना

याद हो आती है। या यों कहो किशोर, मेरा सारे-का-सारा जीवन उसी घटना से सम्बन्धित है।"

घटक कुछ देर के लिये चुप हो गये। न जाने क्यों एक वेदना सी उनकी आँखों में उतर आई। वह कुछ सोचते रहे और फिर मुस्कराकर बोले—"अमला! लेकिन यह कहानी प्रेम-कहानी है और उसका नायक है यह तुम्हारा बुड्ढा घटक। तुम्हें सुनने में ऐतराज तो नहीं है।"

अमला हँसी और बोली—"नहीं मुझे ज़रा भी ऐतराज न होगा। बल्कि घटकदा से सम्बंधित प्रेम-कहानी मेरे लिए दिलचस्पी की वस्तु ही होगी। साथ-साथ घटकदा के जीवन का एक पृष्ठ भी मेरी आँखों के सामने खुलेगा। घटकदा के शुष्क जीवन में भी कहीं सरसता है इसकी कल्पना तक मुझे नहीं थी। मैं तो गाँजे की दम लगाकर मस्त रहने वाले घटक को ही जानती हूँ।"

घटक ने हँसकर कहा—"आज जानो उस घटक को जो जीवन भर रोता रहा है और रोना ही जिसकी पूँजी है। अभी तुमने कहा था न अमला! तृप्ति सब कुछ का शेष है। मैं भी तुम्हारे उन विचारों का कायल हूँ।" घटक की हँसी में वेदना थी। लेकिन थोड़ी देर चुप रह कर वह स्वच्छ हँसी हँसा और बोला—"अमला! कहानी सुनकर तुम्हें ईर्ष्या हुए बिना न रहेगी।"

"वह बाद की बात है। भविष्य के लिए अभी से क्यों सर-दर्द मोल लूँ?" कहकर वह भी हंस पड़ी।

घटक ने कहा—"किशोर बाबू! अमला गाँव के नाते मेरी नातिन लगती है और बंगाल में बाबा का नातिन से साली सलैजों का सा मजाक चलता है। इस बात को तो जानते हो न!"

किशोर जानता था। सर हिलाकर उसने जता दिया कि जानता है।

घटक ने कहा—"इसीलिए कहानी शुरू करने से पहले ज़रा इसे

चिढ़ा रहा हू और इसी सम्बन्ध की वजह से अपने जीवन का रोमांस इसके सामने सुनाने में लज्जा भी नहीं है।"

घटक फिर जरा देर चुप हुए। फिर उन्होंने सुनाना शुरू किया—"किशोर जिस दिन आप पहले-पहल मेरे आश्रम पर आये थे उस दिन बताया था कि गाँव में एक ऐसा उत्पात कर डाला कि टिकना मुश्किल हो गया। उस मजाकिया किस्से को फिर कभी सुनाऊँगा, आज नहीं। आज सुनो उसके बाद की एक घटना, जिसने मेरे जीवन को एक नए सिरे से मोड़ा। गाँव से भाग कर आया कलकत्ते, और वहाँ मिली एक मारवाड़ी सेठ की नौकरी। सेठ का व्यवसाय नारियल का था और उसने मेरी तैनाती नारियल के प्रधान केन्द्र इसी डाइमंड-हारबर में कर दी।

"रहने को मकान मिला। खाने के लिए अच्छी खासी तनखा। जिस मकान में मुझे रहने को जगह मिली वह काफी बड़ा था। उसमें कई किरायेदार थे।

"मैं अकेला था, इसलिये अकेले कमरे की ही मेरे लिए व्यवस्था थी। मेरे कमरे की बगल में एक और किरायेदार थे। वे वहीं के किसी स्कूल में मास्टर थे। अपनी नौकरानी के मुँह से प्रसंगवश मालूम हुआ कि उन मास्टर साहब की पत्नी के अलावा एक सोलह-सत्रह वर्ष की अविवाहित लड़की भी है।"

"मैं भावुक न था किशोर! रसिक भी नहीं। उससे पहले कभी किसी लड़की को देखा न हो यह बात भी नहीं थी। फिर भी न जाने क्या हुआ कि उस लड़की को देखे बिना ही मन में एक गुदगुदी सी होने लगी। मन-ही-मन उसकी आकृति और रूप का एक नक्शा भी बनाया। और तुम ताज्जुब करोगे किशोर कि बाद में जब उसे देखा तो वह ठीक मेरी उस कल्पित आकृति से मिलती जुलती थी। लेकिन बहुत दिनों तक इच्छा होने पर भी उसे न देखा, कई बार वह सामने भी आई, फिर भी न देखा। यह सिर्फ एक खामखयाली थी। यों तो किशोर

जीवन में हम जो कुछ करते हैं उसमें खामखयाली का भी एक बहुत बड़ा भाग रहता है। जिसके उद्देश्यों को दूसरे के सामने तो दूर, हम खुद भी स्पष्ट नहीं कर पाते। लेकिन उसे बहुत दिनों तक न देखना यह खामखयाली होते हुए भी उसमें एक अस्पष्ट सा कारण भी था। और वह शायद यह कि किसी चीज के प्रति बहुत देर तक इच्छा बनाये रखना। मेरा मतलब समझे न! यानी देखने की इच्छा प्रबल थी। बहुत मजबूती के साथ थी। फिर भी देख भर लेने से ही तो वह देखने की इच्छा समाप्त नहीं हो जाती। और इस तरह मेरे जीवन में पहली बार भावुकता ने पदार्पण किया।

"एक दिन रात को जब मैं अपने आफिस से घर लौट कर सोने के लिए जा रहा था तो किसी ने मेरे किवाड़ खटखटाये। किवाड़ खोलकर देखा तो वही लड़की थी, मेरे कमरे के पड़ोस में रहने वाली। और वही आकृति जिसकी कल्पना कई दिन पहले से दिमाग ने कर डाली थी।

"पूछा—"कहिए।" उसने शर्माते हुए कहा मेरी माँ आपको बुला रही हैं।" कुछ आश्चर्य सा हुआ पूछा—"आपकी माँ? क्यों।" "मेरे पिताजी कई दिनों से बीमार हैं। आज उनकी हालत कुछ ज्यादा बिगड़ गई है।"

"लड़की रो रही थी। फौरन ही कपड़े पहन कर उसके साथ हो लिया। वहाँ जाकर देखा तो उसके पिताजी की हालत बिगड़ी पाई। उसकी माँ ने मेरे हाथ में एक सोने की चूड़ी देते हुए कहा—"इसे कहीं गिरवी रखकर कुछ रुपये ला दीजिये।"

मैंने पूछा—"कितने" "जितने भी मिल सकें।" दस-पन्द्रह रुपये मेरे पास थे। पन्द्रह रुपये जेब से निकाल कर उन्हें दे दिए। सात आठ दिन में उस लड़की के पिता अच्छे हो गए। इन सात-आठों दिन मैंने उनकी देख-रेख की। कुछ रुपयों की जरूरत और भी पड़ी, वह भी मैंने दे दिये। और उनकी बीमारी के बाद सभी कृतज्ञता के आँसुओं

के साथ लड़की की माँ ने मुझे लौटा दिए। इस तरह उनके मेरे परिचय में कुछ निविड़ता आ गई। लड़की का नाम था अनीला। वह बड़ी उदास रहती थी। बड़ी डरी-डरी सी, सहमी-सहमी सी।

"और एक दिन अनीला की उदासी के कारण का भी पता लग गया। उसकी माँ ने कहा—"ऐसी अभागी है यह मेरी लड़की कि इसके लिए लड़का ढूँढ़ते-ढूँढ़ते परेशान हो गए। लेकिन कहीं कोई न मिला। और फिर इस लड़की के भाग्य को ही क्या दोष दूँ। पैसा भी तो इतना हमारे पास नहीं है। कहने को आजकल के लड़के बड़ी बढ़ी-चढ़ी बातें करते हैं। लेकिन शादी-विवाह के मामलों में माँ-बाप के दहेज लेने की इच्छा का ज़रा भी विरोध नहीं करते। यह लड़की मर जाती तो मैं सुख की नींद सोती?"

मैंने देखा वे रो रही थीं। फिर उन्होंने पूछा—"बेटा तुम भी तो ब्राह्मण हो? तुम्हारी शादी हो गई?"

मैंने कहा—"नहीं।"

"शादी नहीं हुई।" वह कुछ खुश सी नजर आईं। लेकिन मुँह से कुछ बोली नहीं। फिर भी उनके भाव को मैं समझ गया।

उन्होंने पूछा—"खाना अपने आप ही बनाते होगे।"

"नहीं होटल में खाता हूँ।"

"होटल में? अरे उससे तुम्हारी तन्दुरुस्ती खराब हो जायगी। तुम सामान ले आना। मैं कल से तुम्हारा खाना बना दूँगी।"

मैंने कहा—"नहीं। मुझे होटल में कोई खास तकलीफ नहीं है।"

"इसमें कोई हर्ज नहीं है बेटा! हम माँ-बेटी दो हैं। पूरे दिन यों ही बैठे-बैठे निकल जाता है। और फिर काम करने से मन भी बँटा रहता है। ठाली बैठे मन ऊबा सा रहता है हम दोनों का। हमारे घर का खाना हममें से एक ही बना सकती है।"

परिचय और सम्बन्ध आत्मीयता की ओर बढ़ रहे थे। कुछ देर के

तकल्लुफ के बाद मैं भी तयार हो गया। वस्तुतः होटल का खाना मुझे पसन्द न था। काम इतना था कि अपने आप खाना बनाना मुश्किल था। दूसरे दिन से वे खाना बनाने आने लगीं। लेकिन दो-तीन दिन बाद उन्होंने अपनी लड़की को भेजना शुरू कर दिया। इसमें छुपे अर्थ को मैंने समझा। उनकी इस मजबूरी की वेदना का भी अनुभव किया। लेकिन मेरे लिए एक मुश्किल भी हो गई। जब तक अनीला खाना बनाती मैं घर में न बैठ पाता। हालाँकि उसकी कोई जरूरत नहीं थी। फिर भी न जाने क्यों मैं एक शर्म महसूस करता। शायद मन में छुपी हुई एक इच्छा ही वह शर्म का रूप थी। कुछ भी हो। लेकिन अनीला के सामने पड़ने की मेरी हिम्मत न पड़ती और जितनी देर तक वह खाना बनाती मैं ऊपर की छत पर बैठ कर हिसाब-किताब देखता रहता। किसी दिन हिसाब-किताब देखने को न होता तो भी हिसाब देखने का बहाना करता।"

"शायद महीनों इस तरह निकल गए। और एक दिन उनकी माँ ने मेरे गोत्र इत्यादि पूछे। मैंने बता दिए। दूसरे दिन अनीला के पिताजी ने मुझे बुलाया। वे बड़े सज्जन थे। संकोची थे व्यवहारिकता से कुछ दूर थे। सीधे-सादे रूप में मुझसे प्रस्ताव न कर सके। बोले—"बेटा। तुम्हारी तलाश में मेरी लड़की के लिए कोई योग्य वर हो तो बताना। हम लोग कुलीन ब्राह्मण हैं। लेकिन पैसा मैं नहीं दे सकूँगा। इसे याद रखना।"

"उनकी आज्ञा का मैंने पालन किया। यहाँ आकर एक लड़के से कुछ मित्रता हो गई थी। लड़का खाते-पीते घर का था। सुशील और सौम्यता के साथ-साथ आदर्शवादी भी था। उसे सहज में ही मैंने तैयार कर लिया और लड़की दिखाने उनके घर भी ले आया।"

"सब बातें सुनने पर अनीला की माँ खुश नजर न आईं। अनीला की ओर मैंने देखा भी नहीं। इतने दिनों में शायद भूल से एक बार ही देखा था।"

"खैर लड़की दिखाई गई और वह पसन्द कर ली गई। बात-चीत शुरू हुई। लेकिन अनीला की माँ ने मुझे बुलाकर कहा कि मैं यह ठीक नहीं कर रहा। मेरे कारण पूछने पर वे कुछ न कह सकीं। लेकिन मैंने देखा कि उनके ओठों पर एक बात आई और वह आकर रुक गई। किन्तु मैंने उस बात को उगलवाने की चेष्टा न की। अगले हफ्ते विवाह का एक शुभ दिन था। आदर्श विवाह में आडम्बरों की तो कोई जरूरत थी ही नहीं। वही दिन ठीक कर लिया गया।"

"विवाह वाले दिन दोपहर को अनीला की माँ मेरे पैरों पर गिरने को हुईं। बोली—"बेटा हम तुम्हारा अहसान जीवन भर न भूलेंगे। वे (अनीला के बाबू जी) लड़का ढूढ़ते-ढूढ़ते परेशान हो गए थे। मैं रात-दिन लड़की की मौत की कामना करती थी कि ईश्वर ने तुम्हें भेज दिया। और तुमने जो काम किया वह पेट का लड़का भी न करेगा। आज मुझे लड़के की आर्थिक अवस्था के बारे में पता लगा है। वे तो इस शहर के अच्छे रईसों में से हैं। मेरी लड़की और हम दोनों जब तक जीवित रहेंगे तुम्हें आत्मा से आशीर्वाद देंगे। बेटा! तुम हमारे पूर्व-जन्म के कोई अपने निकले।"

वे रो पड़ीं और उसी दिन जीवन में पहली बार साहस करके मैंने अनीला की ओर देखा। उसकी आँखें भीगी हुई थीं और वह मेरी ओर जिस दृष्टि से देख रही थी, उसे आज भी नहीं भूल सका हूँ और शायद कभी भी नहीं भूल सकूंगा। उसकी भीगी आँखें बरस पड़ीं। मैं नहीं जानता कि यह आँसू कृतज्ञता के थे या और किसी चीज के, लेकिन किशोर उसके आँसू देखते ही न जाने क्या हो गया कि मैं, जिसे अपने आत्मसंयम पर पूरा विश्वास था संयम खो बैठा। एक क्रन्दन मेरे वक्ष में घुटने लगा। और मुझे लगा कि मैं जोरों से चिल्ला-चिल्ला कर रो उठूंगा। बड़ी मुश्किल से मैंने अपने को संभाला। पीठ फेर कर अपने को यथासंभव संयत करते हुए मैंने सीधे-सादे ढंग से कहा—"मैं अभी पाँच मिनट में आता हूँ।"

अनीला की माँ ने कहा—"जल्दी आना बेटा ! तुम्हीं को सब कुछ देखना भालना है।"

उसी तरह मुड़े हुए ही स्वीकृति की सूचना में सर हिलाया और समुद्र की ओर चल दिया। रास्ते में मुझे ऐसा लग रहा था कि शायद बीच बाजार में ही आदमियों के सामने चीख-चीख कर रो उठूँगा। बड़ी मुश्किल से उस क्रन्दन के वेग को दबाकर समुद्र के किनारे एकान्त में आया और सूखी बालू पर लेट कर मैं घंटों जोर-जोर से रोया। आज भी नहीं समझ पाता कि उस दिन उतना क्यों रोया था। कुछ देर बाद जब छाती का बोझ हल्का हो गया तो घर की ओर लौटा। वहाँ शहनाई बज रही थी। उसकी सुरीली आवाज ने फिर मेरे वक्ष में क्रन्दन का जमाव करना शुरू कर दिया। और मैंने अनुभव किया कि मैं इस समय उस घर में नहीं लौट सकता। इस समय ही क्यों कभी भी नहीं लौट सकता।"

"मैं स्टेशन आया और कलकत्ते की टिकिट लेकर गाड़ी में जा बैठा। कलकत्ते से बिहार, बिहार से यू. पी., राजस्थान, पंजाब, दिल्ली, बम्बई, विदेश, और न जाने कहाँ-कहाँ मारा-मारा फिरता रहा और इसी घुमक्कड़ जीवन में अपने को एकाकी महसूस करने वाले घटक को गाँजे की यह चिलम मिली और तब से यह चिरसंगिनी बन कर ही रही। किशोर उस दिन एक घटक मर गया और उसके स्थान पर दूसरे ने जन्म लिया, जो आज तुम्हारे सामने है। जो केवल मात्र एक स्मृति के सहारे जीता है। जिसके जीवन की सबसे बड़ी पूँजी वही स्मृति है। जिसे जिन्दा रहने की प्रेरणा देने वाली वही एक याद है। उस याद को वह आज भी विभिन्न दृष्टिकोणों से देख लेता है और उसके अन्तःकरण का नीरस स्थल उस याद के आते ही आज भी सरस हो उठता है।"

घटक चुप हो गया। किशोर ने पूछा—"घटकदा क्या उसने भी आप को प्रेम किया था ?"

घटक—"यह मैं नहीं जानता किशोर ! अपनी बात ही जानता हू

वह तुम्हें बता दी, लेकिन मैं उन लोगों के प्रेम को बहुत ऊँचा स्थान नहीं देता जो लोग हिसाब-किताबी हैं। जो लोग प्रेम का भी एक हिसाब-किताब रखना पसन्द करते हैं। जो लोग प्रेम को भी दुतरफा तोल लेते हैं और उतना ही पसन्द करते हैं जितना उन्हें मिलता है। किशोर मेरा प्रेम उस हिसाब-किताब का कायल नहीं। वह हिसाब-किताब के आँकड़ों से मुक्त है। वह यह हिसाब नहीं रखता कि उसे कितना मिला अथवा कुछ मिला भी या नहीं। तुम हँसोगे किशोर! इस विचित्रता को सुन कर। शायद तुम न भी हँसो! क्योंकि तुम कवि हो। तुम्हारा हृदय भावुक है। तुम इस गहराई में शायद पैठ सको। लेकिन दुनियाँ वाले, जो भावुक नहीं हैं, मुझे बेवकूफ ही कहेंगे और शायद वे लोग इन प्रेम वगैरह के किस्सों को ही बेवकूफी बतायेंगे। एक आदमी के जीवन पर इनका कुछ असर आ सकता है आदर्शवादिनों के दिमाग में वह बात किसी तरह बैठ ही न पायगी।

"किन्तु किशोर जीवन लॉजिक नहीं है, जीवन है। संसार में सभी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के उपार्जनार्थ ही नहीं आये हैं। कुछ लोग ऐसे भी आते हैं जो सारे जीवन-भर समझ नहीं पाते कि उनके जीवन का उद्देश्य क्या है। उनके आचरण में दुनियाँ के लिए रहता है व्यर्थ कहने का भाव। किन्तु किशोर युग-युग से ऐसे व्यर्थं आचरण करने वालों की कमी भी नहीं रही है। इन्होंने भूलें का हैं, प्रेम किया है। कुछ दिन हँसे हैं और फिर रोये हैं पूरे जीवन भर।

"अपने अमूल्य आँसूओं से इन्होंने संसार के काव्य और साहित्य के पौदे का सिंचन किया है। इन्होंने कसक दी है गायक की आवाज में और अपने हृदय की ऊष्णता दी है चित्रकार की तूलिका में और अपने अन्त-करण का भीगापन दिया है कवि के काव्य में। जगत ने इन्हें कहा है; बेवकूफ, विचित्र। क्योंकि इन्होंने जीवन में अर्थ-उपार्जन नहीं किया, यश-उपार्जन नहीं किया और नहीं किया दुनियाँ जिसे धर्म कहती है, उसका उपार्जन। इन्होंने न किसी को उपदेश दिया है और न किसी से

उपदेश लिया है। बाधा-बंधन मुक्त ये लोग उड़े हैं, मुक्त वायुमण्डल से पूर्ण अनन्त आकाश में। इन्होंने अपने हृदय की भावुकता को ही सत्य माना है। अपने मन के आवेग को ही आदर्श माना है और माना है दिल के दर्द को दुनियाँ का सबसे बड़ा खजाना। सबसे बड़ी सम्पत्ति और उसी अमूल्य सम्पत्ति को लेकर दुनियाँ के यही विचित्र और दुनियाँ के शब्दों में ही बेवकूफ यह व्यक्ति इस संसार से चले गये हैं और अपने पीछे कोई चिन्ह नहीं छोड़ गये। संसार का कोई इतिहास इन्हें स्वर्ण-अक्षरों में न लिख पायगा। शायद इनका उल्लेख भी न कर पाये। फिर भी किशोर ये जीवित रहेंगे। ये अमर रहेंगे। विश्व का साहित्य इन्हें याद रखेगा। विश्व का संगीत, विश्व की कला, इन्हें याद रखेगी। क्योंकि उन्हें प्रेरणा देने वाले ये ही तो हैं।"

किशोर और अमला दोनों चुप थे। अतीत की एक घटना और गाँजे के सहयोग से घटक के मुँह से भावुकता जिस साकार रूप में प्रकट हो रही थी, वह इन दोनों के लिए नई चीज थी। घटक के अन्तःकरण के किसी कोने में भावुकता का इतना जमाव है यह बात दोनों के लिए अप्रत्याशित थी। दोनों चुप थें। घटक भी चुप था।

कुछ देर बाद अमला ने कहा—"लेकिन घटकदा ! आपके इस प्रेम को मैं नहीं समझ सकी। जिससे आपको कुछ मिला ही नहीं और जिसके बारे में आप यह भी नहीं जान सके कि वह भी आपको चाहती थी या नहीं, उसके लिए आपके इस विचित्र प्रेम को मैं ठीक तरह से नहीं समझ सकी।"

घटक ने हँसते हुए जवाब दिया—"अभी तक तुम्हारी इन बातों का ही तो उत्तर दे रहा था अमला ! तुम सुन नहीं रही थीं।"

"सुन रही थी और सुन कर इस निष्कर्ष पर आई कि उस लड़की को देखने से पहले ही आप बहुत ज्यादा भावुक थे। आपने कुछ देर पहले अपनी बातों में बताया कि आप पहले भावुक नहीं थे। लेकिन घटकदा मैं दावे के साथ कह सकती हूँ कि आप भावुक थे और अत्यन्त

भावुक थे। आपने जो एक मधुर स्मृति बनाई, जिसे आप आज तक भी नहीं भूल पाये, उसमें अकेले आपका ही हाथ था। वह लड़की तो उस भावुकता के लिए एक बहाना थी। आपका भावुक हृदय भीतर ही भीतर ऐसे किसी बहाने को ढूँढ़ रहा था और वह मिला उसे उस लड़की से। जिसे एक जड़ पदार्थ की उपमा भी मैं दे सकती हूँ, जिसने कभी भी, किसी भी भाव भंगिमा से आपके ऊपर यह प्रगट नहीं किया कि वह भी आपको प्रेम करती थी। जिससे आपकी कभी बातचीत ही नहीं हुई और जिसके बारे में आज भी आपके दिमाग में यह स्पष्ट नहीं हो सका है कि वह आपको प्रेम करती थी। उसके प्रति एक अमिट स्मृति बनाना मेरी समझ में नहीं आया। एक कारण यह अवश्य हो सकता है वह लड़की बहुत सुन्दर रही हो।"

"नहीं! वह एक बहुत साधारण लड़की थी। सुन्दरता का कोई भी सिद्धान्त उसके ऊपर लागू नहीं हो सकता। लेकिन अमला मैं तुम्हारे मतलब को समझ गया। मगर याद रखो, सौन्दर्य के सामने आदमी ठिठक कर रह सकता है, कुछ देर के लिए चेतनाशून्य रह सकता है, किन्तु उसे एक मधुर स्मृति के रुप में जीवन भर याद नहीं रख सकता। सौन्दर्य का आघात क्षण-स्थायी है। बहुत शीघ्र ही समाप्त हो जाता है। वह एक अमिट स्मृति बनाकर चिरस्थायी नहीं हो सकता।"

अमला ने कहा—"चिरस्थायी तो मैं किसी भी आघात की स्मृति को मानने के लिए तैयार नहीं हूँ घटकदा! साथ-साथ किसी वस्तु के चिरस्थायित्व को अधिक मूल्य भी नहीं दे सकती। आघात हमारे मस्तिष्क और हृदय पर पड़ते हैं। कुछ दिन बाद वे एक स्मृति का रूप लेते हैं और फिर धीरे-धीरे धूमिल हो उठते हैं और एक दिन ऐसा आता है कि वे नये आघातों और नई स्मृतितों के बीच में ऐसे दब जाते हैं कि उनका कोई चिन्ह भी नहीं रह पाता। स्मृतियों का मन से सम्बन्ध है और मन कोई जड़ अथवा स्थिर पदार्थ नहीं। वह परिवर्तनशील है। रोज-रोज बदलता है। रोज नई स्मृतियाँ लेता है और पुरानियों को

क्षीण करता है। मानव के सामने अतीत एक अस्पष्टता है और वर्तमान स्पष्ट। जो कुछ बीत जाता है, उसे मानव उतना सत्य नहीं मानता जितना वर्तमान को।"

घटक गंभीर था। धीमी आवाज में उसने उत्तर दिया—"फिर भी अमला अतीत को वह कभी भी नहीं भूल पाता। अतीत उसके सामने चाहे स्वप्न के रूप में ही रहे और वर्तमान सत्य के रूप में किन्तु वह स्वप्न भी एक ऐसा स्वप्न होता है जिसे वह वर्तमान के सत्य के बीच में भी नहीं भूल पाता। वर्तमान के सत्य के बीच में भी वह अतीत का स्वप्न कुछ क्षणों के लिए उसे याद हो आता है और बस मन-ही-मन कह उठता है। एक दिन था जब······। वह एक दिन चाहे दुःख के बीच में हुआ है अथवा सुख के बीच में। अगर आज के दिनों से विभिन्न है तो वह जरूर याद आयेगा। ये है दुनियाँ के वास्तविकतावादियों की बात। लेकिन भावुकों की बात निराली है। वे स्मृतियों के आधार पर ही जीते हैं। याद ही उनकी पूँजी है और याद ही सम्पत्ति। अमला प्रत्येक सत्य को प्रमाणित करने की कसौटी तर्क नहीं है। कुछ तर्क से प्रमाणित होता है और कुछ विश्वास से भी। भावुकों की दुनियाँ तर्क से दूर है और तर्क तो बहुत सी ऐसी चीजों को असत्य प्रमाणित कर सकता है जो तर्कहीन होने पर भी प्रयोजनीय हैं। जीवन में हम जो कुछ करते हैं जिनसे स्फूर्ति पाते हैं उनमें ऐसी बहुत सी चीजें हैं जिनको तर्क की कसौटी पर नहीं कसा जा सकता।"

अब समुद्र की हिलोरों के ताण्डव में भीषणता आ गई थी। बीच-बीच में नाव को ऐसे झटके लग रहे थे कि सँभल कर बैठना मुश्किल था। घटक की बात समाप्त होते-न-होते एक ऐसा झटका नाव को लगा कि अगर किशोर और घटक अमला को नहीं पकड़ लेते तो वह उस झटके के साथ ही समुद्र में गिर जाती। नाविकों ने चिल्ला कर कहा—"आप लोग नीचे उतर आइये, वहाँ बैठना खतरनाक है।"

तीनों ने महसूस किया कि वास्तव में अब इस स्वच्छंदता से बैठकर यहाँ बात-चीत करना बहुत अधिक निरापद नहीं, नीचे उतर गए।

: १६ :

दूसरे दिन नाव गंगासागर पहुँच गई। धर्मार्थी यात्रियों ने बाबा कपिल मुनि की जय बोल कर अपनी प्रफुल्लता जाहिर की। मेला काफी बड़ा था। किशोर ने अपने जीवन में मेले तो इससे भी बड़े देखे थे, किन्तु एक ही स्थान पर नावों का इतना अधिक जमाव कभी नहीं देखा था। जिधर दृष्टि डाली जाय, उधर नावें-ही-नावें थीं। समुद्र की बालू में खुली जगह पर लगा हुआ यह मेला काफी दूर-दूर तक फैला हुआ था।

यात्रियों के रहने के लिए चटाइयों के बने हुए छोटे-छोटे घर थे, जिन्हें बहुत थोड़े दामों पर लिया जा सकता था। किन्तु उनमें रहना निरापद नहीं है। जहाँ इतने पुन्यार्थी एकत्रित होते हैं वहाँ चोरी-कला-निपुण अर्थार्थियों का भी अभाव नहीं रहता। कलकत्ते के पाकेटमार कला-विशारदों के साथ-साथ चोर और उठाईगीरे भी वहाँ कम नहीं आते। और इन चटाइयों से बने हुए घरों में चोरी करना उतना सरल है जितना आँखों के सामने सड़क पर पड़ी हुई किसी चीज को उठा लेना। इसलिए अधिकांश यात्री अपनी-अपनी नावों में ही इस तीन दिन के प्रवास को समाप्त करते हैं। नाव में चोरी करने में उतनी सरलता नहीं होती। नाविकों के कड़े पहरे के साथ उसमें प्रवेश करने का दर्वाजा भी एक ही होता है और चारों तरफ होती है बाँस की खपच्चियों की मजबूत

छत । जिसे बिना ग्रावाज किए किसी भी तरह नहीं काटा जा सकता ।

किशोर जिस नाव में था उस नाव के यात्रियों ने भी अपने निवास के लिए नाव को ही उपयुक्त स्थान माना । नाव के पहुँचते ही यात्री बाबा कपिलमुनि के दर्शन के लिए चले गए । पशुओं के झुंड की तरह उन्हें हाँकते हुए घटकदा उनका नेतृत्व कर रहे थे । किशोर को जरा देर थी । घटक ने रुकने की बात पूछी । किशोर ने कहा—"नहीं मेरे लिए रुकने की जरुरत नहीं । पूछते-पूछते चला जाऊंगा ।"

घटक ने कहा—"पूछने की जरूरत नहीं पड़ेगी । पूरे मेले में बस एक ही तो जाने की जगह है । ज्यादा भीड़ जिधर जा रही हो । उधर ही आ जाना । लेकिन लौटते वक्त जरा सावधानी रखना । सभी नावें एकसी हैं और सभी जगह एकसी हैं । इसलिए चलते वक्त नाव और जगह दोनों को अच्छी तरह पहचान लेना ।"

और मेले के बारे में चोर-पाकिटमारों से सावधान रहने का आखरी उपदेश देकर घटक अपने झुंड को हाँककर आगे बढ़ गए । करीब पन्द्रह मिनट बाद जब किशोर कपड़े पहनकर नाव से नीचे उतरा तो देखा कि अमला अकेली नीचे खड़ी हुई है । किशोर को देखते ही वह हँस पड़ी । बोली—"बड़ी देर कर दी । मैं इतनी देर से खड़ी हुई बाट जोह रही हूँ ।"

किशोर ने कहा—"क्यों ? आप उनके साथ नहीं गईं ?"

"गई थी लेकिन थोड़ी दूर जाकर लौट आई । उस भेड़-बकरियों के झुंड के साथ जाने में अच्छा नहीं लगा ।"

सुनकर किशोर खुश न हुआ और उसका वह भाव चेहरे पर भी झलक आया । अमला ने हँसकर कहा—"डरने की कोई बात नहीं । मैं घटकदा से कहकर आई हूँ । उन्हें मुझे ढूँढ़ने की जरूरत नहीं पड़ेगी ।"

"क्या कह कर आई हैं ?"

"यही कि तुम लोग चलो। मैं किशोर बाबू के साथ जाऊँगी।"

"उन्होंने क्या कहा ?"

"वे क्या कहते, चले गए।"

"आपने सबके सामने घटकदा से यह बात कही होगी।"

"और नहीं तो क्या सबके सामने घटकदा के कान पर मुंह रखकर कहती ?"

किशोर ने कुछ न कहा। लेकिन झुँझलाहट उसके चेहरे पर स्पष्ट हो उठी। अमला हँस पड़ी। बोली—"किशोर बाबू ये है सत्य की सच्ची परिभाषा। बद अच्छा बदनाम बुरा। सबके सामने अ◌ार में घटकदा से यह बात न कहती तो शायद आपको इतना बुरा न लगता। अब आप डर रहे हैं कि और लोग क्या कहेंगे। उसी दिन पंचायत में काका ने भी सत्य की परिभाषा इसी से मिलती-जुलती बताई थी। यद्यपि शुद्धं लोक विरुद्धं नाकरणीयं नाचरणीयं ॥'

किशोर कुछ क्रुद्ध मुद्रा में ही था। फिर भी उसने यथासंभव अपने को संयत करते हुए कहा—"अमला देवी उस दिन आपके काका ने जो पंचायत में सत्य की परिभाषा बताई थी और आपने भी अभी जो उससे मिलती-जुलती परिभाषा बताकर सत्य का उपहास करने की चेष्टा की है वह दोनों ही सत्य हैं। यह आप नही जानतीं। बद इसलिए अच्छा है कि उससे सिर्फ व्यक्ति पर ही प्रभाव पड़ता है और बदनाम इसलिए बुरा है कि उससे समाज दूषित होता है। मेरा खयाल है अब आप इन दोनों परिभाषाओं का सत्य आशय समझ गई होंगी।"

"जी समझ गई। साथ-साथ यह भी समझ गई कि व्यक्ति एक अलग वस्तु है और समाज एक अलग चीज। समाज किसी दूसरे पदार्थ से बनता है व्यक्तियों से नहीं।"

"समाज व्यक्तियों से ही बनता है और व्यक्तियों के एक समूह का नाम ही समाज है। और व्यक्ति जो कुछ करता है समाज पर

उसका असर पड़ता है। फिर भी व्यक्ति के व्यक्तिगत दोष अगर छुपे रहें तो समाज में उनका प्रचार शीघ्रता से नहीं हो पाता।"

"लेकिन.........।"

बात बीच में किशोर ने काट दी। बोला—"इस समय इस लेकिन को छोड़िए। यहाँ भीड़ के बीच में तर्क-वितर्क करना ठीक नहीं लगता। अगर आपको दर्शन करने चलना हो तो आइए मेरे साथ।"

अमला ने मुस्कराते हुए कहा—"नहीं।"

किशोर ने अमला के सुन्दर अधरों की मुस्कान देखी और उसे लगा कि मानो हवा के एक हल्के झोंके से जुही की कुछ कलियाँ बिखर गई हों।

किशोर ने फिर कहा—"आइये।"

अमला ने फिर मुस्कराकर कहा—"नहीं।"

"क्यों ?"

"क्योंकि यह आपका आग्रह नहीं है। आपके आग्रह में अगर लगा है। और वह मेरी इच्छा के ऊपर छोड़ा हुआ है।"

अमला हँस पड़ी। किशोर भी हँसा। और वे दोनों साथ-साथ चलने लगे। अमला ने हँसते हुए कहा—"भीड़ ज्यादा है। मैं आपका हाथ पकड़ लूं।"

किशोर ने हाथ बढ़ा दिया।

हाथ पकड़ कर अमला बोली—"आगे चलकर छोड़ तो नहीं दोगे।"

"नहीं।"

"कभी नहीं। जीवन भर नहीं।" और वह हँस पड़ी। किशोर भी साथ-साथ हँस पड़ा। बोला—"आप बहुत मजाक करती हैं।"

"आपको अच्छा नहीं लगता ?"

मन के किसी कोने ने कहा।"लगता है।" अभ्यास ने कहा—'नहीं'

दरअसल उसे किसी युवती के मुँह से ऐसा मजाक और वह भी साधारण परिचय में सुनने का अभ्यास न था।

इन दो एक छोटी मोटी मजाकों ने किशोर के रुख को दूसरी ओर मोड़ दिया। उस दिन से जो घृणा और विरक्त का वह अनुभव कर रहा था वह दूर हो गई। यह नई बात न थी। पहले भी ऐसा हो चका था।

अमला के छोटे से हाथ ने कवि किशोर की भावुकता को उभारा। वह एक असीम आनन्द अनुभव करने लगा। मानो दुनियाँ के वास्तविक धरातल पर पहुँच कर वह मंथर गति से हवा में उड़ने लगा। जहाँ घृणा नहीं है, जहाँ विरक्ति नहीं है, जहाँ विराग नहीं है।

भीड़ कुछ घनी हो गई। किशोर के कंधे का दाहिना भाग अमला के बाँये कंधे के हिस्से से बिल्कुल सट सा गया। यह किशोर के लिए एक नई अनुभूति थी, एक नया आनन्द वह अनुभव करने लगा। शरीर में, मन में, आकाश में, सारे वायुमंडल में मानो रंगीनता आ गई हो। समस्त विश्व, समस्त आकाश, समस्त वायुमंडल मानो किशोर में ही केन्द्रीभूत हो। किशोर के मन के साथ ही मानो उनका घनिष्ट सम्बन्ध हो।

साड़ी में लिपटी हुई अमला के शरीर की सामान्य ऊष्णता वह अपने शरीर के एक भाग में अनुभव कर रहा था। मानो किशोर के हृदय के गोपनतम मूल में सुखद स्पर्श जा लगा हो, नया जीवन, नया जगत, नया आनन्द।

उसने चाहा कि वह उससे कुछ कहे, अपने हृदय के असीम आनन्द के बारे में। उस नवीन अनुभूति के बारे में जो वह उसके लिए महसूस कर रहा है। जो उसके अवयवों के प्रत्येक तन्तु में एक मीठी मदिरा प्रवाहित कर रहा है।

लेकिन कहने की इच्छा के साथ-साथ शब्द होते हुए भी वह प्रत्येक का उचित संयम करके किसी के सामने सुन्दर ढग

से नहीं रख सकता। वह कुछ नहीं कह सका। सिर्फ एक अनिवर्णनीय तृप्तता के साथ उसके साथ चलता रहा। किशोर के लिए तब तक नारी एक रहस्यमय कविता के रूप में थी जिसके छन्द और भावों से वह अपरिचित था। औरतों की हँसी में छिपी तीक्ष्णता इससे पूर्व वक्षस्थल में न चुभी थी। उनकी बातों के मिठास का आस्वाद तब तक वह न पा सका था। उनके खुले हुए केशों की स्वाभाविक सुगंध की घ्राण उसके नासापुटों तक न पहुँच पाई थी। उनके कान्तिवान गात्र की सौरभ वह तब तक अपने फेफड़ों में जी भर कर खींच न सका था। यह उसके लिए अनुभव था, नई अनुभूति थी।

आगे चलकर भीड़ में कुछ छिछलापन आ गया। अमला ने हँसते हुए पूछा—"किशोर बाबू ! चलने से पहले जिस बदनामी का डर लग रहा था। वह अब नहीं है क्या ?" वह ज़रा हँसी।

किशोर ने कहा—"वह आपको भी तो होगा।"

हँसते हुए ही कहा—"नहीं, मुझे नहीं है।"

"आपके गाँव की औरतें इस तरह हमको चलते देख लें तो भी नहीं ?"

"नहीं, तो भी नहीं।"

"क्यों ?"

"क्योंकि गाँव की सभी औरतें मेरे स्वभाव को जानती हैं।"

"क्या जानती हैं ?"

"जानती हैं कि मैं भली औरत नहीं हूँ।"

ऐसी उल्टी बात किशोर ने अपने जीवन में न सुनी थी। वह तो यही सुनता आया था कि जो भली हैं वे कहती हैं कि हम सती हैं और जो भली नहीं हैं वे कहती हैं कि हम सावित्री हैं। लेकिन किशोर को कुछ सोचने का मौका अमला ने नहीं दिया। बोली—"जानते हैं किशोर बाबू मैं कौन हूँ ? पूरे गाँव की औरतें मुझसे डरती हैं। इसलिए कि

उनके अंचल के बंधन से छूटकर उनके पति कहीं मेरे पैरों में न आ गिरें।"

किशोर आश्चर्य-चकित रह गया। उसके हाथों का बंधन जिसमें अमला का हाथ था शिथिल सा हो गया।

वह बोली—"तुम्हें मेरे साथ इस तरह देखकर वे लोग क्या कहेंगी, जानते हो। मेरी बदनामी नहीं करेंगी। मुझे बहादुरी देंगी। कहेंगी मैं धन्य हूँ जिसने तुम सरीखे सुन्दर शिक्षित युवक को उल्लू बना दिया।"

किशोर की पकड़ और भी शिथिल हो गई और अमला का हाथ जब उसमें से फिसलने को हुआ तो उसने उसे कसकर पकड़ते हुए हँस-कर पूछा—"फिर घृणा।"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"क्योंकि मैं जानता हूँ कि लोगों को समझने में भ्रम भी हो सकता है। हम मानव-चरित्र को जितनी सरलता के साथ समझने का दावा करते हैं उतनी सरलता से समझ नहीं पाते।"

"फिर भी इसमें भ्रम की गुंजाइश नहीं है किशोर बाबू!"

भीड़ का एक ऐसा रेला आया कि किशोर को कुछ कहने का मौका न मिला। इसके बाद दोनों में कोई बात नहीं हुई। भीड़ की सघनता बढ़ गई थी और दो आदमी मजे से बातें करते-करते चल सकें इसकी सुविधा न थी। मन्दिर के सामने भीड़ की काफी धक्का-मुक्की थी। किशोर को दर्शनों में कोई खास दिलचस्पी न थी और न कोई अनिच्छा। किसी प्रकार भीड़ की धक्का-मुक्की से बच कर दोनों ने दर्शन किए। लौटते वक्त जब भीड़ कम हो गई तो अमला ने कहा—"सोचते होगे कि क्या विचित्र औरत है।" अमला अपने पहले सूत्र से सम्बन्ध स्थापित करके ही बोल रही थी—"हाँ मैं सब औरतों से विचित्र हूँ। साधारण औरतें दूसरों को बनाने में ही सुख

अनुभव करती हैं। और मैं सिर्फ अपनी बात सोचती हूँ। मेरी जिन्दगी मेरी अपनी है और मेरी खुशी भी मेरी अपनी।"

बात परिष्कृतभाव से मस्तिष्क में न घुसी। फिर भी किशोर विचित्रता अनुभव कर रहा था। और कुछ देर पूर्व अमला के स्पर्श से जिस स्वर्गिक कल्पना और भावुकता में वह आत्मविभोर हो बैठा था उसमें अब उतनी उत्तेजना न थी। दूध का उफान शेष होकर अपनी असली सीमा पर आ चुका था। किशोर का हाथ अभी भी अमला के हाथों में था। अपनी छोटी-छोटी उँगलियों में उसने किशोर की उँगलियाँ फँसा रखी थीं। किन्तु उनके स्पर्श की सिहरन समाप्त हो चुकी थी। प्रकम्पन शेष हो चुका था। किशोर ने हल्के बेमालूम ढंग से हाथ छुड़ाने की चेष्टा भी की। किन्तु अमला ने उसके उस प्रयास को विफल कर दिया। हाथ की पकड़ाई में और भी मजबूती लाते हुए वह बोली—"अभी से नाव पर चलोगे?"

"हाँ।"

"अभी से वहाँ क्या करोगे? चलो समुद्र के किनारे थोड़ा सा घूमें फिरें।"

किशोर ने कहा—"वे सब दर्शन करके लौट चुके होंगे। हम लोग देर से लौटे तो वे न जाने क्या सोचें।"

अमला ने कहा—"डरपोक।" और वह हँस पड़ी। पूरी जोर से खिलखिला कर और किशोर ने अनुभव किया कि हँसते वक्त उसके दुबले-पतले शरीर के साथ-साथ उसके नर्म हाथ में प्रकम्पन सा हुआ। और उस प्रकम्पन ने फिर एक सिहरन सी किशोर के शरीर में पैदा कर दी। वह अब भी हँस रही थी। वही दो एक बार की सुनी परिचित सी हँसी। जैसे कि अत्यन्त ग्रीष्म वातावरण में हल्के-हल्के बरफ के टुकड़े किसी ने बिखेर दिए हों।

फिर बोली—"मैं तो यही चाहती हूँ कि वे कुछ सोचें।"

किशोर का आश्चर्य सीमा को पार कर रहा था। न उसने आज

तक ऐसी औरत देखी थी, न सुनी। और न शायद किताबों में ही पढ़ी हो। उसकी बातें सुनकर किशोर के दिल में फिर एक बार यह विचार उठा कि वह उसके हाथ को झिड़क कर दूर कर दे। और चिल्ला चिल्लाकर कहदे कि वह उससे घृणा करता है, किन्तु अमला में एक असाधारण व्यक्तित्व था जो अत्यन्त प्रभावशाली भी था। दुनियाँ के अनेक मानवों में ऐसा प्रभावशाली व्यक्तित्व होता है। और उनमें यह गुण होता है कि उनके अपने दोष दूसरों की नजरों में दिखाई पड़नें पर भी उसका व्यक्तित्व ही उसे अपनी ओर आकर्षित करता है। अमला का व्यक्तित्व भी उसी ढंग का था। उसके सामने किशोर का व्यक्तित्व दब गया। उसकी घृणा दब गई। विराग दब गया। और उसके स्थान पर रह गया सिर्फ खिचाव और आकर्षण।

किशोर जितना उससे दूर हटने की कोशिश करता है, वह उतना ही अपने को उसके नज़दीक पाता है। वह जितना आगे को दौड़ने की चेष्टा करता है, कोई अज्ञात शक्ति उतनी ही तीव्रता से उसे पीछे खींच देती है।

फिर भी किशोर अभी भी पूर्ण रूप से पराजित नहीं हुआ था। सिर्फ जब वह अमला के पास अकेला होता तभी वह महसूस करता था कि वह विवश सा हो गया है। किन्तु ज्योंही उनके बीच में कोई तीसरा उपस्थित हो जाता तो किशोर अपने को मुक्त महसूस करता परन्तु पूर्ण मुक्त नहीं। घृणा की भावना के साथ भी वह एक आकर्षण महसूस करता और पूर्ण आकर्षण के बीच में भी वह घृणा को न भूल पाता।

अमला ने फिर दुहराया—"चलो जरा समुद्र के किनारे चलकर बैठें।"

कुछ देर पहले का जोश तो जा ही चुका था। साथ-साथ अमला के प्रस्ताव को मानने की इच्छा भी उसकी न थी। किन्तु विरोध करने की हिम्मत भी न कर सका। और वह अमला के साथ चलने लगा।

मानो अमला ने उसे 'हिपनोटाइज' कर दिया हो, सम्मोहित कर दिया हो।

भीड़ को पार करके वे दोनों समुद्र के किनारे आगए। यहाँ आदमी तो थे लेकिन भीड़ नहीं थी। सूखी बाल पर अमला ने किशोर को अपने पास बिठा लिया।

बैठकर वह कुछ देर चुप रही। फिर हँसते हुए बोली—"लेकिन किशोर मैं जानती हूँ कि तुम मुझे घृणा नहीं कर सकते। चेष्टा करने पर भी नहीं।"

और किशोर ने बात की सत्यता अनुभव की।

अमला ने पूछा—"लेकिन जानते हो क्यों ?"

किशोर इसका मनोवैज्ञानिक तत्व जरा भी नहीं जानता था। इस लिए चुप रहा। कुछ भी न बोला।

अमला ने कहा—"इसलिए कि मैंने तुमसे कुछ छिपाया नहीं है। घृणा कब होती है, जानते हो। जब छुपे हुए रहस्य का उद्‌घाटन होता है। अविवाहित स्त्रियों को बहुत से आदमी यह जानते हुए कि वह किसी दूसरे आदमी की पत्नि नहीं है क्यों प्यार करते हैं ? जानते हो ? इसलिए कि वहाँ कोई छपा हुआ रहस्य नहीं है। सिर्फ तुम मेरे भविष्य के लिए चिन्तित हो सकते हो। अतीत की परवाह तुम नहीं करोगे। क्योंकि अतीत को मैंने कोई रहस्य बनाकर नहीं रखा है, स्पष्ट स्वीकार किया है कि मैं भली नहीं हूँ। मेरे वर्तमान और भविष्य को ही तुम चाहोगे। अतीत तो तुम्हारे सामने स्पष्ट है।"

किशोर चुप था। ऊपर का वाक्य अमला ने गम्भीरता के साथ गम्भीर मुद्रा में कहा था। लेकिन बात समाप्त करके वह यकायक जोर से हँस पड़ी बोली—"देखा किशोर ! जिसे हासिल करना आता है वह किस तरह हासिल करता है, देखा तुमने।"

और वह फिर हँस पड़ी। मानो लदे हुए फूलों की डाली किसी ने जोर से हिला दी हो, फिर बोली—"यह तो हुई प्रेम-कहानी की भूमिका

उस दिन तुम नाव से भूमिका समाप्त किए बिना ही उठ गए थे न ? खैर भूमिका तो जैसे-तैसे शेष हुई। अब नायक-नायिका घूमने निकले हैं। तभी एक भिखारी आकर पैसा माँगता है। पैसा मिलने पर भिखारी आशीर्वाद देता है। तुम दोनों की जोड़ी हमेशा सुखी रहे। नायिका शर्मा जाती है। और नायक के ओठों पर मुस्कान खिल उठती है। उहं अ उहुं अं। भूल गई मैं तो। यहाँ तो नायक में नायिका के भाव हैं और नायिका में नायक के। यह प्रेम-कहानी ही विचित्र है, उल्टी है। अभी कोई भिखारी भीख पाकर यहाँ वैसा आशीष दे बैठे तो नायक किशोर साहब की गर्दन लज्जा के भार से दब जायगी और नायिका अमला के ओठों पर मुस्कान खिल उठेगी। सिर्फ मुस्कान ही क्यों हँसी फूट निकलेगी। लेकिन यहाँ तो पास में कोई भिखारी नजर नहीं आता, न आये। बीजगणित का विद्यार्थी जब कल्पित अ, ब, स के सहारे इतने बड़े-बड़े सवालों को सही-सही हल कर डालता है तो क्या यह हमारी छोटी सी कहानी उस कल्पना के द्वारा पूरी नहीं हो सकती ?"

और फिर अपनी हँसी के प्रचण्ड वेग को जरा रोकते हुए वह बोली—"जरूर हो सकती है। खैर हमारी कहानी का प्रथम परिच्छेद समाप्त हुआ। अब चला द्वितीय। हाँ इसमें कुछ तुमसे पूछना है। इसमें साधारण हंसी मजाक ज्यादा पसन्द करोगे या प्रेम के दर्शन का विश्लेषण ज्यादा अच्छा लगेगा।"

किशोर ने उत्तर नहीं दिया। वह भी इस मज़ाक़ से खुश होकर मुस्करा रहा था।

अमला ने कहा—"खैर तुम नहीं बताओगे। मैं ही बताऊँ। आखीर मुझे दुखान्त में करना है। इसलिए मध्य में जरा सा हँसी-मज़ाक रहे तो अच्छा न रहेगा। प्रेम का दर्शन तो एक विषमता ही उत्पन्न कर देगा। लेकिन हाँ तुम्हें दुःखान्त पसन्द है न ! लेकिन मैं तो भूल गई। दुःखान्त कहानियों से तो मुझे नफरत है। मैं तो सुखान्त ही पसन्द करती हूँ। क्या फायदा कोई बेचारा पैसा खर्च करके किताब खरीदे, मनो-

रंजन के लिए और पीछे से गाँठ के आँसू और देने पड़ें। तो हमारी कहानी सुखान्त ही होगी। ठीक है न।"

किशोर मुस्करा रहा था। मुस्कराते हुए ही बोला—"ठीक है। लेकिन इधर देर काफी हो गई। नाव पर न लौटने से सब को चिंता भी तो हो सकती है।"

"ओह हाँ ? सो तो हो सकती है। लेकिन जहाँ इतनी देर हुई वहाँ पाँच-सात मिनिट और सही।"

और उन पाँच-सात मिनटों वह कुछ न बोली। उसकी हंसी समाप्त हो गई थी और वह किसी विचार में डूबी हुई समुद्र में खेलने वाली लहरों को देख रही थी।

फिर एक दीर्घ निश्वास फेंकती हुई वह धीरे-धीरे बोली—"किशोर मेरा जी क्या करता है जानते हो ?"

किशोर ने सिर हिलकर जताया कि नहीं जानता।

अमला ने कहा—"मेरी इच्छा करती है कि समुद्र की इन लहरों पर बैठ कर इनके साथ-साथ ही दूर-दूर तक घूमती रहूँ।"

इच्छा साधारण औरतों की इच्छा और स्वभाव से बिल्कुल भिन्न थी। किशोर ने कोई उत्तर न दिया। अमला ने किशोर के गम्भीर मुँह की ओर देखा और फिर हँस पड़ी। किशोर को लगा कि जैसे गुलाब की पंखुड़ियों पर से ओस की बूँदें टपक पड़ी हों और उन बूँदों ने किशोर के मन की रही-सही ग्लानि को भी धो डाला हो।

अमला ने कहा—"चलो अब चलें।"

: १७ :

नाव पर जिस समय वे दोनों लौटे, उससे पहले उन दोनों के बारे में नाव की औरतों में खूब रोचक बातें हो चुकी थीं। इसका आभास दोनों को ही उन औरतों की निगाहों में छुपी हँसी से मिल गया।

अमला ने जैसे कहा था वैसा ही किया। उसने उनकी व्यंगात्मक हँसी की परवाह तो की ही नहीं। बल्कि बोली—"घटकदा आज हम दोनों बहुत देर तक घूमे। समुद्र के किनारे काफी देर तक बैठ कर गप-शप करते रहे।"

घटकदा ने कहा—"अच्छा!"

और औरतों ने आपस में मुँह बिचकाकर प्रकट किया कि कितनी बेशर्म है। कितनी निर्लज्ज है। अमला ने किसी की तरफ आँख उठा कर भी न देखा। किन्तु किशोर ने उन औरतों की एक-एक हरकत देखी। पुरुष होने पर भी पुरुष-सुलभ निर्लज्जता का उसमें अभाव था। वह मानो लज्जा से गढ़ गया। आत्मग्लानि से उसके मन का कोना-कोना भर-पूर हो उठा और उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि इस निर्लज्ज चरित्रहीना नारी की तरफ न तो वह आज से देखेगा ही और न इसके बारे में कुछ सोचेगा ही, और दृढ़ निश्चय को मन-ही-मन पक्का करके उसने ठीक सही आचरण करने का प्रयास किया।

किन्तु सब निष्फल, सब व्यर्थ। उसने भरसक चेष्टा की कि वह उसकी तरफ न देखे, न ध्यान दे। लेकिन वह जो उसकी तरफ नहीं देखता इसी चेष्टा की तरफ उसे पूरा ध्यान देना पड़ता है।

आँखों की सन्मुखीन दृष्टि के अलावा भी एक दृष्टि है और किशोर ने महसूस किया कि वह दूसरी दृष्टि सिर्फ अमला की ओर ही केन्द्रित है। वह किताब निकालता है। घण्टों सामने रख कर पढ़ने की कोशिश

करता है। किन्तु एक भी अक्षर नहीं पढ़ पाता। मानो किताब के ऊपर जो दृष्टि है वह नकली दृष्टि है। असली दृष्टि तो अमला की तरफ ही रहती है।

और इस व्यर्थ के प्रयास में गंगा-सागर-निवास के तीनों दिन निकल गये। इन तीनों दिनों में एक चीज़ में वह अवश्य सफल हुआ और वह यह कि अकेले में वह एक बार भी उससे न मिला। लेकिन उसकी इस सफलता में अमला का भी सहयोग था। उस दिन कपिल मुनि के दर्शनों के अलावा वह किशोर को जाने के लिए फिर किसी दिन नहीं मिली। इन तीनों दिनों किशोर मेले में घूमा। कभी अकेला और कभी घटक के साथ।

वापसी के दिन एक प्रचलित रस्म यात्रियों के बीच में अदा हुई। बंगाल वाले जब किसी तीर्थ-यात्रा को जाते हैं तो तीर्थ-यात्रा के परि-चित-अपरिचित सह-यात्रियों के बीच में नवीन सम्बन्धों का स्थापन होता है जैसे धर्म-पिता, धर्म-माँ, धर्म-भाई या धर्म-बहन और उनका नामकरण उस तीर्थ के नाम से ही होता है। यथा सागर माँ, सागर-दादा, सागर-दादी और सखियों के लिए सिर्फ सागर का सम्बोधन रहता है। जगन्नाथपुरी जाने पर वहाँ की सबसे मूल्यवान् वस्तु महा प्रसाद के नाम पर यह नामकरण होता है और एक सखी दूसरी सखी को 'महा प्रशाद' कह कर पुकारना शुरू कर देती है। वृन्दावन जाने पर 'चरण तुलसी' का विशेषण आपस में प्रयोग किया जाता है।

इस नाव में भी नाव का लंगर उठाने से पूर्व यह रस्म बड़ी मधुरता के साथ समाप्त हुई। कितनी अपरिचितायें आपस में सखी हो गईं। कितनी माँ बनीं और कितनी बहनें। पुरुषों की संख्या अत्यन्त अल्प थी। किन्तु अल्पसंख्यक वे सभी पुरुष कितनी ही औरतों से सम्बन्धित हुए। किसी के पिता बने और किसी के भाई। घटक की अधिकांश बहनें ही हुईं। घटक सभी से मज़ाक करते थे। इसलिए पिता का गम्भीर रिश्ता किसी ने उनसे स्थापित नहीं किया।

घटक ने हँस कर कहा—"धर्म-पिता बन सकता है। धर्म-भाई बन सकता है। धर्म-बहन मिल सकती है। धर्म-माँ भी मिल जाती है। लेकिन धर्म पत्नी बनने को कोई राजी नहीं होती। इसी बात का अफसोस है।"

घटक की बात सुनकर सभी औरतें हँस पड़ीं। अच्छा खासा मनो-विनोद हुआ।

रस्म प्रायः शेष होने को आई। नाव की पूरी सवारियों में दो ही ऐसे थे जिनका किसी से कोई सम्बन्ध स्थापित न हुआ। दोनों के दो विभिन्न कारण थे। किशोर का किसी से कोई सम्बन्ध स्थापित न होने में उसकी गम्भीरता बाधा बनी। जब से वह नाव में आया था उसने घटक और अमला के अलावा किसी तीसरे से बात तक न की थी और अमला ने अपनी इच्छा से ही सभी सम्बन्ध ठुकरा दिये। सभी को मजाक करके टाल दिया।

रस्म शेष करके जब समुद्र तट से सभी नाव में आने को थे। तो एक अल्पवयस्का विधवा लड़की ने किशोर के पास आकर कहा—"आपने किसी से कोई सम्बन्ध नहीं बनाया।"

किशोर ने मुस्करा कर जवाब दिया—"मेरा इस पूरी-की-पूरी दुनियाँ में कोई सम्बन्धी नहीं है। यहाँ बनाकर ही क्या करूँगा?"

लड़की ने पूछा—"क्यों आपके माँ, बाप भाई, बहिन?"

"माँ बाप सब चले गए। भाई बहन कोई किस्मत में ही न था।"

बात सुनकर लड़की की आँखें छल-छला आईं और बोली—"मेरा भी कोई भाई नहीं है। आज से तुम मेरे भाई हुए।" और लड़की ने एक लाल रंग की डोरी किशोर की दाहिनी बाजू में बाँध दी। दोनों अंजुलियों में समुद्र का पानी लेकर किशोर की अंजुलियों में देते हुए उसने कहा—"आज से तुम मेरे भाई हुए।"

रास्ता चलते एक बहिन मिली। इस सम्बन्ध को किशोर ने अत्यंत

स्नेह के साथ ही स्वीकार किया और उसकी आँखें इस लम्बे चौड़े जगत में एक स्नेह का सम्बन्ध पाकर छल-छला आईं ।

साथ खड़ी औरतों ने किशोर को बताया कि वह भी इसी तरह समुद्र का जल अंजुलियों में भर कर उसके हाथ में दे और मुँह से कहे कि 'आज से तुम मेरी बहिन हुईं' ।

किशोर ने स्नेह-गदगद होकर वैसा ही किया । और उसकी अंजुलियों में जल देते-देते किशोर की आखों से कुछ बूदें भी टपक पड़ीं । दसरे पक्ष से भी यही हुआ ।

सम्बन्ध इस रस्म में बहुत स्थापित हुए थे । किन्तु इतनी सरसता, स्नेह का इतना पुट दूसरे किसी सम्बन्ध में न था । यह उपस्थित सभी ने मन-ही-मन माना ।

इसके बाद सभी नाव पर आ गए । किशोर की नई बनी बहन भी किशोर के पास आ बैठी ।

नई बहिन से नई बातें शुरू हुईं । बहन किशोर का परिचय कुछ-कुछ जानती थी । बोली—"भय्या । घटकदा के मुँह से सुना था कि तुम्हें गाँव में एक मकान की जरूरत है । गाँव पहुँच कर तुम हमारे मकान में आ जाना । हमारा काफी लम्बा चौड़ा मकान है । और इतने बड़े मकान में हम दो बहनें ही सिर्फ रहती हैं । तुम्हारी भी मकान की जरूरत पूरी हो जायगी और हमारा भी मन बँट जायगा । क्यों ठीक है न !"

किशोर ने देखा कि वह बातें बड़ी आत्मीयता के साथ कर रही है । फिर भी उस आत्मीयता की निस्संकोच बातों में भी लज्जा की पुट है ।

किशोर ने भी लज्जित भाव से मुस्कराते हुए कहा—"अच्छा यही होगा दीदी !"

लेकिन दीदी ने बिगड़ कर कहा—"दीदी तुम मुझे नहीं कह सकते । तुम मुझ से उम्र में बड़े हो । तुम मेरा नाम लेकर पुकारा करो । मैं तुम्हें भय्या कहूँगी ।"

कितना मधुर सम्बन्ध है यह बहन-भाई का। एक ही दिन में दो अपरिचित प्राणियों में इस सम्बन्ध के सहारे इतनी आत्मीयता आ सकती है, इतनी मधुरता आ सकती है, देखकर किशोर का मन स्नेहासिक्त हो उठा। बोला—"अच्छा सो ही कहा करूंगा। लेकिन अभी तो बहन का नाम भी नहीं मालूम। वह कहाँ की है, कौन है, कुछ भी तो नहीं मालूम।"

बीच में घटक बोल उठे—"परिचय कराने के लिये तीसरे आदमी की जरूरत होती है किशोर बाबू और इसके लिये सहायता हम से लो।"

घटक ने परिचय कराया—"इसका नाम गीता है। यह रहने वाली श्रीनगर की है। अमला इसकी बड़ी बहिन है। अवश्य सगी नहीं है। किसी दूर के नाते की। लेकिन ये दोनों साथ-साथ ही रहती हैं।"

गीता ने बात काट कर कहा—"सगी बहन और किसे कहते हैं घटकदा? क्या एक माँ के पेट से जन्म लेने पर ही सगापन आता है?"

घटक ने कहा—"ठीक कहती हो गीता। मैं भूल गया, हाँ अब तुम सुनो गीता! कुछ थोड़ा परिचय तो तुम्हें किशोर का मुझसे पहले ही मिल चुका है। और भी विस्तार पूर्वक बता दूँ।"

और घटक किशोर का पूरा परिचय बताने में लग गया।

किन्तु किशोर की प्रसन्नता उड़ चुकी थी। सद्य उत्पन्न स्नेह में कुछ शिथिलता सी आ गई थी। जिसे उसने बहन बनाया है वह अमला की बहिन है। यह उसके लिए प्रसन्नता की बात न थी। और साथ-साथ अफसोस इस बात का भी था कि अब उसे अमला के बिल्कुल पास जाकर रहना होगा। अपनी गलती पर उसे पश्चाताप हुआ। कम-से-कम मकान के बारे में राय देने में और साथ-साथ बहन बनाते वक्त उसे परिचय जरूर ले लेना था। लेकिन जो होना था सो तो हो गया।

किशोर ने इस बार गीता को अच्छी तरह देखा। और देखकर उसे कुछ आत्मतुष्टि भी हुई। दोनों बहनों में जितने दूर का सम्पर्क

है उनके चेहरे की बनावट, आँखों की भंगिमा और स्वभाव-प्रकृति में भी उतने ही अन्तर की दूरी है और किशोर ने मन-ही-मन इन दोनों दूर सम्पर्कीय बहनों के असामंजस्य के बारे में सोचा। कितनी मित्रता है इन दोनों में। एक बहुत जल्दी पहले ही दिन किसी की प्रेयसी बन सकती है। तो दूसरी पहले ही परिचय में बड़े निसंकोच के साथ बहन बन सकती है। एक चंचल है, दूसरी शान्त। एक तर्क है दूसरी विश्वास। एक इच्छा है दूसरी निग्रह। एक अविश्वास है दूसरी भक्ति।

किशोर ने देखा कि उसकी उम्र शायद अमला से एकाध साल ही छोटी हो, किन्तु अमला की सी उच्छृखलता उसकी सी चंचलता उसमें नहीं है। वैधव्य ने इस थोड़ी सी उम्र में ही उसकी आकृति को शान्त और गम्भीर बना दिया है। आँखों में वेदना स्पष्ट है। उसके सर पर बाल नहीं के बराबर हैं। (बंगाल में अधिकांश विधवाएं बाल कटवा देती हैं) सब कुछ मिलाकर भारतीय घरों की एक सरल विनम्र बहन की वह एक साकार आकृति है।

अमला पास हीं बैठी थी। हँसकर बोली—"यह ठीक ही हुआ गाता अब की बार भइया दूज पर नई धोती नया कुर्त्ता देना।"

बंगाल का रिवाज उल्टा है। यू० पी० में भइया दूज के अवसर पर बहन कुछ भाई से पाती है लेकिन बगाल में उल्टे देना पड़ता है। भाई पाता है बहन से कुर्त्ता धोती और दुपट्टा।

गीता ने कहा—"ठीक है। लेकिन मैं घाटे में न रहूँगी दीदी! बहन बनाने का कितना बड़ा उत्तरदायित्व है। इस बात को भी तो भय्या जानते ही होंगे।" कहकर गीता हँस पड़ी।

किशोर ने भी हँसकर कहा—"पहले कुर्त्ता-धोती लेना जान लूँ। उत्तरदायित्व की बात पीछे जानूँगा।"

बात सुनकर सभी हँस पड़े।

: १८ :

उसी दिन नाव का लंगर उठ गया। मेला समाप्त हो गया था। मेले के समारोह के बाद अब यात्रियों को अपने घरों की याद आई। सभी घरों के लिए आकुल हो उठे। नाविकों को स्वयं नए रोजगार की फिक्र थी। नाव शीघ्रता से ही पीछे को लौटी। हवा तेज और अनुकूल थी और नियत समय से पहले ही नाव घाटाल पहुंचने को हुई। वापसी के इन दिनों किशोर ने इस बात का पूरा ध्यान रखा कि वह अमला से अकेले में न मिले। और इसके लिए उसने ऊपर की छत पर जाना ही छोड़ दिया। सिर्फ घटक के साथ ही इन दिनों वह एकाध बार ऊपर की छत पर गया और घटक के साथ ही नीचे उतर आया। बाकी समय उसने अपनी नई बहन गीता के साथ बात-चीत में निकाल दिए। और इस तरह एक-एक करके वापसी के सभी दिन समाप्त हो गए। एक दिन नाविकों ने बताया कि कल सुबह वे लोग घाटाल पहुँच जायेंगे। सुनकर यात्रियों को इतनी खुशी हुई कि उस रात सोते वक्त उसकी नाक की आवाज और दिनों की अपेक्षा अधिक गम्भीर हो उठी।

नाविकों का बात को सुन कर किशोर नाव की छत पर आ बैठा! ठंड का मौसम तो था ही। ठंड काफी थी। फिर भी नाव के मधुर शब्द की तुलना में किशोर को असहनीय न लगी। कंधे के चारों ओर उसने शाल लपेट कर पैरों तक फैला लिया। हवा तेज थी और नाविक पाल तान कर नीचे की अपनी कोठरी में सुख से सो रहे थे। सिर्फ एक बुड्ढा नीचे के पिछले हिस्से में बैठा नाव के हाल (हेंडिल) को पकड़े बैठा था। ठंड से बचने के लिए उसने अपने सर से लेकर पैरों तक एक कम्बल लपेट रखा था। वातावरण शान्त था। नदी के दोनों किनारे ज्यादा चौड़े न थे और उनके किनारों पर बसे हुए गाँव

गम्भीर निद्रा में सो रहे थे। आगे पीछे कुछ नावें थीं। उनकी बत्तियाँ किशोर को साफ दिखाई दे रहीं थीं। ज्वार का पानी बड़ी हल्की बेमालूम मधुर आवाज में नाव के नीचे होकर बह रहा था। बीच-बीच में नाव में काठ के हेंडिल के घूमने की चर्र-चर्र आवाज सुनाई दे रही थी।

किशोर बड़ी शान्त मुद्रा में दोनों किनारे पर बसे गाँवों और इन सब दृश्यों को देख रहा था। उसी समय उसने पीछे मुड़कर देखा। एक आकृति सीढ़ीयों पर से छत पर चढ़ रही है। शरीर और कद से अंधेरे में भी उसने अमला को पहचान लिया।

अमला पास आई और हँस पड़ी। लेकिन बड़ी धीमी आवाज में। मानो भरे पूरे अनार में किसी ने हल्की सी ऊँगली फेरकर कुछ दाने बिखेर दिए हों।

बोली—"नींद नहीं आई शायद।"

किशोर ने जवाब नहीं दिया। वह पास बैठ गई। और बिना कुछ पूछे-ताछे किशोर के पैरों पर पड़े शाल को अपने पैरों पर खींच लिया। उसकी पिंडलियों से किशोर के पंजे लगे।

वह चौंक कर बोली—"उई माँ! तुम्हारे पैर इतने ठंडे हैं।"

किशोर ने कोई जवाब नहीं दिया, किन्तु इस समय कुछ दिन पहले का किया हुआ दृढ़ निश्चय शरतकालीन कुहरे के समान धीरे-धीरे हटने लगा और उस दिन दर्शन के लिए कंधे-से-कंधा सटाकर जाने का भाव फिर लौट आया। किशोर के पजे अभी भी उसकी पिंडलियों से लगे हुए थे।

वह उस हल्के से सुखद स्पर्श से एक अनिवर्चनीय आनन्द का अनुभव करने लगा। इतने दिनों की विरक्ति, इतने दिनों का विराग, इतने दिनों का दृढ़ निश्चय बात की बात में बदल गया, परिवर्तन हो गया, हठात् ही रूपान्तरित हो गया।

नाव, नदी, किनारे के गाँव, ज्वार की कलकल ध्वनि, आसमान पर चमकते सितारे, रात की निविड़ता, सब में मानो एक नया जीवन

आ गया। विश्व-प्रकृति मानो व्यक्तिगत हो उठी। केवल उसी की। सिर्फ किशोर की।

अमला ने मुस्कराते हुए कहा—"रात कितनी अच्छी है। कैसा अच्छा लग रहा है। कल हमारी यात्रा शेष हो जायगी। मेरा दिल क्या कहता है, जानते हो। दिल कहता है कि सारे जीवन भर हमारी यात्रा शेष न हो, समाप्त न हो।"

दिल इस समय किशोर का भी यही कहता था। मानो अमला ने किशोर के दिल की ही बात कही हो। और उसने यह कहना भी चाहा लेकिन असीम आनन्द के प्रबल आवेग ने उसके पास शब्द ही न छोड़े। वह कुछ न कह सका। हाथ बढ़ा कर उसने उसका हाथ अपने हाथों में ले लिया।

अमला कह रही थी—"कल हम एक साथ नाव पर न होंगे, कितना बुरा लगता है।" और वह हँस पड़ी। किशोर को लगा कि उसने अपनी बात की गम्भीरता को इस हँसी से हलका कर दिया।

फिर हँसते हुए ही वह बोली—"एक गाना सुनाऊँ, सुनोगे ?"

अगर एकान्त होता, निर्जन होता, तो इससे बड़ी चीज किशोर के लिए क्या हो सकती थी। किन्तु एकान्त तो था नहीं। नीचे पचासों आदमी-औरत थे। किशोर ने कहा—"नहीं।"

अमला ने कहा—"डरपोक !"

जवाब में किशोर जरा हँसा। फिर बोला—"नीचे आदमी-औरत जो हैं।"

अमला ने कहा—"हुआ करें। इतने नीचे आवाज थोड़े ही जायगी। मैं धीमे-धीमे गाऊँगी। वे लोग सब गहरी नींद में सोये हैं। भैंस की तरह उनकी नाकें बोल रही हैं। और फिर भी अगर सुनलें तो सुनने दो, हर्ज क्या है ? कर्ण सफल हो जायेंगे उनके। ऐसा गाना उनके पुरखों ने भी न सुना होगा।"

और अमला ने जब गाना शुरु किया तो किशोर ने महसूस किया

कि बात में अत्युक्ति न थी। सत्य था। अमला की आवाज़ साफ थी, स्वच्छ थी, मधुर थी, जिसकी कि उसे स्वप्न में भी कल्पना न थी। उसकी आवाज़ उतनी ही सुन्दर थी जितनी कि आकृति।

अमला ने गाया—"ओ हे चंचल जावार आगे मम बिनती राखौ। आर ऐकटी दिन थाकौ।"

किशोर ध्यान-मग्न होकर सुनने लगा, कुछ देर के लिये मानो बेसुध सा हो गया। अकेले में किसी युवती के मुँह से गाना सुनने का यह उसका पहला ही मौका था। और उसमें भी अमला की आवाज़ अत्यन्त मीठी थी। अत्यंत सुरीली थी। मानो पके हुए आम से एक-एक बूँद रस टपक-टपक कर उसकी जिह्वा के अग्र भाग पर पड़ रहा हो। जिसमें आस्वाद की मधुरता तो हो, किन्तु तृप्ति की नीरसता न हो।

बंगालियों का उच्चारण हर शब्द में 'औ' लिए होता है। अमला जब चंचल कहती थी तो वह इतना मधुर लगता था कि एक अनिवर्चनीय मधुरता में किशोर विभोर सा हो उठा। चंचल शब्द का उच्चारण करने वाली उसकी जीभ मानो रस से लबालब भरी हो। मानो शहद में डूबी हो।

अमला गा रही थी—"आमि भूले छिलाम एका। कैनो निठुर दीले देखा।"

लेकिन वह गाते-गाते खिल-खिलाकर हँस पड़ी जैसे कि सूर्योदय होते ही कुमुदनी की पंखड़ियाँ एक-एक करके झड़ पड़ी हों। बोली—"लेकिन यह तो झूठ है, सफेद झूठ। मैं कब अकेली भूली हुई थी जो तुम निष्ठुर ने आकर मुझे सताया। ऐसा झूठा गाना नहीं गाऊँगी। और यह तो सारे का सारा गाना असामयिक है क्योंकि तुम मुझे छोड़ कर परदेश थोड़े ही जा रहे हो। जो तुमसे और एक दिन रुकने का अनुरोध करूँ। कल यात्रा शेष होगी। हमारा तुम्हारा मिलना थोड़े ही शेष होगा। तुम हमारे मकान में रहने आ रहे हो न! गीता से तुम्हारा बातें हो गई हैं मकान के बारे में।"

भावना के मधुर जगत में इस तरह की व्यावहारिक बातें किशोर को इस समय अच्छी न लगीं। बोला—"अमला! गाना गाओ। गाना पूरा करो।"

किशोर के स्वर में अनुनय थी, विनय थी।

अमला ने कहा—"क्यों? अब तुम्हें डर नहीं लग रहा? कोई सुन लेगा तो क्या कहेगा? कोई विचार तुम्हारे दिमाग में नहीं उठ रहा?"

अमला फिर हँस पड़ी। किशोर कुछ देर चुप रहा। फिर धीमे-धीमे बोला—मानो एक-एक शब्द चुनकर बोल रहा हो—"अमला तुम मुझ से नाराज़ हो?"

"नाराज़ क्यों?"

"मैंने तुम्हारा अपमान किया है अमला?"

और किशोर रो पड़ा। सचमुच उसकी आँखों में आँसू थे।

अमला नें कहा—"अरे! यह क्या पागल?"

और वह फिर हँसी। मानो शहद के छत्ते को किसी ने छेड़कर थोड़ा सा शहद गिरा दिया हो। उसने अपनी हथेली से किशोर के आँसू पोंछ दिये।

किशोर ने कहा—"मैं तुम्हें कभी भी नहीं भूल सकता, कभी नहीं। कोशिश करने पर भी नहीं। इन कुछ ही दिनों में तुमने मेरे जीवन को क्या से क्या कर डाला है इमली"

किशोर के इस भावावेश पर वह फिर हँसी और बोली—"लेकिन यह मेरा नाम क्यों तोड़-मरोड़ डाला।"

किशोर ने कहा—"नाम तुम्हारा पहले से ही सुन्दर था। मैंने इसे और भी सुन्दर बना दिया।"

"बहुत अच्छा किया। अब मैं नीचे चल दी। नींद आ रही है।"

"थोड़ी देर और बैठो।"

"वाह जी वाह। सारी रात तुम्हारे पास बैठी रहूँ। सोना नहीं है क्या जरा देर भी?"

वह उठ पड़ी। चलते-चलते बोली—"औरतों से भी कच्चा दिल लिए बाहर घूमते हो।"

फिर हँसते-हँसते नीचे उतर गई। जैसे कि जेठ की दुपहरी में माघ की रात का एक ठंडा झोंका आकर चला गया हो।

उसके चले जाने के बाद किशोर को ऐसा लगा कि आज कुछ भावावेश का आवेग उसके ऊपर ज्यादा हुआ है। जितना कि होना नहीं चाहिए था।

: १६ :

श्रीनगर पहुँचकर किशोर ने सबसे पहले आश्रम छोड़ा। अमला का घर काफी बड़ा था। उससे आभास मिलता था कि कभी जिसने यह बनवाया होगा उसकी जरूरतें संकीर्ण न होंगी और घर के सदस्य भी कम न रहे होंगे। लेकिन अब अधिकांश कमरे खाली थे। अमला ने घर के सारे कमरे दिखाकर पूछा—"कौन सा पसन्द है ?"

"जो कमरा फालतू हो।"

अमला ने उंगली से बताकर कहा—"उन दो कमरों को छोड़कर सभी फालतू से ही हैं। उनमें एक में मैं रहती हूँ और एक में गीता।"

किशोर ने कहा—"ऊपर वाला अगर मैं पसन्द करूँ तो।"

अमला ने हँसकर कहा—"तो वही मिलेगा।"

किशोर का सामान ऊपर वाले कमरे में रख दिया गया। दोपहर को गीता खाना खाने के लिए बुलाने आई। किशोर ने यह खाने-पीने की बात पहले न सोची थी। संकुचित होकर कहा—"तुमने मेरे लिए खाना बनाया है गीता ?"

"क्यों क्या तुम हमार हाथ का नहीं खाम्रोगे भैया? मेले में तो तुमने दीदी के हाथ का खाना खाया था।"

"नहीं, मैं यह बात नहीं कह रहा।"

"तो फिर क्या आमिष निरामिश की। मैं तो आमिष खा ही नहीं सकती। मेरे साथ दीदी भी निरामिष ही खाती हैं।"

"मैं उसकी भी नहीं कह रहा।"

"तो फिर किसकी कह रहे हो भइया?"

किशोर ने संकोच के साथ कहा—"गीता, तुम बहिन हो। इस लिए तुमसे छिपाऊँगा नहीं। एक तो मैं तुम्हारे घर में आकर रहा हूँ। यही तुम्हारे ऊपर कम अत्याचार नहीं है और उसमें खाना बनाने की तकलीफ़ मैं नहीं चाहता कि तुम्हें दूँ।"

गीता ने कहा—"लेकिन यह तो भाई जैसी बात नहीं है भय्या!"

किशोर ने कहा—"बहन के घर भाई अगर दो एक दिन के लिए आया हो तो ऐसा कहना अनुचित है। लेकिन भाई तो दो एक दिन के लिए आया नहीं। वह आया है हमेशा के लिये। शायद मरी जिन्दगी की आखरी साँसें यहीं पूरी हों।"

गीता ने जीभ काटकर कहा—"ऐसी अशुभ बात मुँह से क्यों निकालते हो?"

किशोर ने कहा—"एक दिन की बात होती तो मैं कुछ कहता ही नहीं।"

गीता ने हँसकर पूछा—"तो फिर क्या करोगे? आखिर खाना तो खाना ही पड़ेगा।"

"सो तो पड़ेगा, लेकिन मैं अपने खाने का इन्तजाम अलग से करूँगा।"

"बनायेगा कौन?"

"कोई रसोइया नहीं मिलेगा यहाँ?"

"रसोइये को जो तनखा दो, वह मुझे दे दिया करना।" गीता ने हँसकर कहा।

किशोर बोला—"मज़ाक छोड़ो बहन? रसोइया मिल जायगा न!"

"रसोइया यहाँ किसी भी तरह नहीं मिल सकता भय्या।"

"तो फिर?"

"तो फिर अब तुम्हीं बताओ।"

"मैं खुद बना लिया करूँगा।"

सुनकर गीता हँस पड़ी। बोली—"हाँ, यह बात कही है तुमने एक मार्के की।"

अमला आ गई। सब बात पूछ कर बोली—"तो तू इतनी जिद क्यों कर रही है गीता! बनाकर देखने दे ना। हमारी भी आँखें सफल हो जायँगी।"

किशोर असमंजस में पड़ गया। आखिर अमला ने फैसला किया। बोली—"एक काम करो। आज से जो कुछ खाने में खर्च हो उसका हिसाब रखा जाय। तीन हिस्सों में से एक हिस्से का खर्च किशोर बाबू दे दिया करेंगे। ठीक है न!"

यह बात किशोर ने मान ली। लेकिन बोला—"यह तो हुआ, लेकिन तुम लोगों को तकलीफ कितनी होगी।"

"हाँ इससे बड़ी तकलीफ दुनियाँ में है क्या।" अमला हँस पड़ी फिर किशोर कुछ भी नहीं कह सका।

रसोई-घर में आसन बिछाकर गीता ने थाली परोस दी। बोली—"भय्या देखने में बड़े सीधे लगते हैं लेकिन हैं बड़े हिसाबी आदमी। सब कुछ ठीक करके तब खाने को उठे। ग़रीब बहन के ऊपर दया भी तो कम नहीं है।"

किशोर कुछ न बोला। लज्जित सा हो गया।

भोजन में विशेष आडम्बर न था। चावल के साथ दो सब्जियाँ

थीं। किन्तु भोजन में स्नेह की पुट थी। किशोर को अत्यन्त स्वादिष्ट लगा।

गीता सामने बैठी थी। शीतकाल के दिन थे। फिर भी उसने हाथ में पंखा ले रखा था और उसे देखकर किशोर को अपनी स्वर्ग-गत माँ की याद हो आई। वे भी इसी तरह पंखा लेकर उसके सामने बैठती थी। बहुत दिनों बाद उनका सा स्नेह उसे आज मिला था। खाते-खाते किशोर ने सोचा। एक नारी अमला है और एक नारी गीता है। दोनों में कितना पार्थक्य है। एक है विकृत रूप और एक है स्नेह की साकार प्रतिमा। भारतीय नारी का आदर्श। श्रद्धा से वह बिगलित सा हो उठा। लेकिन जो विकृत रूप है वह भी किसी अज्ञात शक्ति के द्वारा जबरन उसे खींच रही है। दोनों बहनों की तरफ वह आकर्षित हो रहा है। एक का प्रेम-पात्र बनने के लिए और दूसरी का स्नेहपात्र बनने के लिए।

खाना समाप्त करके जब किशोर उठने को हुआ तो गीता ने चिल्ला कर कहा—"अरे यह क्या, सब कुछ तो पड़ा ही रह गया।"

किशोर ने कहा—"थाली में अगर तुम एक राक्षस का आहार परोस दो तो मेरा क्या दोष ?"

"इसे राक्षस का आहार कहते हैं ?"

जवाब में किशोर ने भी कुछ कहा और इस तरह की स्नेहयुक्त बातचीत जब दोनों भाई बहनों में हो रही थी तो अमला आ गई। बोली—"भोजन कर चुके ?"

"हाँ।"

"गीता ऊपर के तख्त पर बिस्तर ठीक कर दो। लेकिन दिन में तो शायद सोते नहीं, क्या करोगे पूरे दिन ?"

"किताबें पढ़ूँगा।"

"ठीक है, किताबों से माथा मारो जाकर। तुम्हारा पेट तो भर गया। अब हम लोगों को भी खाने-पीने दो।"

किशोर हाथ धोकर ऊपर के कमरे में चला गया। गीता ने अमला की पिछली बेतकल्लुफ बातें सुनीं थीं। कुछ ताज्जुब हुआ। वह इतनी सीधी थी कि नाव में सभी आदमी औरतों के जानने पर भी उसे अमला और किशोर में हुई घनिष्टता का कुछ पता न था।

उसने पूछा—"दीदी ! शुरु-शुरु के परिचय में ही किसी से इतनी बेतकल्लुफी की बातें करना क्या ठीक है ?"

अमला ने हँसकर कहा—"और किसी से ठीक हो या नहीं। लेकिन इस बच्चों की सी सूरत वाले आदमी से बेठीक नहीं है।"

फिर थोड़ी देर रुककर बोली—"अच्छा तुमने इनकी सूरत देखी। उम्र में शायद मुझसे दो एक साल बड़े ही हों। लेकिन चेहरे की बनावट से बहुत छोटे मालूम देते हैं। जानती हो गीता ! पहले दिन के अलावा मैंने इनसे आप कभी नहीं कहा। मुझे ऐसा लगता है मानो उम्र में मुझसे बहुत छोटे हों।"

"लेकिन सीधे कितने हैं दीदी और अच्छे कितने हैं। मुझे ठीक उसी तरह अपना लिया जैसे मैं उनकी बहुत दिनों से बिछड़ी बहन होऊँ।" गीता की आँखें भीग सी उठीं।

अमला ने कहा—"यह तुम जानो और तुम्हारे भाई जानें। लेकिन सीधे हैं, यह मानूँगी। स्वभाव बिल्कुल बच्चों का सा है। जरा सी बात में रूठ जाना। जरा सी बात में खुश हो जाना, ऐसे आदमियों से मैं भी डरती हूँ गीता। मुझे उन आदमियों को बेवकूफ बनाने में मजा आता है जो जरा चंट होते हैं। इनके तरह के सीधे-सादे आदमी मेरा जरा भी मनोरंजन नहीं कर सकते।"

"दीदी ! एक बात पूछूँ। बुरा तो नहीं मानोगी।"

"नहीं ! पूछो।"

"तुम इन निरीह आदमियों को क्यों सताया करती हो ? क्यों बेवकूफ बनाया करती हो ?"

"जो खुद बेवकूफ बनता है उसे मैं क्या बनाऊँगी ?"

"खुद बेवकूफ कैसे ?"

"तुम नहीं जानती गीता ! औरतों की तुलना में प्रत्येक पुरुष बेवकूफ ही होता है।"

"एक बात और दीदी ! तुम जैसी हो नहीं वैसी बनने की कोशिश क्यों करती हो।"

"कैसी ?"

"जैसे कि तुम काफी पढ़ी लिखी हो और सबसे कहती फिरती हो कि तुम जरा भी पढ़ी लिखी नहीं।"

असल बात गीता की पूछने की हिम्मत न पड़ी।

अमला ने कहा—"यों ही अच्छा लगता है गीता !"

लेकिन गीता कौतूहल दबा न सकी। बोली—"और भी कुछ बात ऐसी हैं जिनमें तुम सचाई छुपाती हो।"

अमला हँस पड़ी। गीता ने कहा—"बहुत दिनों से पूछती आई हूँ दीदी, लेकिन कभी तुमने डांट दिया है और कभी टाल गई हो। आज पूछ कर ही रहूँगी।"

अमला ने कहा—"फिर कभी बताऊँगी गीता आज नहीं। इसके भीतर एक कारण है और बहुत बड़ा कारण है। जिससे कि मेरा सारा जीवन सम्बन्धित है। लेकिन बतान का समय अभी नहीं आया। समय आने पर बताऊँगी।"

गीता ने झुँझला कर कहा—"क्या खाक बताओगी दीदी ! दुनियाँ की बुरी से बुरी औरत अपने को भली साबित करने की कोशिश करती है। लेकिन एक तुम हो, पवित्र गंगाजल की तरह, निष्कलंक होते हुए भी, दुनियाँ को उल्टा दिखाती फिरती हो।"

"गंगाजल की उपमा देकर तुम उस पवित्र जल को कलुषित कर रही हो गीता !"

"मैं जानती हूँ कि मैं ठीक ही कह रही हूँ।"

अमला हँस पड़ी। गीता ने कहा—"अच्छा देखो उस शेखर को

लेकर तुमने इतना बखेड़ा किया लेकिन क्या तुम शेखर को प्रेम करती थीं ?"

अमला हँसी। कुछ बोली नहीं।

"टालो मत दीदी ! तुम्हें मेरी कसम।"

"अच्छा तुम कसम देती हो तो सुनो। मैंने आज तक किसी पुरुष को प्रेम नहीं किया। पुरुष-जाति से बचपन से ही मुझे घृणा रही है। और उसमें वह बेवकूफ लफंगा शेखर।"

"तो फिर क्यों उसको लेकर इतना बखेड़ा खड़ा किया ?"

"मैंने तुम्हें बताया न ! ऐसे बेवकूफों को छकाने में मुझे मजा आता है।"

"लेकिन बदनामी जो हुई, पंचायत तक बैठी। उसका तुम्हें जरा भी ख्याल नहीं।"

"नहीं, उसका मुझे ज़रा भी दुःख नहीं। क्योंकि मैं अपने इस शौक से उस बदनामी से कहीं अधिक ज्यादा आनन्द उठाती हूँ। बदनामी का उतना दुःख मुझे नहीं होता जितना आनन्द इन बेवकूफों को छकाने में होता है।"

"लेकिन यह अभ्यास क्या अच्छा है दीदी ?"

"अभ्यास है। यह नहीं जानती कि अच्छा है या बुरा। इसे अगर छोड़ सकती तो अमला यहाँ न होती।"

गीता कुछ समझी और कुछ न समझी। लेकिन दीदी होते हुए भी और इतने दिन तक साथ में रहते हुए भी वह अपनी इस विचित्र दीदी को जरा भी न समझ सकी।

किशोर ने ऊपर के कमरे में आकर देखा मकान कच्चा है, मिट्टी का। लेकिन बड़े सुन्दर ढंग से बना है। कच्चे घरों को ऐसी सुन्दरता से बंगाल प्रान्त के कारीगरों के सिवाय शायद और किसी प्रान्त के कारीगर नहीं बना सकते। पक्के घरों में दुमंजिला तिमंजिला से लेकर

कितने ही मंजिलों के मकान बनाये जा सकते हैं। लेकिन कच्चे घरों में दुमंजिले तिमंजिले मकान बंगाल के ही कारीगर बनाते हैं।

ऊपर के कमरे में दो जंगले हैं। एक घर के भीतर आँगन की तरफ खुलता है। दूसरा बाहर की तरफ। आँगन की तरफ के जंगले से सटा हुआ एक तख्त पड़ा है। उस पर एक मोटा नारियल की जटाओं का गद्दा डालकर तख्त को यथासंभव शयन-योग्य बनाया गया है।

बंगाल में बान की खाट चारपाई अथवा निवाड़ के बने पंलगों का रिवाज नहीं है। अधिकांश गरीब धरती माता की गोद में ही कुछ बिछा कर शयन करते हैं। खाते-पीते घरों में तख्त का रिवाज है। आर्थिक अवस्था की भिन्नता के साथ-साथ तख्तों की शक्ल सूरत में भी पार्थक्य है। जो धनवान हैं उनके तख्त के चारों ओर काठ का तकिया है। पलंग पर पालिश है। थोड़ा बहुत चारु कार्य भी है। जो वैसे धनवान नहीं उनके तख्त सादा हैं। न पालिश ही है और न कारीगरी का विशेष परिश्रम ही।

उस कमरे में जो तख्त था, वह बीच की श्रेणी का था। तख्त पर काफी ऊँचाई से एक बालिश्त ऊपर जंगला शुरू होता है। तख्त पर बैठकर उसके सामने के रसोई घर का दृश्य भली भाँति देखा जा सकता है।

गीता के आदर और यत्न से बिछाए हुए बिस्तरे पर बैठकर किशोर ने एक अँगरेजी कविताओं का संग्रह पढ़ने की चेष्टा की। किन्तु सात-आठ पेज पढ़ने के बाद मन नहीं लगा। किताब रखकर वह जंगले में से आँगन के दृश्यों को देखने लगा। उन दोनों का खाना पीना समाप्त हो चुका। अब दोनों ही घर के छोटे-मोटे कामों में व्यस्त हैं। अमला ने साड़ी एक विशेष ढंग से पहन रखी है और उसके छोर को नितम्बों पर कस लिया है और इधर-उधर घूमती हुई फुदक-फुदक कर वह मानो हवा में पैर रखती हुई घर के छोटे-मोटे कामों को बड़ी तत्परता के साथ कर रही है। अमला की उम्र बाईस-तेईस के करीब है।

लेकिन नाटा कद शरीर का इकहरापन और मुँह की सरसता उसे चौदह पन्द्रह से ज्यादा अन्दाज नहीं होने देती।

किशोर देखता रहा। मानो जीवन का गूढ़तम रहस्य शनैः शनैः उसकी आँखों के सामने उन्मीलित होता जा रहा है। किशोर ने इससे पहले किसी नारी को इतने ध्यान से नहीं देखा, उसकी आंखें विधाता की इस अमरकृति की तरफ मानो बन्द सी रही हैं।

अमला पान लेकर ऊपर आई। उस समय किशोर रवीन्द्रनाथ की गीतांजलि पढ़ रहा था।

बंगाल में यू० पी० के देहातों की तरह पान के प्रति उदासीनता नहीं है। न पानों का अभाव ही है। गाँव-गाँव पान की बाड़ी हैं। और उसी के अनुसार यहाँ पान का रिवाज भी अधिक है। भोजनान्ते मुख शुद्धयर्थ की यहाँ कहावत है।

अमला ने पान देकर पूछा—"क्या पढ़ रहे हो?"

"टैगोर की गीतांजलि।"

"सुना है रवी ठाकुर बहुत सुन्दर गीत लिखते हैं।"

"तुमने कोई किताब नहीं पढ़ी उनकी?"

"मैं पढ़ी-लिखी ही नहीं हूँ।"

"असंभव।" गौर से अमला के चेहरे की ओर देखते हुए उसने कहा—"यह झूँठ है।"

"मुझे झूँठ बोलने से फायदा?"

लेकिन किशोर विश्वास न कर सका। बोला—"मैं यह नहीं मान सकता।"

"मत मानो, मेरी बला से।"

वह किशोर के पास बैठ गई। बोली—"लूडो खेलोगे?"

अमला ने गीता को बुलाया। लूडो की बिछात हुई और वे तीनों खेलने बैठ गए।

दूसरे दिन राइस मिल के मैनेजर राजेन्द्र बाबू की खबर मिली। वे बीमार हैं। शाम को वह उन्हें देखने गया और लौटा बड़े अनमने भाव से। रात भी काफी हो गई थी। अमला तब तक सो चुकी थी। गीता ने कहा—"भय्या बहुत देर करदी, इतनी देर तक कहाँ थे। चलो खाना खालो। हम दोनों में से किसी ने अभी तक नहीं खाया है। दीदी यह कह कर सो गई हैं कि जब तेरे भय्या आकर खाना खा चुकें तो मुझे जगा लेना।"

किशोर ने कहा—"लेकिन मैं तो खाना खा चुका बहिन! राजेन्द्र बाबू की पत्नी ने जबरन खिला दिया, मैं सोता हूँ। तुम लोग खाओ।" किशोर बिस्तर पर आकर लेट गया। नीचे गीता ने अमला को जगाया और दोनों खाने बैठीं।

किशोर को नींद नहीं आई। लेटे-लेटे वह बहुत सी बातें सोचने लगा, राजेन्द्र बाबू ने कहा था उस लड़की का स्वभाव ठीक नहीं। उनकी पत्नी ने खाना खिलाते वक्त कहा था—"वहाँ रहना ठीक नहीं।" और जब वह उनके घर से लौट रहा था तो घोषालों के घर में तब तक कोई सोया नहीं था। दरवाजे पर पदचाप सुन कर वृद्ध घोषाल ने आवाज दी—"कौन जा रहा है बाहर?"

किशोर ने कहा—"मैं हूँ किशोर।"

उन्होंने दर्वाजे में से झाँक कर किशोर को देखा। फिर आदरपूर्वक बोले—"ओः किशोर बाबू! इतनी रात में कहाँ से?"

"राजेन्द्र बाबू के यहाँ गया था।"

"आइये, आइये अन्दर आइये।"

"जी, रात आज ज्यादा हो गई। आज नहीं फिर कभी आऊँगा।"

उन्होंने कहा—"अरे आइये एक पान तो खाते जाइयें।" और किशोर को जाना ही पड़ा। घोषाल गिन्नी (ग्रहिणी) किशोर से परिचित थीं। नाव में एक साथ गंगासागर गई थीं। बोलीं !—"अभी आश्रम में ही हो क्या बेटा ?"

"जी नहीं, उनके यहाँ आ गया हूँ। गीता के यहाँ।" अमला का नाम किशोर के मुँह से न निकल सका और घोषाल गिन्नी ने अपने पति की तरफ एक व्यंगात्मक इशारा किया। उन्होंने सोचा था कि किशोर का ध्यान उनकी तरफ नहीं है। लेकिन किशोर ने उनके इशारे को देख लिया और पान लेकर जब वह उनके घर से निकला तो घोषाल गिन्नी अपने पति से कह रहीं थीं—"यह अमला भी एक ही है। देखा कैसे-कैसे आदमियों को उल्लू बनाती है।"

रात के सन्नाटे में किशोर ने उनका एक-एक शब्द स्पष्ट सुना और वह उनकी बात सुनने के लिये ज़रा देर बाहर खड़ा हो गया। घोषाल गिन्नी कह रहीं थीं—"खूब लड़की है यह। शेखर को उल्लू बनाया, मास्टर को उल्लू बनाया और न जाने कितनों को छकाकर अब इसे जाल में फँसाया है।"

जवाब में घोषाल कह रहे थे—शेखर से खट-पट हो गई है।"

"नया मिले, पुराने को छोड़ा। लेकिन ये पुरुष भी अव्वल दर्जे के बेवकूफ होते हैं।"

और इस पुरुष जाति के सामूहिक अपमान पर घोपाल नाराज़ न होकर हँसे थे। और हँसकर बोले—"तुम नहीं जानतीं हो यह उम्र ही ऐसी है। जब मैं जवान था........."

आगें घोषाल की जवानी के किस्से और उनकी प्रणय-कहानियाँ सुनने की किशोर की ज़रा भी इच्छा न थी। वह सीधा घर चला आया और घर आकर जब उसने देखा कि अमला सो गई है और गीता जगी हुई है तो उसने एक सन्तोष की साँस ली। किशोर का अपरिपक्व और अस्थिर मन फिर परिवर्तन की ओर जा रहा था।

अभी उसे लेटें ज्यादा देर न हुई थी कि उसने नीचे की खुलती किवाड़ों की आवाज़ सुनी। फिर सीढ़ियों पर हल्की सी पद-चाप। उसने देखा, हाँ अमला ही है। अमला के हाथ में एक लालटैन थी। लालटैन ऊपर उठा कर उसने लेटे हुए किशोर की तरफ देखा। किशोर जागा हुआ था। किन्तु उसने सोने का अभिनय किया। अमला ने किशोर के शरीर को ज़रा सा धक्का देते हुए कहा—

"सो गये।" किशोर ने आँखें खोल दीं। बोला—"हाँ।"

"कहाँ करदी इतनी रात? जरा सरको मैं बैठूँ।"

किशोर सरक गया। वह पास आकर बैठ गई। बैठकर उसने फिर वही प्रश्न किया—"कहाँ थे इतनी रात तक?"

"राजेन्द्र बाबू के यहाँ। वहाँ खाते-पीते जरा देर हो गई।"

"तो हमारे पास खबर तो भेज देनी थी, खाना बेकार गया।"

किशोर ने कहा—"जी! मुझे अवश्य खबर कर देनी थी आपके पास, मुझसे गलती हुई।"

अमला ने किशोर की आवाज के रूखेपन को लक्ष्य किया। साथ-साथ उसके इस आकस्मिक 'तुम' से आपके परिवर्तन को भी। किशोर अब तक तुम बोलने का अभ्यस्त हो चुका था। भूल होने की कोई संभावना न न थी। अमला ने किशोर की ओर देखा और फिर हँस पड़ी और किशोर को उसकी हँसी ऐसी लगी मानो शीतकाल की अत्यंत ठंडी रात में एक बौछार ओलों की आ गई हो।

अमला ने निचले ओंठ को विकृत करके व्यगांत्मक मुद्रा बनाई और उसी मुद्रा में अपने मुँह को किशोर के ठीक सामने ले जाकर उसकी ओर देखा। फिर गाने के स्वर में एक लाइन गुनगुनाई—'क्या रूठ गई हो प्यारी।'

लेकिन किशोर ने न तो उसकी ओर देखा ही और न एक मुस्कान की रेखा तक अपने ओठों पर आने दी। अमला ने किशोर के हाथ को

अपने हाथ में लेकर हँसते हुए पूछा––"मुँह में क्या पम्प से हवा भर गई है या गुब्बारा मुँह में रख लिया है।"

लेकिन किशोर फिर भी न हँसा। बल्कि उल्टे उसकी भौंहों के संधि-स्थल पर एक हलका सा बल पड़ गया।

किशोर ने रूखी आवाज में कहा––"सोने दो।"

आवाज के रूखेपन के साथ-साथ डाँट भी थी। बिजली की तरह अमला उठ खड़ी हुई और किशोर के जिस हाथ को उसने अपने हाथ में ले रखा था, उसे एक झटके से किशोर के ऊपर फेंक कर वह जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतर गई।

: २१ :

दूसरे दिन से किशोर ने अपने दैनिक कार्यक्रम में परिवर्तन किया और इस परिवर्तन करने में राजेन्द्र बाबू की बीमारी का बहाना भी मिला। किशोर ने नियमित रूप से राइस-मिल जाना शुरू कर दिया। सुबह ही चला जाता, शाम को लौटता। भोजन नौकर के हाथों मिल पर ही मँगा लेता। शाम को घर आता। फिर चला जाता, घटकदा के पास और वहाँ से काफी रात गए लौटता। उसकी सारी कोशिशें अपने को अमला से दूर रखने की थीं। घटक के यहाँ से लौटकर खाना खाने बैठता। उस समय तक अमला सो चुकी होती।

खाना खाते वक्त गीता पास आकर बैठ जाती। मिल की बातें पूछती, कभी उसके घर की बातें पूछतीं। उसके स्वर्ग-गत माता-पिता की, उसके प्रदेश की और न जाने कहाँ-कहाँ की बातें पूछने बैठ जाती। उसके सभी प्रश्नों में बच्चों का सा कौतुहल रहता। अबोध का सा भाव रहता, और किशोर उसकी बातों का ठीक-ठीक उत्तर देता। सब कुछ

विस्तारपूर्वक बताता। बड़े ध्यान से वह बैठ कर उसकी बातें सुनती। फिर पूछती—"अच्छा भय्या तुम्हें अपने देश (प्रदेश) की याद नहीं आती ?"

"वहाँ है कौन जिसको याद करूँ ?"

"नातेदार रिश्तेदार।"

"हाँ वह बहुत से हैं। लेकिन उनकी याद क्या करूँ ?"

"तुमने शादी क्यों नहीं की भय्या !"

किशोर हँसकर जवाब देता—"शादी कर लेता तो यहाँ आना मुश्किल था और यहाँ न आता तो तुम जैसी बहिन कैसे मिलती ?"

"ये टालने की बात है। सच बताओ शादी क्यों नहीं की ?"

किशोर हँसकर जवाब देता—"क्या अब उम्र निकल गई है ?"

"तुम्हारी उम्र कितनी है भय्या ?"

"अठ्ठाईस साल।"

वह ऊँगलियों पर कुछ हिसाब करती रही। फिर बोली—"तुम मुझ से पाँच साल बड़े हो और दीदी से तीन साल। मेरी उम्र तेईस की है। दीदी की पच्चीस की।"

अमला वहाँ न होती। लेकिन अमला के बारे में किशोर किसी तरह की दिलचस्पी दिखाने की कोशिश न करता।

गीता कहती—"तो शादी कब करोगे बताओ ?"

"जब तुम लड़की देख दोगी तभी।"

"हमारे यहाँ की लड़की से शादी करोगे ?"

"तुम्हारे यहाँ के लड़की वाले मुझे लड़की देंगे या नहीं पहले यह सोचो।"

"वाह क्यों नहीं देंगे ? तुम भी तो ब्राह्मण हो।"

"हम लोग दूसरे ब्राह्मण हैं।"

"दूसरे कैसे ?"

"हम लोग यजुर्वेदीय हैं। यहाँ के ब्राह्मण सामवेदीय हैं।"

"ये वेदी क्या ?"

"वेद के मानने वाले ।"

गीता समझने की कोशिश करती। लेकिन यह वेद और सूत्र के विभेद उसकी समझ से परे की वस्तु थे ।

वह पूछती—"तो क्या हमारे यहाँ के ब्राह्मणों से तुम्हारे शादी-विवाह नहीं हो सकते ?"

"हो क्यों नहीं सकते। लेकिन अभी तक हुए नहीं हैं। या हुए भी हैं तो वह बहुत कम हुए हैं। शहरों के पढ़े लिखे आदमी इन बातों को नहीं मानते। उनमें अन्तर्प्रान्तीय विवाह भी होने लगे हैं।"

"तो ठीक है। मेरे मैके में ब्राह्मणों के बहुत से घर हैं। वे सब कलकत्ते में बड़े-बड़े आफीसर हैं। मैं वहाँ जाकर उन लोगों से कहकर तुम्हारे लिए लड़की ठीक कर आऊँगी।"

किशोर ने मुस्करा कर कहा—"अच्छा सोही करना।"

गीता ने पूछा—"तुम्हारे देश की लड़की से विवाह नहीं हो सकता ?"

"हो क्यों नहीं सकता। लेकिन वह तुम्हें पसन्द न आयेगी।"

"क्यों ?"

"वह बँगला नहीं बोल सकेगी।"

"क्यों ? तुमने बँगला कहाँ सीखी ?"

"तुम बड़ी बेवकफ हो।" किशोर हँसकर उत्तर देता—"सारी रामायण सुनकर जैसे पूछ रही हो कि सीता राम की चाची हुई या नानी।"

गीता हँस पड़ती।

किशोर कहता—"इतने दिनों से तुम्हें बराबर बताता आया हूँ कि मैं बचपन से बंगाल में रहा हूँ। यह बात तुम्हें कितनी बार बताई है ?"

गीता कहती—"अरे हाँ। यह तो मैं भूल ही गई।" फिर जरा रुक कर बोली—"अच्छा तुम अपने देश (प्रदेश) की लड़की से ही विवाह कर लेना। मैं उसे बंगला बोलना सिखा दूँगी।"

"सिखा देना। लेकिन ब्याह करने जब वहाँ जाऊंगा, तब क्या वह मुझे यहाँ लौटने देगी ?"

"क्यों नहीं लौटने देगी ? तुम कहना वहाँ एक तुम्हारी बहन है।"

"बस यही तो मुश्किल है। दुनिया की कोई भी लड़की सास ननद को पसन्द नहीं करती। चूहे बिल्ली का सा बैर है। जब सुनेगी कि उसकी एक ननद भी है तो उसका मुँह देखना भी पसन्द न करेगी।"

"मैं जाकर लिवा लाऊँगी।"

कुछ देर तक गीता चुपचाप बैठी रही। फिर बोली—"लेकिन कोई जरूरत नहीं इतनी दूर जाकर विवाह करने की। न जाने कैसी काली-कलूटी लड़की पकड़ लाओगे। मुझे काली-कलूटी भाभी नाम को न सुहाएगी। मैं कैसी भाभी चाहती हूँ ? जानते हो ?"

किशोर ने सर हिलाकर बताया कि नहीं जानता।

गीता ने कहा—"अमला दीदी जैसी।"

किशोर ने कोई उत्तर नहीं दिया। गीता ने देखा कि कई दिन से अमला का नाम आते ही वह चुपचाप हो जाता है और या फिर बात को टालने की कोशिश करता है और इन कई दिनों से उसने इन दोनों को बातें करते भी नहीं देखा। बात करना तो दूर रहा, एक दूसरे के सामने भी नहीं पड़ते। जब किशोर घर पर रहता है तो अमला मुहल्ले की औरतों के यहाँ बातें करने चली जाती है। और जब अमला घर पर रहती है तो किशोर बाहर चला जाता है। उनकी इस अकारण अनबन का कारण गीता की समझ में न आया। एक दिन पहले उसने अमला से इसका कारण पूछा भी था। लेकिन सन्तोषजनक उत्तर उसे न मिला। आज उसने किशोर से कारण पूछने की कोशिश की। बोली—"एक बात पूछूँ भय्या।"

"जब से बैठा हूँ तब से सैंकड़ों बात पूछ डाली है। अब 'एक बात पूछूँ' कहने की क्या जरूरत है ? पूछो।"

"क्या तुम दीदी पर नाराज हो ?"

"नहीं तो।"

"तो क्या दीदी तुम पर नाराज हैं ?

"यह उनसे पूछने का सवाल है।"

"तुम दोनों में कुछ लड़ाई हुई है ?"

"नहीं।"

"तो क्या बात है तुम दोनों बोलते क्यों नहीं आपस में ?"

किशोर ने कहा—"वे न बोलें तो क्या मैं उनसे जबरन बोलने जाऊँ ?"

गीता ने कहा—"बड़े आश्चर्य की बात है। मैं एक बात सोचती हूँ हमेशा।"

"क्या ?"

"सोचती हूँ कि तुम दोनों में कौन समझने में सरल है। तुम या दीदी।"

"क्या मतलब तुम्हारी बात का ?"

"मैं तुम दोनों में से किसी को भी नहीं समझ पाई। दीदी के पास इतने दिन से रहती हूँ, उन्हें भी नहीं और तुम्हें भी नहीं।"

"क्या नहीं समझ पाई ?"

"तुम दोनों की बातें। दीदी से पूछा—'तुम भय्या से नाराज हो' तो बोलीं—'नहीं तो'। तुम से भी पूछा तुमने भी कहा—'नहीं तो।' दीदी से पूछा 'क्या भय्या तुम पर नाराज हैं।' बोलीं—'उनसे पूछो।' तुमसे पूछा तुमने कहा—'यह उन्हीं से पूछने की बात है।' खैर यह हुआ, फिर मैंने दीदी से पूछा—'क्या तुम दोनों में लड़ाई हो गई है' बोलीं—'नहीं' तुमसे पूछा तुमने भी कहा—'नहीं।' दीदी से पूछा—"तुम उनसे बोलती क्यों नहीं' तो बोलीं—"कोई अगर न बोले तो मेरे ही सर में बोलने के लिए ऐसा क्या दर्द है।' तुमसे पूछा तुमने भी वैसा ही उत्तर दिया। सोचती हूँ कौन सच्चा है तुम या दीदी ?"

गीता की बातें एक तो होती ही हमेशा बच्चों की सी हैं। उस पर

इस समय की बातें कहने के ढंग और उसके हाव-भाव में ऐसा कुछ था कि किशोर से बिना हँसे न रहा गया। हँसते हुए बोला—"ऐसा भी तो हो सकता है कि दोनों ही सच बोल रहे हों। मैं भी और वह भी।"

गीता ने कृत्रिम क्रोध के स्वर में कहा—"हाँ जी वह भी सच्ची हैं और तुम भी। बस मैं ही एक झूँठी हूँ। तुम भी ठीक हो और वे भी। बीच में बस मैं ही एक पागल हूँ।"

गीता की बात सुनकर किशोर जी भर कर हँसा। इन कई दिनों से वह इस तरह हँस न पाया था। किशोर ने हँसी को रोकते हुए कहा—"तुम हो ही पागल। तुम बीच में मुफ्त का सिर दर्द क्यों मोल लेती हो ?"

गीता ने कहा—"मुझ से घर में इस तरह नहीं रहा जाता। तुम आओ तो मुँह फुलाये। वे आएं वो नाक फुलाए। सारे दिन जैसे घर में मातम मनाया जा रहा हो। कोई बातचीत तो हो, या यों ही। वे मुँह फुलाए मुहल्ले में घूमकर बातें बनाती फिरतीं हैं। और तुम गर्दन लटकाए मिल पर चले जाते हो। पहले कह रहे थे मुझे मिल पर रोज रोज जाने की कोई जरूरत नहीं। और अब जाना शुरू किया तो सुबह के गये शाम तक वहीं बैठे रहे। खैर इसे बर्दाश्त कर भी लूं यह अच्छा ही है। अपना काम अपनी आँखों से देखना ठीक भी है। लेकिन मिल से लौटकर घर में कपड़े बदले और फिर भागे सर पर पैर रखकर उस खफ्ती वटकदा के यहाँ। उस मुंहजले को एक दिन झाड़ू से न मारा तो मेरा भी नाम गीता नहीं। झक्की कहीं का। इतना बातून है कि दूसरा ढूंढ़े न मिलेगा। जब बात शुरू करता है तो खत्म करना ही नहीं चाहता। सब बेसिर पैर की बातें जिनका न तो माथा हो न पाँव। मुंहजला मुझे तो अब देखते भी नहीं सुहाता।"

किशोर ने कहा—"उस बेचारे को क्यों गालियाँ दे रही हो। उसका क्या दोष है।"

"दूंगी हजार बार दूंगी। उसे गाली लाख बार दूंगी। कल सुबह

ही जाकर उसे हजार गाली नहीं सुनाईं तो मुझे भी प्रताप चक्रवर्ती की लड़की न कहना। सारा बातूनपन निकाल दूंगी उस कम्बख्त का। कम्बख्त न जाने क्यों इतनी बातें करता है। और एक तुम उसे मिल भी खूब गए हो! भक्त श्रोता बनकर बड़े ध्यान से बैठकर उसकी बातें सुनते हो। बाबू साहब को न जाने क्या अच्छी लगती हैं उस गप्पी की बातें। रात-दिन गाँजे की दम लगाता है और बातें करता है सिर्फ अपनी ही अपनी। सारे दिन बैठकर बातें गढ़ता है और शाम को तुम्हें सुनाता है। वह तुम्हारी उम्र का भी तो नहीं है। बराबरी का भी तो नहीं। लेकिन तुम न जाने कैसे हो। उसके पास इतनी देर तक बैठे रहते हो। मुँहजला गंजेड़ी कहीं का। और हाँ उस चण्डालखाने का नाम क्या रखा है उसने। आश्रम। आश्रम जैसे ऋषि मुनियों का आश्रम हो। तपोभूमि हो।"

किशोर का हँसते-हँसते बुरा हाल था। हँसी रोक कर बोला—"तपोभूमि नहीं है? पक्की तपोभूमि है। जहाँ इतना गाँजे का धूम्र उड़ता है उसे तपोभूमि नहीं कहोगी तो क्या कहोगी। हवन की तपोभूमि में भी तो धूम्र ही उड़ता है।"

"हाँ-हाँ उड़ता है और वह उस तपोभूमि का तपस्वी है। मरेगा तो विमान आयेगा उसे स्वर्ग से लेने के लिए। तपस्वी के शागिर्द हो तुम।"

"ऐसे तपस्वी का शागिर्द बनने में भी तो फ़ायदा है। विमान जब उसे स्वर्ग ले जाने लगेगा तो कम से कम ऐसे भक्त शागिर्द को थोड़े ही छोड़ जायगा। मुझे भी सशरीर स्वर्ग जाने का सौभाग्य प्राप्त होगा।"

"चुप रहो भय्या! ऐसी अशुभ बातें मुँह से निकालोगे तो अच्छा नहीं होगा। यह कहे देती हूँ।"

किशोर चुप हो गया। गीता ने कहा—"अच्छा भय्या। तुम्हें उसकी बातों में ऐसा क्या अच्छा लगता है?"

"घटकदा की बातें बड़ी मजेदार होती हैं गीता ! और फिर यहाँ बैठे-बैठे क्या करूँ ?"

"हाँ यहाँ बैठे-बैठे क्या करोगे। वहाँ तपस्वी के चरणों में बैठकर पुण्य कमाओ।"

किशोर हँसता रहा। फिर बोला—"देखो। अभी तुम कह रहीं थीं कि भय्या तुम शादी करलो। लेकिन इस हालत में तो शादी नहीं की जा सकती।"

"क्यों ?"

"तुम अपनी भाभी को घर से निकाले बिना रहोगी ही नहीं।"

"कैसे ?"

"तुम्हारी भाभी आकर तो तुम्हारे पास मुझे बैठने ही न देंगी। सोचेंगी कि ननद कान भर देंगी। और फिर तुम्हें वह फूटी आँखों न सुहायेगी।"

"क्यों न सुहायेगी ? तुम शादी तो करो। फिर देखूँ वह कैसे मुझे तुम्हारे पास नहीं बैठने देतीं। मैं ऐसी ननद हूँ ही नहीं जो भाभी मुझ से डरें।"

"ऊँहुँ यह हो ही नहीं सकता। सभी भाभियाँ अपनी ननदों से थोड़ी बहुत ईर्ष्या रखती हैं। ननद चाहे कैसी भी हो।"

गीता ने कहा—"अच्छा जाओ। तुम बातें मत बनाओ। तुम बातें बनाकर मुझ से घटकदा की बातें भुला देना चाहते हो। लेकिन मैं ऐसी बेवकूफ नहीं हूँ। तुम देख लेना कल सुबह मैं उसे गाली सुनाए बिना न छोड़ूँगी।"

किशोर ने हँसकर कहा—"अच्छा यह तो कल सुबह की बात है। सुबह देखी जायगी। सुबह जाना और घटकदा को खूब पेट भर कर गाली सुना आना। लेकिन अब मुझे जाने दो। बेचारा मेरी बाट जोह रहा होगा।"

"अहा हा मुँहजले बेचारे के लिए कितनी दया है मेरे भय्या के

मन में। वाह—वाह जी दया के सागर मेरे भय्या। दया मानो उमड़-उमड़ कर बर्साती नदी बनी जा रही है। हाँ-हाँ जाओ। जल्दी जाकर बेचारे को इस दया के समुद्र में डुबो दो।"

किशोर उठने को हुआ। गीता ने कहा—"क्या ? तुम क्या समझ रहे हो ? मैं तुम्हें वहाँ चला जाने दूँगी, नहीं हर्गिज नहीं। पूरब का सूरज पश्चिम में निकले तब भी नहीं।"

किशोर ने हँसते हुए पूछा—"सचमुच न जाने दोगी।"

"और क्या झूठ-मूठ।"

"तो मैं यहाँ बैठे-बैठे क्या करूँ ?"

"बैठो, अभी पाँच मिनट में आती हूँ। जाकर दीदी को बुलाए लाती हूँ। फिर उन्हें और तुम्हें बैठाकर फैसला करूँगी। देखूँगी किसका दोष है। कौन किससे नहीं बोलता। दीदी को भी आज दिखा दूँगी कि मैं क्या हूँ। दीदी हैं तो क्या हुआ। हुआ करें बड़ी। आज उनका सारा बड़प्पन उठाकर ताख पर रख दूँगी। आज मुझे फैसला करना ही है।"

"अरे पागल हो क्या ?"

"हाँ-हाँ तुम्हारी बातों में न बहकूँ तो पागल तो कहोगे ही।"

किशोर ने कहा—"ऐसा पागलपन मत करना गीता ! समझीं ! सचमुच कोई लड़ाई नहीं है। कोई किसी पर गुस्सा नहीं है। कोई जरूरत ही नहीं पड़ती बोलने की और न बोलने से कोई काम भी तो नहीं बिगड़ता।"

"मैं तुम्हारी एक न सुनूँगी।"

"तुम्हें मेरी क़सम गीता !"

"मैं तुम्हारी क़सम मानूँगी ही नहीं। तुम्हारी क़सम खाकर कहती हूँ।"

किशोर ने हँसकर कहा—"मेरी क़सम खाकर कहती हो कि मेरी कसम नहीं मानोगी ?"

"हाँ ! तुमने अपने मुँह से जो दिलाई है, उसे नहीं मानूँगी। अपने मुँह से जो खाई है उसे मानूँगी।"

किशोर ने देख लिया कि इस बच्चों जैसी स्वभाव वाली लड़की से जीतना मुश्किल है। बोला—"तो जो तुम्हारे जी में आए करो।"

"ठीक है। बैठो यहीं। अभी आती हूँ दीदी को लेकर।"

"तुम्हारी इच्छा।"

"भाग मत जाना।"

"नहीं।"

"खाओ मेरी कसम।"

"अब इतनी भूख कहाँ है जो कुछ खा सकूँ। तुम जब खाना खिलाने बैठती हो तो पेट में इतनी जगह छोड़ती हो क्या कि कुछ खाया जा सके?"

गीता हँसी। बोली—"बात टालना खूब सीख रखा है मेरे भय्या ने। लेकिन जाना मत, मैं कहे देती हूँ।

किशोर ने कहा—"नहीं।"

और वह दौड़ती हुई बाहर चली गई। उसके जाते ही किशोर दूसरे दर्वाजे से बाहर चला गया।

थोड़ी देर बाद जब गीता अमला को साथ लेकर लौटी तो बोली—"देखा, झूठे भय्या चकमा देकर भाग गए।"

अमला को वह 'एक जल्दी का काम है' कहकर लिवा लाई थी। कारण कुछ न बताया था।

अमला ने पूछा—"क्यों क्या बात थी?"

"बात थी। बहुत बड़ी बात थी। लेकिन जब वह भाग ही गए तो अब और क्या बात रही। लेकिन वह जायेंगे कहाँ? लौट कर तो इसी घर में आना है। देख लूँगी।"

अमला ने पूछा—"बात बताओ न गीता?"

"बात बताऊँगी दीदी! लेकिन एक बात मैं तुमसे कहे देती हूँ। इस घटक को मैं कल जाकर अच्छा सबक दूँगी। तुम मुझे न रोकना। मैं यह तुमसे कहे देती हूँ।"

अमला ने पूछा—"क्या घटकदा ने कोई अनुचित कार्य किया है ?'

"अनुचित ! रात-रात भर भय्या को अपने पास बिठाए रखता है। इससे ज्यादा अनुचित और क्या होगा ? मैं जाकर उसे हजार गाली न सुना आऊँ तो मेरा भी नाम बदल देना।"

अमला ने कहा—"तुम्हारे भय्या कोई बच्चा नहीं हैं। और सींग आदमियों के निकलते नहीं जो सींग निकलने पर आदमी होंगें। जो घटकदा उन्हें बुला लेते हैं, और फिर घटकदा तो उन्हें जबरन पकड़ ले नहीं जाते। फिर तुम बेचारे घटकदा से क्यों चिढ़ती हो ?"

गीता ने सिर हिलाकर कहा—"अहा ! कैसा दर्द है उस बेचारे के लिए तुम्हारे दिल में। मैं तो कहती हूँ कि भय्या ही हैं। लेकिन तुम तो उन से भी बढ़कर निकलीं। तुम दोनों की एक सी आदत है। भय्या ने भी कहा बेचारा। और तुमने भी कहा। हाँ-हाँ उससे बड़ा बेचारा और कौन होगा ? गंजड़ी गप्पी कहीं का।"

अमला ने कहा—"गीता ! इस तरह किसी को पीठ पीछे गाली नहीं देते हैं। उसमें भी वह उम्र में बड़े हैं।"

"बड़े होंगे, तुम्हारे होंगे। तुम जाओ। जाकर पैर धोकर पीओ उनके। मैं उसका बड़प्पन अपनी झाड़ू से झाड़ दूँगी। तुम बड़ी हो, तुम्हारे चरणों में लाख बार प्रणाम करती हूँ। लेकिन अन्याय की बात तुम्हारी एक भी न सुनूँगी। कल जाकर उसे....।"

बीच ही में अमला ने पूछा—"क्यों क्या बिगाड़ा है उन्होंने तुम्हारा ?"

"बिगाड़ा कैसे नहीं ? क्यों वह रात-रात भर भय्या को पास बैठाए रखता है।"

"कोई अगर जाकर उनके पास बैठे तो उनका क्या दोष ? वे तो जबरन पकड़ कर किसी को नहीं बैठा लेते।"

"दोष कैसे नहीं ? पकड़कर कैसे नहीं बैठा लेते ? भय्या ही जो

अपने मुँह से कह रहे थे। बाट जोह रहा होगा बेचारा। बाट जोहता है बैठकर तभी तो भय्या को इतनी फिक्र रहती है।"

अमला ने कहा—"बाट जोहना दूसरी चीज है और पकड़कर बैठाना दूसरी चीज।"

"दूसरी हो या तीसरी। लेकिन यह मैं तुमसे कहे देती हूँ कि उसका विष झाड़े बिना मैं न मानूँगी।"

"अच्छा तुम्हारी राजी हो सो करना बाबा! मुझसे माथा न मारो। लेकिन हाँ यह बताओ मैं वहाँ प्रमिला से बैठी बातें कर रही थी। मुझे क्यों बुला लाईं?"

"तुम्हीं से तो असल झगड़ा है दीदी! तुम भय्या से नहीं बोलतीं। इसी से तो वे रात दिन मारे-मारे फिरते हैं।"

"मैंने किसी से नहीं कह दिया कि वे रात-दिन मारे-मारे फिरें।"

"कह तो नहीं दिया लेकिन बोलती क्यों नहीं?"

"मैं क्या किसी से जबरन बोलने जाऊँ।"

"आज इसी का तो फैसला करना था, लेकिन क्या करूँ। वे भाग ही गए। लेकिन जायेंगे कहाँ, कितनी भी रात हो, लौटकर तो घर आयेंगे ही। तब आज इसका फैसला करना है कि कौन किससे नहीं बोलता, तुम या भय्या।"

अमला कुछ देर चुप रही, फिर बोली—"गीता वयस्क होने पर भी तुम अभी निरी बच्ची हो। इसलिए बच्चों-जैसी बातें तो अच्छी लगती हैं। किन्तु यह बुजुर्गों की सी बातें अच्छी नहीं लगतीं। हमेशा यह याद रखो कि मेरे किसी भी आचरण की आलोचना करने का तुम्हारा कोई हक नहीं है। आइन्दा मेरी किसी बात में टाँग अड़ाने की कोशिश न करना।"

स्वर में शासन था, रूखापन था। आवाज अपेक्षाकृत गम्भीर और कड़ी थी। गीता के फैसला करने के सारे विचारों पर मानो पानी फिर

गया। दीदी पर शासन करने के सारे इरादे काफूर हो गए। वह करुण दृष्टि से अमला की ओर देखती रह गई। लेकिन अमला रुकी नहीं, जिधर से आई थी उधर को ही चली गई।

: २२ :

घटक ने चिल्ला कर कहा—"स्वागतम सुस्वागतम। लेकिन दोस्त आज आने में देर कर दी।"

"हाँ आज आने में देर हो गई।"

"यह दियासलाई बहुत देर से तुम्हारा इन्तज़ार कर रही है।"

दियासलाई हाथ में लेकर किशोर ने घटक की चिलम में दिखायी। कश खींचकर धुआँ छोड़कर, तीन चार कशों में ही उन्होंने चिलम उलट दी। बोले—"चाँदी (राख) हो गई।"

इसके बाद कुछ देर चुप रह कर बोले—"लो किशोर बाबू! अब उस कहानी को सुनो जिसकी वजह से गाँव छोड़ना पड़ा।"

घटकदा का यह एक गुण था। गाँजे की दम लग जाने के पश्चात उनसे किसी प्रश्न को करने की आवश्यकता न थी। उस समय वे स्वचलित रेडियो थे।

गले को साफ करके उन्होंने सुनाना शुरू किया—"पिता जी बचपन में ही मर गए। तेरह-चौदह साल का हुआ माँ भी चल बसीं। मैं तारकेश्वर के हाई स्कूल में पढ़ता था। पढ़ने में तेज था और उधम में उससे भी ज्यादा। पूरे का पूरा गाँव मेरे ऊधमों से तंग आ गया था। जब तक माँ रहीं तब तक मेरे उत्पातों का रूप सीमित ही रहा। लेकिन उनके मरते ही उनमें बाढ़ सी आ गई और उसी उत्पात के नशे में पढ़ाई-वढ़ाई छोड़ छाड़कर मैं बिलकुल मुक्त हो गया। अब और कोई काम न रह

गया। तरह-तरह के उत्पात करना। सामूहिक मजाक करना बस यही दिनचर्या रह गई। हमारे घर के अलावा पूरे का पूरा गाँव जिस जाति का था उस जाति विशेष के बारे में बगाल में एक कहावत मशहूर है। वह यह है कि अस्सी साल की उम्र तक उस जाति के आदमी नाबालिग ही रहते हैं। तो उस जाति विशेष का एक मुखिया था। वह मुझे काफी प्यार करता था।

एक दिन मुझे बुला कर उसने कहा—"गाँव के सभी आदमियों से तुमने तरह-तरह की दिल्लगियाँ की हैं। लेकिन हमसे आज तक नहीं की।"

मैंने जवाब तो कुछ दिया नहीं। लेकिन मन ही मन कहा कि तुमसे वह दिल्लगी करूँगा जो जीवन भर याद रखोगे।

महीने भर बाद दशहरे का मेला आ गया। गाँव के कुछ आदमी औरत गंगा-स्नान करने सावड़ा पुली गए। मैं भी उनके साथ चल दिया। मन में एक इरादा था। चलते वक्त घर की ताली मुखिया के हाथ सौंप कर देख-रेख करने को कह गया।

गंगा-स्नान के मेले में भीड़ थी। सबके साथ नहाने उतरा। तैरने में तो कुशल था ही। ुबकी का भी अभ्यास था। नहाते-नहाते उन सबके सामने मैं ज्यादा पानी में गया और एक डुबकी लेकर पानी के भीतर ही भीतर कुछ दूर भीड़ के एक झुण्ड में जा निकला और भीड़ की आड़ में खड़े होकर तमाशा देखा। मेरे साथियों ने कुछ देर तक तो उम्मीद की कि अब निकलूँ, अब निकलूँ। लेकिन बहुत देर तक जब न निकला तो वे घबड़ाये। पानी में खोजा-खोजी हुई। हल्ला-गुल्ला मचा और उस खोज बीन और हाय तोबा के बीच में गाँव वालों को छोड़ कर भीगी धोती से ही शहर आया। धोती सुखाई और एक वस्त्र परिधान करके ही कलकत्ते चला आया। कुछ दिन इधर-उधर फिरा और फिर पोस्टआफिस के सामने बैठ कर चिट्ठी लिखने का काम शुरू किया। इस बीच में गाँव वालों ने मेरा श्राद्ध भी कर डाला।

छै महीने बाद रात की ट्रेन से तारकेश्वर पहुँचा और करीब आधी रात के भी बाद में मैंने गाँव में प्रवेश किया। मुझे मालूम था कि मुखिया अकेला अपने बैठकखाने पर सोता है। वह बैठक एक तरह से गाँव के एक सिरे पर थी। सीधे मुखिया की बैठक पर पहुँचा और उसके पाँवते बैठकर मैंने उसे जगाया। गहरी नींद में सोया हुआ मुखिया बहुत देर में जागा। रात उजाली थी। जागकर जो उसने मुझे देखा तो उसकी घिग्घी बँध गई। मैंने डरे हुए मुखिया को साहस दिया—'डरो मत मैं स्वर्ग से तुम्हारे पास मिलने आया हूँ और तुम हो कि डरते हो।' लेकिन उसे समझाना मुश्किल था। वह बेहद डरा हुआ था। बड़ी मुश्किल से उसे समझा बुझा कर शान्त किया। बताया कि बड़ी मुश्किल से भगवान् से एक दिन की छुट्टी लेकर तुम्हें देखने आया हूँ। अस्सी वर्ष तक नाबालिग रहने वाली जाति के मुखिया ने मेरी बात पर इतमीनान कर लिया, बहुत देर बाद जब उसे पूरा साहस लौट आया तो उसने स्वर्ग के बारे में प्रश्न किए। मैंने दिलचस्प बातें सुनाईं—"दूध की नदियाँ हैं। दही की पुष्करिणियाँ हैं। शक्कर की ज़मीन है, मेवे और फलों का कूड़ा करकट है। बर्फी की ईंटें हैं, रबड़ी की चिनाई है। रसगुल्लों के कंगूरे हैं।"... आदि आदि।

सुनकर बुड्ढे के मुँह में पानी आ गया। मैंने कहा—"वहाँ से कोई लौटता थोड़े ही है। मुझे ही क्या यहाँ आने की इजाजत मिलती, लेकिन बड़ी मुश्किल से भगवान को राजी किया है। मेरे ऊपर एक तो वैसे ही खुश थे। क्योंकि गंगा में डूब कर मरा था। दूसरे मेरे मजाकिया स्वभाव पर भी भगवान् लट्टू हो गए हैं। मैं चाहूँ तो तुम्हें भी स्वर्ग की रातों रात सैर कराके सुबह तक फिर यही पहुँचा सकता हूँ।"

"सुन कर बुड्ढे ने कहा—"सच।"

"और क्या झूठ? हाथ-कंगन को आर्सी क्या है?"

बुड्ढा तैयार हुआ। मैंने कहा—"लेकिन एक बात है मुखिया! नजराने में रुपये पच्चीस लग जायेंगे।"

"तो ये कौन बड़ी बात है ?"

और मुखिया ने अन्दर घुसकर बक्स खोला। पच्चीस रुपये मेरे हाथों में देकर वह गिड़गिड़ाया—"अगर मुझे स्वर्ग-दर्शन करा दो तो जिन्दगी भर तुम्हारा अहसान न भूलूंगा।"

मैंने शिष्टाचार की दो एक बातें कहीं और फिर मुखिया को साथ लिया। गाँव के बाहर आकर मुखिया की आँखों से पट्टी बाँधी और एक गधे पर बिठा कर कहा—"यही स्वर्ग की सवारी है।" गधे को गाँव के दो तीन चक्कर लगा कर गधानीयों के बीचों-बीच गाँव में खड़े करके मैंने कहा—"अब तुम स्वर्ग के दरवाजे पर खड़े हुए हो। दो घंटे तक यहीं खड़े होने के बाद स्वर्ग के देवता तुम्हारी परीक्षा लेने आयेंगे। वे तुम्हारे गाँव वालों और घर वालों की सी आवाज बनाकर तुम्हारी परीक्षा लेंगे। उस परीक्षा में अगर तुम पास हो जाते हो तो तुम स्वर्ग में प्रवेश कर सकोगे और अगर उन आवाजो के धोखे में आ गए तो वे ही देवता एक ऐसी लात तुममें जमायेंगे कि नीचे धरती में गिर कर तुम्हारी हड्डी चूर-चूर हो जायेंगी।"

"और किशोर बाबू बुड्ढे को आखिरी हिदायत देकर स्वर्ग की सवारी पर बैठे रहने को कहकर मैंने उससे कहा—"अब मैं चल दिया, स्वर्ग के अन्दर ही तुमसे मुलाकात होगी।" अपन मकान का ताला तोड़कर मजे से उसमें जा सोया। सुबह होने में ज्यादा देर न थी। सुबह हुआ और बुड्ढे को गधे पर बैठे देखकर गाँव वाले अवाक् रह गए। किसी की कुछ समझ में न आया। किसी ने कहा बुड्ढे का दिमाग़ फिर गया है और किसी ने कुछ। बुड्ढे ने सभी की बातें सुनी और इसे अपनी परीक्षा जानकर वह मन ही मन मुस्कराया। आखिर बुड्ढे के लड़के को खबर लगी। उसने आकार जबरन अपने बाप को गधे की पीठ से उतारा और आँखों की पट्टियाँ खोलीं। तब बुड्ढे को होश आया और अपनी इस स्थिति को देखकर वह अत्यन्त शर्मिन्दा हुआ।

मैं भी उपस्थित हुआ और हाथ जोड़ कर, सर झुकाकर, मैंने मुखिया

से कहा—"नाराज होने की बात नहीं है मुखिया ! मैंने तुम्हारी ही इच्छा पूरी की है। तुमने मुझसे दिल्लगी करने को कहा था। उसी के लिए इतने सब झंझट करने पड़े हैं।"

सारे का सारा गाँव ताज्जुब में था और किशोर साहब यह मेरी आखरी दिल्लगी थी जिसके लिए उसी दिन से मुझे गाँव छोड़ना पड़ा।"

कहानी सुनकर किशोर को हँसी आई। कहानी पर भी और इस बे-सिर पैर की गप्प पर भी। फिर भी कहानी उसने दिलचस्पी के साथ ही सुनी। कहानी नानी की जादू की कहानियों की तरह ही कपोल कल्पित थी।

कहानी खत्म करके घटक ने कहा—"कहानी पर विश्वास नहीं हुआ शायद।"

जवाब में किशोर हँस पड़ा। घटक नें कहा—"किशोर बाबू इस लंबी-चौड़ी दुनियाँ में ऐसी बहुत सी घटनाएँ घट जाती हैं जिन पर हम सरलता से विश्वास नहीं कर पाते, फिर भी वे घटती हैं।"

किशोर नें फिर कोई उत्तर न दिया, वह हँस कर ही रह गया।

: २३ :

किशोर लौटा, नियम के अनुसार, काफी रात में ही। बल्कि और भी कुछ देर से। यों तो घटकदा को ही किशोर को देर तक बैठाने में कम दिलचस्पी न थी। उस पर गीता को वह जिस जोश में छोड़ गया था उससे जल्दी लौटने की इच्छा न हुई। इन कई दिनों में वह गीता की आदतों से अच्छी तरह वाकिफ हो गया था और उसे पूरी उम्मीद थी कि वह ऐसा कुछ कर बैठेगी कि जिससे अमला और उसे दोनों को

लज्जित होना पड़ेगा। इसलिए घटकदा के यहाँ से तो वह नियमानुसार ही निकला। क्योंकि गीता से भी ज्यादा घटकदा का डर था। घटकदा की पहली गाँजे की दम लग चुकी थी और उसके नशे को उन्होंने एक चंडूखाने की कहानी में समाप्त भी कर दिया था। इसके बाद वह जम्हाई पर जम्हाई लेने लगे, और दूसरी चिलम बनाने की कोशिश में लग गए। दूसरी चिलम लग जाने के माने थे और भी दो घंटा। इसलिए बीच ही में उसने घटकदा से आज्ञा माँगी और बाहर निकल आया। लेकिन इतनी जल्दी लौटने की हिम्मत न पड़ी। वह घर की विपरीत दिशा में गाँव के बाहर बड़ी पोखर की तरफ चला गया। पोखर गाँव से बिल्कुल बाहर थी। लम्बी चौड़ी पोखर के चारों किनारों पर ताड़ के बड़े-बड़े वृक्ष थे। रात चाँदनी थी। वह काफी देर तक उस के ऊँचे किनारों पर घूमता रहा।

इस पोखर के बारे में गाँव के लोगों में एकाधिक प्रकार की गल्पें हैं। किसी का कहना है कि इस पोखर को एक ही रात में किसी असुर ने अपने नाखूनों से खोदा था। और कोई-कोई, जो ज्यादा समझदार है, उस को कहते सुना है कि वे असुर और कोई न थे, अँगरेज थे। उस समय यहाँ के इलाके में नील की खेती होती थी और उस खेती के लिए यहाँ पानी का अभाव था। सिंचाई के लिए अंगरेजों ने यह पोखर बनवाई थी।

पिछली बात में कुछ सत्यता है और उस सत्यता के प्रमाणस्वरूप नील की खेती के सारे आवश्यक चिह्न भी आज तक यहाँ मौजूद हैं। टूटी-फूटी पक्की नालियाँ। छोटे-छोटे टैंक और उसके थोड़ी दूर पर ही गोरे व्यवसायी की भग्नावशेष कोठी। आस-पास के गाँवों में रात को इस तरफ विशेष कोई नहीं आता। प्रवाद है कि एक अंगरेज का प्रेत घोड़े पर चढ़कर पूरी रात इस कोठी के चक्कर लगाया करता है। गाँव वाले कसमें खा-खाकर इस प्रवाद की पुष्टि करते हैं। कोई कहता है कि उसने रात के सन्नाटे में घोड़े की टापों की स्पष्ट आवाज सुनी है। कोई कहता है कि मैंने अपनी आँखों से एक दिन उसके सफेद घोड़े को

पोखर के किनारे पर चरते देखा है और एक दिन सुधीर मछुए ने एक बड़ा दिलचस्प रोमांचकारी किस्सा गाँव वालों को सुनाया। उसने बताया कि एक दिन रात को वह पोखर से इलिश माछ (एक तरह की मछली) पकड़ने गया था। साथ में न तो टार्च ही थी और न लालटेन। तकदीर से मछलियाँ काफी तादाद में जाल में पड़ीं। बहुत रात तक वह नदी में रहा और जब आधी रात के पीछे घर की तरफ लौटा तो उसने लक्ष्य किया कि घोड़े की टापों की आवाज ठीक उसके पीछे-पीछे आ रही है। उसने हिम्मत की। माँ मनसा और काली का स्मरण किया और पीछे मुड़कर देखा। दूध के रंग से भी उजला उस अंगरेज का रंग था। उसकी लम्बी दाढ़ी पेट के नीचे तक लटक रही थी। जिस का रंग बत्तक के परों के समान सफेद था और वह सुधीर से गिड़-गिड़ाकर मछलियाँ माँग रहा था और सुधीर के दुर्गा-दुर्गा कहते ही वह न जाने कहाँ अदृश्य हो गया। इसके बाद उसने अपनी बाजू में बँधे ताबीज को दिखाकर गाँव वालों से कहा—"वह तो यह मेरे साथ था, नहीं तो न जाने क्या होता। यह ताबीज मैंने एक पंजाबी साधू बाबा से तीन रुपये में खरीदा था। उन तीन रुपयों ने जान बचादी।"

बात सुनकर गाँव वालों की आँखें भय और आतंक से खुली की खुली रह गईं। उनमें से जो कुछ समझदार लालबुझक्कड़ थे, उन्होंने उसकी बात पर विश्वास न किया। वे बोले—"झूँठ बात। तुमने सिर्फ टापों की आवाज ही सुनी होगी। देखा कुछ नहीं। दिखाई पड़ जाता तो गर्दन मरोड़ कर सारा खून पी जाता। वहाँ तुम्हारा ताबीज कुछ काम न देता। वह कोई हिन्दू प्रेत थोड़े ही था। मलेच्छ प्रेत था। मलेच्छ प्रेत पर हिन्दू मंत्र-तंत्र नहीं चलते। उनके लिए तो उन्हीं के मंत्र-तंत्र चाहिएँ। वे ही उन्हें रोक सकते हैं।"

सुधीर मछुआ लाल बुझक्कड़ों की बात से बिगड़ गया। बोला—"चलते कैसे नहीं। काली माई को सारे भू भारत (समस्त विश्व) के लोग मानते हैं। अंगरेजों की तो बात ही क्या?"

और इस बात पर दो मत हो गए। एकत्रित व्यक्तियों में से कुछ ने सुधीर का पक्ष लिया और कुछ ने विपक्ष का। सुधीर के पक्ष में एक बुजुर्ग था। जो पहले किसी शहर में नौकरी करता था। उसने वातावरण को शान्त करके बड़े इतमीनान के साथ कहा—"यह बात सुधीर की ठीक है। काली माई को अंगरेज भी मानते हैं। जब मैं शहर में रहता था तो वहाँ रेल की लाइन आई। नदी पर पुल बाँधने की जरूरत थी। नदी में कोठियाँ गलाईं, किन्तु सब पानी में बह गईं। बड़े-बड़े इंजीनियर आए लेकिन किसी की बुद्धि काम में न आई। अंगरेजों में घबड़ाहट फैल गई। सब काम रुका का रुका पड़ा रहा। आखिर में बड़े लाट साहब को काली माई ने सुपना दिया कि मेरी पूजा करो। बीस भैंसे, पचास बकरे और पाँच लड़कों की बलि दो। तब तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा। फौरन भैंसे और बकरे मँगवाए गए। गावों से पाँच लड़के चुराए और बलि दी गई। पूजा हुई परसाद बँटा। बस दूसरे ही दिन जो कोठी गलाई, वही गल गई। तब से अँगरेज बराबर कोई काम करने से पहले काली माई की पूजा करते हैं। बलि देते हैं। आज भी तुम सुनते नहीं कि फलाँ गाँव से लड़के चुरा ले गए। क्या होता है इन सब लड़कों का। दुनियाँ अपने बढ़ते हुए लड़कों से उकता रही है। इस मंहगाई के जमाने में उनके लिए खाना नहीं जुटा पा रही और यह लोग जो लड़के चुराकर ले जाते हैं, इनका दिमाग थोड़े ही सड़ गया है। इसीलिए ले जाते हैं।"

प्रमाण सहित इस अकाट्य युक्ति का और भला क्या उत्तर हो सकता था। सबके सब चुप खड़े रह गए। बुजुर्ग ने कहा—"यह मेरी आँखों देखी चीज है।"

बुजुर्ग महाशय की आँखों देखी इस घटना पर सभी ने निर्विरोध रूप से विश्वास कर लिया। किन्तु सुधीर से सब सहमत न थे। सुधीर के यह कहने पर भी नहीं—"बताओ और ये कहते हैं कि झूठ है।"

सुधीर की बात पर सबने विश्वास किया या नहीं। लेकिन एक बात

में सभी सहमत थे कि पोखर पर ऐसा कुछ है जरूर और तब से सुधीर की बातों पर विश्वास करने वाले और न करने वालों में से कोई भी वहाँ रात में जाने का साहस न करता। जगह एकान्त थी और सुन्दर थी।

किशोर बहुत देर तक उस पोखर के किनारे पर टहलता रहा। एक अस्पष्ट सी कविता का भाव उसके दिमाग में आया। उस भाव को बटोरकर शब्द-बद्ध करने की उसने कोशिश की और मन ही मन उसका प्रयास करते हुए वह घर की ओर लौटा। रात काफी हो गई थी। चारों तरफ शुभ्र ज्योत्सना दूर-दूर तक फैली थी। खेतों के धान कट चुके थे और धान के ठूँट अभी तक खेतों में थे। शीघ्रता और भावावेश में किशोर पैरों को जल्दी-जल्दी घर की ओर खींच रहा था। उस समय उसे कागज और पैन्सिल की जरूरत थी। इसलिए वह तीव्र गति से ही गाँव की ओर बढ़ा, लेकिन गाँव में घुसते ही सारे भाव उड़ गए। मानो वह स्वर्ग लोक में उड़ते-उड़ते कल्पना के ठोस धरातल पर उतर आया—जहाँ अमला है, वह है, गीता है, और उसकी बच्चों जैसी बातें।

गीता की फैसला कराने की बात उसे याद हो आई। उसकी गति में कुछ शिथिलता आ गई। लेकिन उसने सोचा कि गीता और अमला दोनों शायद अब तक सो गई हों। गीता ने कसम खाई थी कि आज वह फैसला कराके मानेगी। कम से कम अब आज की रात उसका डर नहीं। उसने अपनी पदचाप की आवाज कुछ कम की और घर के भीतर घुसा।

लेकिन उसका विचार गलत रहा। कोई सोया नहीं था और शीघ्रता से सोने के कोई लक्षण भी नहीं थे। नीचे के बरामदे में जिसे बंगाल में दुआर कहते हैं, ताश की बाजी जमी हुई थी। गीता थी, अमला थी और पड़ौस का चौदह-पन्द्रह साल का लड़का महेन्द्र था और एक और कोई था। उम्र शायद किशोर के ही बराबर हो। किन्तु स्वास्थ्य में, शक्ल सूरत में, किशोर से अच्छा। किशोर इसे नहीं जानता।

घोषाल उस दिन शेखर की बात कह रहे थे। शायद शेखर ही हो। लेकिन इसका निश्चय न था। निश्चय कुछ देर बाद हुआ। सबकी निगाह किशोर पर पड़ी। गीता ने कहा—"भय्या आ गए।"

उस युवक ने भी किशोर की ओर सरसरी निगाह से देखा। लेकिन अमला ने बिल्कुल उपेक्षित सा भाव धारण किया। मानो उसने न तो किशोर को ही देखा हो और न गीता की ही बात सुनी हो। और अगर देखा भी हो, बात भी सुनी हो तो उसके इस आगमन से खेल में उदासीनता लाकर उसकी तरफ देखने की कोई जरूरत नहीं। उसने उस युवक से पूछा—"काहे की तुरप है शेखर?"

और किशोर ने जान लिया कि यही शेखर है। शेखर ने कहा—"पान की।"

किशोर ने मानो किसी की तरफ देखा ही न हो। या यहाँ पर कोई मौजूद ही न हो। इस तरह का भाव दिखाते हुए वह ऊपर चढ़ गया। ऊपर के कमरे में जाकर उसने कपड़े उतारे। बत्ती तेज की और कापी पैन्सिल लेकर उसने कुछ लिखने की चेष्टा की। किन्तु कोशिश करने पर भी एक शब्द तक उसे याद न आया। नीचे तब भी खेल चल रहा था। कभी अमला की और कभी शेखर की अस्फुट आवाज ऊपर तक अच्छी तरह सुनाई पड़ रही थी—"तुरप काहे की है?"
"किसकी चाल है?" "यह गुलाम किसने मारा?" "नहला मेरा है?"

"हं हं। गन्दे हाथ मत लगाओ, यह हमारा हाथ है, लो उठाओ महेन्द्र" और किशोर कापी पर झुका हुआ उंगलियों में पेंसिल पकड़े बहुत देर तक उसी तरह बैठा रहा। उसकी सामने की कापी का कागज बिल्कुल कोरा था। उस पर अभी तक एक पेंसिल की लकीर तक न बन पाई थी। नीचे से आवाज आई थी—"लो फिर कोट। हम तीन कोट दे चुके शेखर। एक तुम पहनो, एक गीता पहने। एक जाड़ों के लिए उठाकर रख दो काम आयगा।"

यह आवाज अमला की थी। वह जोर से हँस रही थी। हँसी का ढंग

वही था। किशोर का बिलकुल परिचित। किन्तु उसे लग रहा था मानो किसी ने भट्टी के दहकते हुए कोयलों में से एक बड़ा सा कोयला निकाल कर धरती में दे मारा हो और उसकी चिनगारियाँ चारों ओर बिखर कर सबकी सब एक साथ किशोर के ऊपर जा गिरी हों। किशोर की साँस फूली हुई थी। आँखें गर्म और कनपटी के पास की दोनों शिराओं में फड़कन हो रही थी। शरीर के रक्त की गति में तीव्रता थी, पेंसिल उँगलियों में ही थी और कापी का कोरा कागज सामने। उनकी खेल की आवाजें बहुत देर तक आती रहीं। फिर धीरे-धीरे सब ने जम्हाइयाँ लीं। उनकी जम्हाइयों की आवाज रात के सन्नाटे में किशोर ने स्पष्ट सुनी। फिर शेखर की कड़ी आवाज सुनाई दी। वह कह रहा था—"बस, अब खत्म करो, रात बहुत हो गई।"

और अमला प्रतिवाद कर रही था—"सारी रात अपनी ही तो है। ऐसा क्या तुम्हें आफिस जाना है। एक हाथ और हो जाये।"

"आफिस नहीं जाना तो क्या सारी रात यहाँ खेल कर काट दूँ, सोना नहीं है क्या?"

अमला ने कहा—"अजीब हो तुम भी। तुम्हें अच्छा नहीं लगता। मेरा तो मन करता है कि सारी रात तुम्हारे पास बैठी रहूँ।"

और फिर उसने बात की निर्लज्जता को यह कहकर ढक दिया—"सारी रात तुम लोगों के साथ बैठकर खेलती रहूँ।"

पिछली बात धीमी आवाज में थी और पहली अस्फुट। शायद किशोर को सुनाने के लिये ही।

लेकिन किशोर ने दोनों बातें सुनीं और उसके शरीर के प्रवाहित रक्त की गति और भी तीव्र हो गई। ऊष्णता आ गई। वह कापी छोड़ कर उठ बैठा फिर कपड़े पहिने। उसकी इच्छा और थोड़ी देर बाहर घूम आने की हुई, लेकिन ठिठक गया। नीचे न उतर सका। उसने सोचा कि यह शायद ठीक नहीं रहेगा। अमला इससे खुश ही होगी और शेखर की आँखें भी जीत के गर्व से चमक उठेंगी। गीता को ठेस पहुँचेगी और

उसका यह आचरण व्यर्थ ही नहीं, उल्टा बैठेगा। वह कपड़े उतार कर तख्त पर लेट गया। नीचे अमला कह रही थी—"चलो शेखर अब तुम्हारी बारी है, तुम्हें हराकर मुझे एक सुख मिलता है।"

"और मुझसे हार कर।"

"उसमें भी एक मजा है।"

किशोर ने कानों में उँगली देकर बातों को न सुनने की कोशिश की। किन्तु हँसी की तीक्ष्णता। बातों की अस्फुटता को वह उंगली कान के पर्दों तक पहुँचने से न रोक सकी। उसने कई बार करवटें बदलीं। तख्त चर्र मर्र हुआ। सोने की कोशिश की। मन को प्रभावशून्य बनाने की कोशिश की लेकिन सब व्यर्थ रहा। उसने मन को समझाया, जब उससे मेरा कोई लगाव नहीं, कोई दिलचस्पी नहीं, तो मेरी ईर्ष्या का कोई हेतु नहीं है। फिर क्यों? किन्तु उसने अपने मन को जितना समझाया, मन उतना ही उल्टी दिशा में समझता गया और उसे महसूस हुआ कि वह लाचार है, मजबूर है। वह अमला को अपने मन से निकाल नहीं सकता। मानो किसी प्रबल अज्ञात शक्ति ने उसे उसके दिल में जमाकर बैठा दिया हो। जहाँ से अमला का निकलना तो दूर, हिलना-डुलना भी मुश्किल है। बस एक ही रास्ता है। वह यह मकान छोड़ दे, यह गाँव छोड़ दे, यह प्रदेश छोड़ दे, इसके अलावा कोई चारा नहीं, कोई रास्ता नहीं।

नीचे खेल समाप्त हो रहा था और अबकी बार शेखर के आग्रह पर अमला ने आज के खेल को स्थगित रखने की बात मान ली। किशोर के रक्त की तीव्र गति में कुछ शिथिलता सी आने लगी। शेखर और महेन्द्र जा रहे थे। अमला ने कहा—"सुनो शेखर!" शेखर लौटा और किशोर के रक्त की गति का वेग भी मानो फिर लौटा। उसने साँसें रोक कर अमला की बातें सुनने की कोशिश की। वह कह रही थी—"कल आओगे न?"

"जरूर!"

श्रौर शेखर चला गया। किशोर के रक्त की गति की तीव्रता अपनी ठीक चाल पर श्रा गई। इसके बाद गीता के कमरे की किवाड़ों के बन्द होने की श्रावाज हुई। फिर अमला की किवाड़ें श्रौर किशोर को भी थोड़ी देर बाद नींद श्रा गई।

: २४ :

दूसरे दिन वह घर पर ही रहा, मिल नहीं गया। लेकिन अमला घर न रही। उसे जाता न देखकर वह पड़ौस में बातें करने चली गई। गीता खाना खाने के लिए बुलाने गई, लेकिन उसने कह दिया कि वह इस समय कुछ भी न खायगी, पेट में दर्द है।

कल की उस फटकार के बाद गीता की जिद करने की हिम्मत न रही थी। वह लौट श्राई। किशोर खाने बैठा, उसका मुँह भारी था, श्राँखें कुछ फूली हुई थीं। गीता के मुँह पर भी कल का जोश श्रौर उत्साह न था। उसकी श्राकृति में भी उदासीनता थी। बहुत देर तक गीता कुछ भी न बोली श्रौर न किशोर ही। फिर थोड़ी देर बाद गीता ने पूछा—"कल तो बहुत रात से श्राए भय्या।" गीता की श्रावाज में ठंडापन था। किशोर ने कहा—"हाँ कल घटक के यहाँ से उठ कर जरा पोखर तक घूमने चला गया था।"

बात सुनकर गीता की श्राँखें खुली की खुली रह गईं। फिर उसने संभल कर पूछा—"कौन पोखर, गोरा पोखर ?"

"हाँ श्रौर कौन सी पोखर है यहाँ।"

"तुम वहाँ क्यों गए ?"

"यों ही घूमने निकल गया था।"

"साथ में कौन था ?"

"कोई नहीं।"

"अकेले ?"

"हाँ।"

"फिर।"

"फिर क्या ! कुछ नहीं, घूमकर चला आया।"

"और कुछ नहीं ?"

"और क्या ?"

"तुमने वहाँ कुछ देखा सुना ?"

गीता की बच्चों की सी उत्सुकता से किशोर का मन काफी हल्का हो गया था। बोला—"हाँ हां बहुत कुछ देखा।"

"क्या देखा ?" गीता की आवाज और मुद्रा दोनों में आतंक था। किशोर ने कहा—"पोखर, ताड़ के पेड़, टूटी कोठी, फूटी नालियाँ, टूटे-फूटे टैंक।"

"और।"

"और घास, चन्दा, खेत, तारे, आकाश, मिट्टी, जमीन।"

"और कुछ नहीं ?"

"और क्या ?"

"घोड़ा ?"

"नहीं।"

"गोरा प्रेत ?"

"नहीं।"

"तुमने माँ दुर्गा का नाम लिया होगा। काली माई की मानता की होगी।"

किशोर के मन में आया कि कह दे हनुमान चालीसा का पाठ किया था। किन्तु इस भोली-भाली बच्ची के से स्वभाव वाली लड़की को झूँठ बोलकर उसके मन में जरा भी भय वह न रखना चाहता था। बोला—

"नहीं मैंने किसी का भी नाम नहीं लिया। किसी की भी मानता नहीं की।"

"तो फिर।"

"तो फिर क्या ?"

"फिर कैसे तुम्हें कुछ नहीं दिखाई पड़ा ?"

"कुछ हो तब तो दिखाई पड़े।"

"गाँव वाले जो कहते हैं।"

"वे सब बेवकूफ हैं।"

"तो क्या यह सब झूठ है।"

"सोलहोंआने झूठ भी नहीं, थोड़ा बहुत सच भी है। उनकी बातों पर जो विश्वास करते हैं उन्हें सब कुछ दिखाई पड़ता है।"

"और जो नहीं करते ?"

"उन्हें कुछ नहीं दीखता।"

"क्यों ?"

"बात ऐसी है गीता······" और उसने गीता को कुछ मैस्मरेज़म और हिप्नोटिज्म की थ्योरी समझाने की कोशिश की। किन्तु उस अबोध बालिका की समझ में खाक न आया। इन जटिल बातों से उसके दिमाग का भय और भी जटिल हो गया, बोली—"तुम अब तो वहाँ कभी न जाओगे ?"

"क्यों ? क्यों न जाऊँगा ?"

"सब कहते हैं, वहाँ भूत रहते हैं।"

"तुम्हें अब तक क्या बता रहा था। भूत कुछ नहीं होते। वह मन का विकार है। आँखों का भ्रम मात्र है।"

"सब जो कहते हैं कि भूत हैं।"

"वे सब बेवकूफ हैं।" किशोर ने चिढ़ कर कहा।

गीता भी चिढ़ कर बोली—"सब बेवकूफ हैं इस दुनियाँ में। बस अकेले तुम्हीं अक्लमन्द हो।"

किशोर ने हँसते हुए कहा—"अक्लमंद की बात नहीं गीता ! वे सब लोग इस बात को जानते नहीं हैं।"

"तुम्हीं अकेले जानते हो। सारी दुनियाँ की बात झूँठ मान लूँ और तुम्हारी अकेले की सच।"

सच तो है। इस बहुमत के युग में, एक मत को इतना महत्व कैसे दिया जा सकता है।

किशोर के पास समझाने को कुछ न रह गया। उसने देख लिया है कि इस जिद्दी अजेय लड़की को लाख कोशिश करने पर भी नहीं समझाया जा सकता। बोला—"अच्छा ठीक है बाबा ! भूत होते हैं और खूब होते हैं। बस अब तो तुम जीतीं।"

"तो कहो कि आइन्दा कभी भी रात में वहाँ न जाओगे।" किशोर के पास इस समय उसकी बात स्वीकार करने के अलावा दूसरा चारा न था। बोला—"अच्छा नहीं जाऊँगा।"

"खाओ मेरी कसम।"

किशोर हँस पड़ा, बोला—"कसम मुझे कभी खाते देखा है ? मेरी बात को पत्थर की लकीर मानो।"

"हाँ हाँ क्यों न मानूँगी। कल भी तो तुम्हारी बात पत्थर की ही लीक थी। मुझ से कह दिया कि मैं नहीं जाऊँगा और जैसे ही मैं गई, चोर की तरह घर से बाहर भाग गए। मैं दीदी को लेकर जब लौटी तो देखूँ कि वहाँ तो भय्या की गन्ध भी नहीं है। आवाज दी, इधर-उधर देखा, लेकिन भय्या हों तो बोलें।"

किशोर के मन में एक बात जानने की इच्छा हुई। पूछा—"तुम्हारी दीदी ने क्या कहा ?"

"दीदी ने···" लेकिन आगे गीता न बोल सकी। चुप हो गई। किशोर ने देखा उसकी आँखें छलछला आईं। पूछा—"तुम रो क्यों रही हो ?" गीता ने कोई जवाब न दिया। कल जिस समय से अमला ने उसे डाँटा था, उसका मन इस समय तक हलका न हो पाया था। फिर भी

वह शाम को अमला के ही डर से ताश खेलने बैठी थी। रात को उसने किशोर को आते देखा था। खेल देख कर किशोर का उतरा हुआ चेहरा भी देखा था। अमला की उपेक्षा भी देखी थी। फिर भी उसने अमला की इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं किया। आँसू पोंछ कर गीता ने कहा—"भय्या न तो तुम और न मैं दीदी को हममें से कोई भी नहीं समझ सकता। वह कब किस पर ख़फ़ा हो जाती हैं और कब किस पर प्रसन्न इसका पता नहीं चलता। यही देखो न शेखर की बात। हमारे इस गाँव से मील भर दूर उसका गाँव है। वहाँ इसकी छोटी सी जमींदारी है। बचपन से ही आवारा घूमता है। शराब पीता है, जुआ यह खेलता है, कोई भी बुरी लत इससे बाकी नहीं है। बाप की जमींदारी को बेच-बेच कर अब इसने नाम मात्र को जमींदारी रखी है। ब्याह हुआ था, दो बच्चे भी हुए। दोनों बच्चों के साथ बहू को घर से निकाल कर मैके भेज दिया। अब अकेला रहता है। आवारा घूमता है। गाँव की और दूसरे गाँव की बहू बेटियों को ताकता फिरता है।

"इसका न जाने कहाँ से दीदी से परिचय हो गया। खूब आना-जाना बढ़ा। रात को बारह-बारह बजे तक दीदी के पास बैठ कर गप्पें लगाता। दिन में भी सारी दुपहरी यहीं बैठ कर ताश खेलता। इसके बाद बिना किसी कारण के अनबन हो गई। दीदी ने एक दिन ऐसी फटकार बताई कि आना जाना बन्द हो गया। मैं तो इसे पहले दिन देख कर ही जान गई थी कि यह आदमी भला आदमी नहीं है। लेकिन दीदी मेरी बात सुन कर हँस पड़ती थीं और कहती थीं कि तू अभी बच्ची है। तू क्या जाने ? ठीक है दीदी कहती हैं, बच्ची हूँ। तुम भी कहते हो बेवकूफ हूँ, बच्ची हूँ। सारा गाँव भी यही कहता है। लेकिन बच्ची होने पर भी आँखें तो मेरे भी हैं।

मैं इन आँखों से देखकर पहली नजर में ही बता सकती हूँ कि कौन आदमी कैसा है और आखिर मेरी बात ही सच हुई। जब इन दोनों में अनबन हो गई तो मैंने पूछा, "क्या बात है दीदी ? शेखर बाबू ने आना-

जाना क्यों छोड़ दिया।" तो बोलीं—"उसकी अब कोई जरूरत नहीं।" दीदी ने यह छिपा लिया कि 'वह आदमी ठीक नहीं है।' मैंने जब कहा कि मैं पहले ही जानती थी कि यह आदमी ठीक नहीं है। तो यह बात उनसे सहन नहीं हुई। नाराज होकर बोलीं—"तुम मेरी किसी बात में टाँग न अड़ाया करो।"

"ठीक है। न अड़ाया करूँगी टाँग। मैं बच्ची ठहरी, बेवकूफ ठहरी। सभी मुझे बेवकूफ कहते हैं मुँह से। मेरी बात कोई नहीं मानता। लेकिन जब मेरी बात सच होती है तो भीतर-भीतर सबको मेरी बात माननी पड़ती है।"

"हाँ तो ऐसी लड़ाई हुई कि शेखर से बातचीत तक बन्द हो गई। मैंने सोचा, चलो किस्सा कटा। क्योंकि शेखर और दीदी को लेकर गाँव वालों ने तरह तरह के किस्से गढ़ लिए थे, दूर-दूर तक बुराई फैल गई थी। यहाँ तक हुआ कि गाँव के पंचों ने पंचायत भी जोड़ी। उस पंचायत में तुम भी तो थे भय्या।"

किशोर ने छोटा सा उत्तर दिया—"हाँ"

"तो पंचायत से दीदी रौब के साथ घर लौट आईं। मैंने कहा—दीदी, अब कैसे होगा। गाँव वाले सब एक तरफ और हम दो औरतें एक तरफ। किस तरह इस गाँव में रहेंगे?" तो दीदी ने मुझे डाँट दिया, बोलीं—"मैं बड़ी हूँ, मुझे इस बात की फिक्र होनी चाहिए। तुम्हें इसके लिए सर दर्द क्यों है?" डाँट खाकर मैं रो पड़ी, तो दीदी ने मुझे समझाया बुझाया कि कोई चिन्ता मत करो। सब ठीक हो जायगा। मैंने रोते-रोते कहा—"वैसे भी तो यह ठीक नहीं दीदी! वह पर पुरुष है, और तुम विवाहित स्त्री। पाप का भी तो डर है।" तो क्या बोलीं जानते हो भय्या। बोलीं—"पहले पाप में ही जितना पुण्य है उसे समेट लूँ।"

लेकिन यह सिर्फ उनकी कहने की बात थी भय्या! मैं जानती हूँ और अच्छी तरह जानती हूँ कि दीदी गंगाजल के समान पवित्र हैं। कोई भी

बुरे से बुरा आदमी उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। सिर्फ एक दोष है उनमें। वे औरतों में कम बैठती हैं, पुरुषों का साथ उन्हें ज्यादा अच्छा लगता है और जितनी अच्छाइयाँ उनमें हैं उन्हें छिपा कर बुरा दिखाने की कोशिश करती हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि वह ऐसा क्यों करती हैं? कई बार पूछा तो कहा कि बताऊँगी, समय आने पर बताऊँगी। उस समय की इन्तजारी करते-करते मैं तो थक गई। यही लो न वे दूसरों को दिखाती फिरती हैं कि वे जरा भी नहीं पढ़ीं। लेकिन जानते हो भय्या वे कितनी पढ़ी हैं?"

किशोर ने सिर हिला कर बताया कि नहीं जानता। गीता ने कहा—"उनकी अलमारी देखना कभी खोलकर। कितनी किताबें उसमें भरी पड़ी हैं। सभी अंग्रेजी की। कोई एकाध बंगला की होगी। मैं अलमारी खोलकर किताबें निकालती हूँ। फिर सँभाल कर रखती हूँ। दीदी मुझे बताती जाती हैं। बताते-बताते उनकी कितनी ही किताबों के नाम मुझे याद हो गए हैं, सुनाऊँ तुम्हें। वे कहती हैं टालटाय (टालसटाय) की किताब इधर रखो, ऐमी जोला की इधर, बनाडशा (बर्नाडशा) की इधर। चेखब की किताब क्यों उसमें घुसेड़ दी, उसे हटाओ। चार्ल्स डिकिन्स और भी न जाने कितने नाम हैं।"

यों तो गीता की शुरू से लेकर सारी बातों में ताज्जुब ही ताज्जुब भरा था। लेकिन इस बात से तो किशोर के आश्चर्य की सीमा न रही। उसके विस्फरित नेत्र खुले के खुले रह गए। पूछा—"वे अंग्रेजी पढ़ी हैं?"

"लो सुनो! मैं अब तक तुम्हें क्या बता रही थी।"

"ऐसा भी हो सकता है कि वे किताबें उनके पिता की या उनके पति की किसी की हों।"

"नहीं, उन्हीं की हैं! उन्हीं की। मेरे सामने कलकत्ते चिट्ठी लिख कर किताबें मँगवाती हैं। पार्सल आता है, गाँव के आदमी पूछते हैं

क्या है ? तो कहती हैं दवाइयाँ हैं, या साड़ियाँ हैं। बस मैं जानती हूँ या वे।"

"वे उन किताबों को पढ़ती हैं ?"

गीता कुछ झुँझला उठी, बोली—"पढ़ती नहीं तो क्या अचार डालती हैं। पूरी-पूरी रात किवाड़ बन्द करके पढ़ती हैं।"

"उन्होंने अंग्रेजी कहाँ सीखी ?"

"वे काफी पढ़ी लिखी हैं। उनके पिता बहुत बड़े डाक्टर थे। उन्होंने अमला दीदी को पढ़ाने लिखाने में काफी रुपया खर्च किया। शुरू-शुरू में उसे क्या कहते हैं, अंग्रेजी स्कूल, जहाँ सिर्फ अंग्रेजी से ही पढ़ाई की शुरूआत होती है। का···अरे हां कान ऐंठ (कॉन्वेन्ट) से जूनी कैम्ब्री (जूनियर केम्ब्रिज) की परीक्षा पास की। इसके बाद कालिज में पढ़ीं। वे ही सब मुझे बताया करती हैं। नहीं तो मैं क्या जानूँ। इन सबके नाम ?"

आश्चर्य पर आश्चर्य ! किशोर की आश्चर्य से पागल होने की तैयारी सी होने लगी। इस बात को वह कभी दिमाग से सोच भी नहीं सकता था। गीता की बातें उसे ऐसी लगने लगीं कि मानो कोई पागल बक रही हो और अगर वह इतने लेखकों के नाम, स्कूल और परीक्षाओं के नाम न सुनाती तो शायद वह विश्वास भी न करता। इन बातों के अलावा विश्वास का कोई प्रमाण भी तो नहीं था। शिक्षा समाप्त हो जाती है लेकिन अपनी एक अमिट छाप आकृति पर छोड़ जाती है। इसका लेश तक किशोर ने अमला के चेहरे पर नहीं देखा। रूप है, सिर्फ रूप। शिक्षा और ज्ञान से रंचमात्र अप्रभावित रूप। अमला कुछ पढ़ी-लिखी है, साथ-साथ तार्किक भी। इसे किशोर ने शुरू-शुरू में ही मान लिया था। लेकिन वह इतनी पढ़ी है, साथ-साथ साहित्य-अध्ययन का उसे इतना शौक है, यह बात उसके विश्वास की सीमा से बाहर की थी। फिर भी गीता की बातों ने उसे विश्वास करने को बाध्य कर दिया और विश्वास करते ही अमला की विचित्र बातें

ग्रौर उसके ग्राश्चर्यजनक ग्राचरण की जड़ उसके हाथ में ग्रा गई। गीता ने कहा—"हाँ तो शेखर की बात सुना रही थी भय्या। शेखर का ग्राना जाना बन्द हुग्रा, बातचीत बन्द हुई। मैं खुश हुई, सन्तोष की साँस ली। लेकिन मैंने तुमसे कहा न कि मालूम नहीं पड़ता कि दीदी कब किस पर प्रसन्न होती हैं, ग्रौर कब किस पर ग्रप्रसन्न। ग्रब कोई बात तो नहीं थी। सारा किस्सा टूट चुका था। कल शाम को न जाने क्या हुग्रा शेखर को फिर बुला भेजा। गुस्सा हुईं मेरे ऊपर ग्रौर खुश हुईं उस कमबख्त के ऊपर।"

"जब मैंने कहा कि तुम भय्या से क्यों नहीं बोलतीं। मैं ग्राज फैसला कराके ही मानूँगी। तो मेरे ऊपर बुरी तरह बिगड़ गईं ग्रौर फिर बाहर जाकर महेन्द्र को भेज दिया उस मुँहजले को लिवाने। बेहया कहीं का। खबर पाते ही सर पर पैर रख कर दौड़ा चला ग्राया। ग्राते ही उसने पूछा—'कैसे बुलाया?' दीदी ने कहा—"यों ही ताश खेलने को।" दीदी ने मुझसे खेलने को कहा। इच्छा न थी कि उस ग्रावारा के साथ खेलूँ। लेकिन दीदी नाराज होतीं। इसी से मन मार कर मुझे भी खेलने बैठना पड़ा। मगर दीदी का उसके ऊपर ग्राकस्मिक ग्रनुराग समझ में नहीं ग्राया।"

किशोर चपचाप सुन रहा था। गीता की इतनी लम्बी चौड़ी कहानी ग्रौर उसके शब्द शेष होने को ग्रा गए ग्रौर उसके साथ-साथ जोश ग्रौर ग्रावेश भी। न जाने किस ग्रावेश में ग्राकर ही वह ग्रपनी दीदी के सम्बन्ध की सारी जानकारी किशोर को सुनाने बैठ गई थी। लेकिन बात समाप्त होते ही उसका उत्साह ठंडा पड़ गया। दीदी सुन लेंगी तो क्या कहेंगी? यह डर हुग्रा ग्रौर यह बात वह ग्रबोध बालिका सी गीता किशोर से कहे बिना भी न रह सकी। बोली—"भय्या! लेकिन मुझसे गल्ती हुई। दीदी की सारी बातें मुझे तुम्हें न बतानी थीं। वे सुनेंगी तो गुस्सा होंगी। तुम उनसे कहना मत, क्योंकि किसी को भी उनके बारे में कुछ न बताने का उनका कड़ा ग्रादेश है।"

"नहीं, मैं उनसे कुछ न कहूँगा।" किशोर ने कहा। लेकिन उसके दिल में एक बात और जानने की इच्छा हुई। पूछा—"गीता मैं तुम्हारे भोलेपन का नाजायज फायदा उठाना नहीं चाहता। फिर भी बहन के नाते तुम से एक बात और पूछना चाहूँगा।"

गीता ने प्रश्नसूचक दृष्टि से किशोर की तरफ देखा। किशोर ने पूछा—"तुम्हारी दीदी अपने पति के यहाँ क्यों नहीं जातीं ?"

"तुम विश्वास न करोगे भय्या। लेकिन मैं तुमसे सच कहती हूँ कि इस बारे में मैं जरा भी नहीं जानती। मैंने कई बार दीदी से पूछा भी, लेकिन हर बार उन्होंने यही उत्तर दिया कि समय आने पर बतायेंगीं।"

किशोर ने फिर कुछ नहीं पूछा। अब तक वह थाली पर ही बैठा था। उठ कर हाथ पोंछने चला गया और ऊपर आकर इस विचित्र नारी अमला के विषय में बहुत देर तक सोचता रहा। लेकिन एक रहस्यमय अंधकार आच्छादित प्रदेश के समान वह उसके बारे में जितना सोचता गया, समस्या उतनी ही जटिल हो गई। बहुत कोशिश करने पर भी इस उलझी हुई गाँठ की एक भी गुत्थी वह न सुलझा सका।

शाम हुई, उसने खाना खाया और घटक के आश्रम की ओर चल पड़ा। दरवाजे पर ही अमला से मुठभेड़ होती गई। दोनों की आँखें मिलीं और किशोर ने देखा कि उसकी आँखों के कोनों में एक स्पष्ट सी मुस्कान का भाव है और अधरों पर एक व्यंग्यात्मक मुद्रा का आभास। किशोर बचकर बाहर निकल गया और थोड़ी दूर जाकर उसनें अमला की अस्फुट ध्वनि की हँसी सुनी। अकारण ही हँसने वाली वह नारी हँस रही थी। जैसे कि ऊँची पहाड़ी से झरने वाला कोई झरना नीचे की चट्टान पर एक मधुर शब्द उत्पन्न कर रहा हो। वह रुका नहीं। सीधा घटकदा के यहाँ पहुँचा।

: २५ :

घटक के आश्रम पर पहुँच कर किशोर ने देखा कि आज घटकदा बिल्कुल अकेले नहीं हैं। एक और चश्मा विभूषित आकृति वहाँ अड्डा जमाए हुए हैं। किशोर को देखते ही घटक ने चिल्ला कर कहा—"स्वागतम। सुस्वागतम।" इसके बाद बैठें हुए भले आदमी का परिचय देते हुए घटक ने कहा—"कभी कलकत्ते में ये मेरे छात्र रहे थे। लेकिन ज्यादा नहीं। मुश्किल से दो महीने ही ट्यूशन पढ़ा पाया होऊँगा कि भागना पड़ा। यह उसी समय की बात है किशोर जब घटक घुमक्कड़ जीवन व्यतीत कर रहा था।" बात कहते-कहते घटक हँसे फिर बोले—"इनका नाम है विनयकृष्ण चौधरी। इसी गाँव में इनकी ससुराल है। आज अचानक ही इनसे मुलाकात हो गई।"

इसके बाद घटक विनय की ओर मुड़े। किशोर का पूरा परिचय बताकर आखिर में उन्होंने कहा—"साथ-साथ एक बात और सुनो विनय! हमारे किशोर बाबू कवि भी हैं।"

बात सुन कर किशोर कुछ संकुचित सा हो उठा। विनय बाबू ने किशोर से पूछा—"किस तरह की कविताएँ लिखते हैं आप?"

कविताओं के बारे में आज तक उससे किसी ने प्रश्न न किया था। उसका संकोच और भी बढ़ गया। फिर भी उत्तर तो देना ही था, बोला—"जो दिल में आता है। वही अपनी आत्म-तुष्टि के लिए लिख डालता हूँ।"

विनयबाबू ने कहा—"आप सरीखे युवकों से हम प्रगतिवादी साहित्य की उम्मीद करते हैं।"

किशोर ने कोई जवाब न दिया। लेकिन घटक हँस पड़ा। बोला—"किशोर बाबू! प्रगतिवादी साहित्य से आप मतलब समझे?"

श्रौर फिर किशोर के जवाब की अपेक्षा किए बिना ही घटक ने कहा—"प्रगति शब्द आजकल एक विशेष भावार्थ में ही प्रयोग किया जाता है।"

विनय बाबू ने कहा—"और उसी अर्थ विशेष की ही तो आज मानव को आवश्यकता है। आज साहित्य से मानव को चाँद की मुस्कराहट, तारों की झिलमिलाहट, झरनों का कलरव और कोकिल का संगीत सुनने की आवश्यकता नहीं। आज तो वह रोटी का संगीत सुनना चाहता है। आज तो वह उदर की ज्वाला से पीड़ित है। आज वह जीवित रहना चाहता है।"

घटक ने कहा—"लेकिन विनय बाबू ! जितनी मानव को रोटी की आवश्यकता है, उतनी ही उसे उन चीजों की भी आवश्यकता है जिन्हें तुम व्यर्थ मानते हो। तुम तो हजारों वर्ष के मानव की उन्नति के इतिहास को ही मिटा देना चाहते हो। हजारों वर्ष पूर्व मानव के सम्मुख एक ही सवाल था। वह था रोटी। वह थी उदर की ज्वाला। वह आज भी है। किन्तु आज उसके साथ-साथ और भी कुछ उसने सीखा है और भी कुछ उसने जाना है। आज रोटी के साथ-साथ वह और कुछ जरूरतें महसूस करता है और भी कुछ चाहता है। मानव, मानव है, पशु नहीं। पशु सिर्फ पेट भर कर रह सकता है। उसे न कला की आवश्यकता होती है, न संगीत की। लेकिन मानव जहाँ रोटी खाकर जीवित रहना चाहता है, वहाँ इन चीजों की भी उसे आवश्यकता है। उसके कान किसी मधुर ध्वनि को सुनने के लिए लालायित हैं। आँखें किसी सुन्दर वस्तु को देखना चाहती हैं। हृदय कुछ पाने को आकुल है। सिर्फ रोटी पा जाने से ही तो उसकी सारी कामनायें नहीं मिट जातीं। सिर्फ रोटी खाकर मानव जीवित नहीं रह सकता। जीवित रहना पसन्द भी नहीं कर सकता। मानव को जिन्दा रहने के लिए जीवन से एक लगाव होना चाहिए। एक प्ररणा होनी चाहिए। मोह होना चाहिए और वह मोह, वह लगाव, वह प्रेरणा उन्हीं चीजों से मिलती हैं जो आपने पहले गिनाईं।"

विनय बाबू ने कहा—"लेकिन घटक साहब जीवन से मोह, जीवन से लगाव से भी पहले आदमी को जरूरत होती है रोटी की। आप जानते हैं जब मानव पहले पहल एक शिशु के रूप में इस दुनिया में आता है तो उसे सबसे पहिले आवश्यकता होती है आहार की।"

घटक ने कहा—"और वह शिशुपन जब समाप्त हो जाता है और वह ज्ञान में प्रवेश करता है तो आहार के साथ-साथ उसके और भी बहुत कुछ प्रयोजन होते हैं।"

विनय बाबू ने फौरन ही कहा—"किन्तु बहुत कुछ प्रयोजन वह तभी अनुभव करता है। जब आहार की चिन्ता से वह मुक्त हो जाता है। तो घटक साहब आज मानव पेट की ज्वाला से पीड़ित हैं। उदर की क्षुधा से चिन्तित है। इसलिए आज मानव को साहित्य से प्रेयसी के विरह-गीतों की आवश्यकता नहीं। आज तो उसे मज़दूरों के दल का गीत सुनना चाहिए। जिस साहित्य में मजदूर और किसानों की कथा नहीं, वह साहित्य ही नहीं है।"

घटक मुस्कराए, बोले—"विनय बाबू! वे मज़दूर और वे किसान तुम्हारे उन गीतों को न पढ़ेंगे। दिन रात रोटी की फिक्र में रहने वाले वे मज़दूर और किसान भी अपने अवकाश के वक्त लैला-मजनू और तोता-मैना के किस्सों को पढ़कर ही अपना कुछ देर का मनोविनोद करते हैं, जो चीज उनके रात दिन की चिन्ता की बीज है वह उनका मनोविनोद नहीं कर सकती। मनोविनोद के लिए ऐसी किसी चीज की आवश्यकता है जो उनकी रात-दिन की चिन्ता से दूर हो, भिन्न हो। कुदाल लेकर जो दिन-रात पसीना बहाते हैं उन्हें कुदाल का गीत पसन्द न आयेगा विनय। उससे सिर्फ मनोविनोद उनका होगा जो कुदाल नहीं चलाते। किन्तु कुदाल चलाने वालों को किसी दूसरे संगीत की आवश्यकता है। जो उन में स्फूर्ति दे, जीवन दे, उत्साह और उल्लास दे। जो उनके परिश्रम से क्लान्त शरीर और मन को कुछ क्षणों के लिए किसी अज्ञात भावना में डुबोकर इस वास्तविक धरातल से उठाकर आकाश में उड़ने के लिए

छोड़ दे। वास्तविकता तो बड़ी शुष्क है विनय, बड़ी नीरस है। उसे मानव ने कल्पना और भावुकता के रंग में रंग कर सरस और सुन्दर बनाया है।"

विनय बाबू ने अपने ओष्ठ कुंचित कर लिए बोले—"घटक साहब जिस वास्तविकता की आदमी को जरूरत है आप उस वास्तविकता की उपेक्षा करके कल्पना की कोरी उड़ान भरने को कहते हैं। कवि और लेखकों की लेखनी को एक अवास्तविकता में डुबोकर दुनियाँ के साहित्य में निकम्मापन लाना चाहते हैं। जो साहित्य आदमी के कष्टों का वर्णन नहीं कर पाता, जो साहित्य पीड़ित मानव समाज के लिए आँसू नहीं बहाता, वह साहित्य कूड़ा है घटक साहब! आज के साहित्य को कोरी कल्पना की आवश्यकता नहीं, भावुकता की आवश्यकता नहीं, आज तो वह वास्तविकता चाहता है।"

घटक हँसे, बोले—"लेकिन वास्तविकता की परिभाषा क्या है विनय! अगर ये प्रेम-गीत, यह प्रेम-कथाएँ, मानव की वास्तविक प्यास न होतीं, वास्तविक इच्छाएँ न होतीं तो उन्हें पढ़कर मन पर कोई प्रभाव ही न पड़ता। जो अवास्तविक है, जो मिथ्या है, वह तो कोई मूल्य ही नहीं रखता। लेकिन विनय तुम देखते हो उन विरह-गीतों को पढ़कर, उन प्रेम-कथाओं को पढ़कर अनेक आदमियों की आँखें भीग उठती हैं, उनके आँसू टपकने लगते हैं। वह दिल में एक कसक अनुभव करता है। एक वेदना अनुभव करता है और रही बात भावुकता और कल्पना की, तो व्यक्ति जब समष्टि में मिलता है उस समय उसे इन दो चीजों की आवश्यकता होती है। और अगर ये दो चीजें मिल जाती हैं तो व्यक्ति के सामने केवल रह जाता है वह और उसका शरीर और उसका अपना दुख-सुख। लेकिन भावुकता ही उसे दूसरों के प्रति दया कर्त्तव्य और प्रेम करने का पाठ पढ़ाती है। विनय तुम वास्तविकता की जो परिभाषा कर रहे हो वह भी उतनी ही आवश्यक है जितनी भावुकता। उसके नष्ट होने पर रह ही क्या जाता है, खाना-पीना, सोना और

ऐसी ही कुछ चीजें। भावुकता ही तो मानव को जड़ से चेतन बनाती है।"

विनय ने कहा—"फिर भी घटक साहब ! आज का साहित्य जिन निकम्मे प्रेम-गीतों और विरह के आँसुओं से भर गया है, उससे मानव समाज आज ऊब गया है। प्रेम का संगीत और सिर्फ प्रेमी-प्रेमिकाओं की कथा पढ़ते-पढ़ते आज के मानव के कान पक गए हैं। वह ऊब उठा है। अत्यंत ऊब उठा है। इस एक ही प्रलाप से। इस एक ही बकवास से।"

घटक इस बात को सुनकर भी मुस्कराये। बोले—"ऊबने की बात तो ऐसी है विनय कि आज सभी साहित्यिक मिलकर अगर तुम्हारी इस रोटी-समस्या पर कलम चलाना शुरू कर दें तो कुछ दिन में मानव इस से भी ऊब जायगा और प्रेम-कहानियों से उतनी जल्दी नहीं ऊबा जितनी जल्दी इन से ऊब उठेगा। क्योंकि प्रेम-कहानियों में भावुकता है, कल्पना है और तुम्हारे इन रोटी के गीतों में सिर्फ वास्तविकता। रोटी आदमी को जीवित रख सकती है विनय ! किन्तु उसका संगीत प्राणों में आवेग नहीं दे सकता। क्योंकि उनमें वास्तविकता है विनय और वास्तविकता नग्न है, कुरुप है। मैं यह नहीं कहता कि वह प्रयोजनीय नहीं है। लेकिन प्रयोजनीय होने पर भी वह मनोविनोद नहीं कर सकती।"

विनय के चेहरे पर घृणा का भाव प्रस्फुटित हो उठा।

बोला—"किन्तु कितना वाहियात ढंग है आपके मनोविनोद का, कितनी गन्दी रीति है आपके मनोविनोद की। कितना असभ्य है आप का वह साहित्य जो सिर्फ नारी और पुरुष के प्रेम-प्रलापों से भरा पड़ा है। जो सिर्फ नारी को रमणी की दृष्टि से ही देखकर उसे अपमानित करता है, नारी को सिर्फ कामिनी के रूप में ही सजाकर दुनियाँ के सामने पेश करता है। आज का साहित्य भूल जाता है कि वह जननी भी है, वह माँ भी है। वह सृष्टि भी करती है।"

घटक ने कहा—"किन्तु विनय। नारी में माँ और जननी की सत्यता भी जितनी है, उसका रमणी और कामिनी रूप भी उतना ही सत्य है। नारी माँ बनकर बाद में पुरुष को जन्म देती है पहले वह रमणी बनकर, कामिनी बनकर मानव को तृप्त करती है। इसे तुम नारी का अपमान किस तरह कहते हो। किसी के सत्य स्वरूप और गुण को उस के रूप में देखना तो अपमान नहीं विनय, सम्मान है। अगर साहित्यिक नारी को रमणी, कामिनी और माँ तथा जननी का रूप न देकर और कोई रूप देता है तो उसे अपमान कहा जा सकता है विनय! नारी का रमणी और कामिनी रूप ही तो एक ऐसा रूप है जो पुरुष के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अत्यन्त प्रयोजनीय है। यह नारी ही है विनय जो उसे प्रेम सिखाती है। जो मन में आवेग देती है। प्राणों में पिपासा देती है और मानव को जीवित रहने की प्रेरणा देती है।"

विनय ने कहा—"लेकिन नारी के सिर्फ इस रूप को ही सुन्दर ढंग से सजाकर उस साहित्य से मानव को क्या फायदा मिलता है। पीड़ित मानव-समाज शोषित जन-समुदाय उससे क्या लाभ हासिल करता है। घटक साहब साहित्य का उद्देश्य लोक-हित होना चाहिए। उसका आशय कल्याणकारी होना चाहिए।"

घटक ने कहा—"लेकिन लोकहित और कल्याण की एक बँधी हुई परिभाषा नहीं है विनय! कम से कम जिस सीमित परिभाषा से तुम्हारा आशय है वह सिर्फ वहीं तक सीमित नहीं है। लोकहित और कल्याण के तो अनेक रूप हैं। अनेक आकृतियाँ हैं जो लोग सिर्फ रोटी पा लेना ही लोकहित समझते हैं मैं उनसे पूर्ण सहमत नहीं हूँ। रोटी और वस्त्र से भी मानव के लिए एक बड़ी चीज है और वह है मानसिक शान्ति, मानसिक आमोद। रोटी बिना खाये मनुष्य दस दिन में मरता है। किन्तु अशान्ति अथवा जीवन के प्रति विराग उत्पन्न होने पर वह तत्क्षण आत्महत्या करनें पर उतारू हो जाता है विनय! लोकहित और कल्याण में रोटी जितनी ही आवश्यक है, वस्त्र जितना आवश्यक

है, मानसिक आमोद और मानसिक शान्ति की भी उतनी ही आवश्यकता है। यों तो आँख-कान फोड़ कर, हाथ पैर काटकर भी रोटी खाकर जीवित रहा जा सकता है। लेकिन विनय इस तरह के जीवित रहने को मनुष्य कुत्ते के जीवन के समान मानेगा। हाथ-पैर आँख नाक कान को अगर उसने रोटी-उपार्जन के लिए पाया है तो उनका एक आनन्द उपयोग करने को भी पाया है। शरीर की इन्द्रियाँ अगर उसे दैनिक जीवन-यापन करने में सहायता देती हैं तो दैनिक उपभोग और आनन्द की उपलब्धि भी वही इन्द्रियाँ कराती हैं। तो विनय लोकहित और कल्याण की परिभाषा सिर्फ रोटी और वस्त्र ही नहीं है। उसमें मानव की मानसिक शांति, उसका आमोद-प्रमोद सब कुछ आ जाता है। क्योंकि उनके बिना मानव उसी तरह जीवित नहीं रह सकता, जिस तरह रोटी के बिना।"

दोनों का वाक्युद्ध चल रहा था और शायद कुछ देर और भी चलता। लेकिन बीच में एक बाधा आ पड़ी। बाधा आई विनय बाबू के श्वसुर के रूप में। हाथ में लालटैन लिए लाठी से रास्ता टटोलते वे आश्रम पर आ गए। बोले—"विनय बहुत रात कर दी, खाना ठंडा हुआ जा रहा है। चलो, घर चलो।"

वाक्-युद्ध थम गया और विनय बाबू नमस्कार करके उठकर चले गए। लेकिन चलते-चलते उन्होंने किशोर से कहा—"किशोर बाबू आप कवि हैं। राष्ट्र के निर्माण में आपका बहुत बड़ा हाथ है। इसे न भूलिये अतः और कुछ न सही आपका साहित्य आदर्शवादी अवश्य हो।"

विनय के चले जाने के बाद घटक पेट भर कर हँसे। फिर किशोर से बोले—"विनय बाबू ने जो कुछ तुम्हें चलते वक्त उपदेश दिया है मैं उसके विरुद्ध बोलूँगा किशोर। कुछ लोग आज इसी नारे को लगाते हैं। वे कहते हैं कविताएँ आदर्शवादी हों। कहानियों के पात्रों का चरित्र आदर्शवादी हो। लेकिन मैं इसे अच्छा नहीं समझता कि मानव की एकाधिक कमजोरियों का चित्र खींचने वाला साहित्यिक उन कमजोरियों को छुपाकर आदर्शवाद की ओट ले। आदर्शवाद की ओट लेने से उसके

पक्षपातियों की साहित्य पढ़ते-पढ़ते छाती फूल सकती है। उनके मुखमंडल पर गौरव की प्रसन्नता झलक सकती है और साथ साथ साहित्यिक की कलम को भी सराहना मिल सकती है, किन्तु विश्व को मानव की अनेक प्रकार की कमजोरियों का परिचय न मिल पायेगा। क्योंकि आदर्शवादियों का कल्पित मानव पुष्ट है, सबल है, निर्दोष है। किन्तु दुनियाँ का वास्तविक मानव साहित्यिकों का कल्पित मानव नहीं, वह कमजोर भी है और सबल भी। इसलिए किशोर आदर्शवाद के आवरण के नीचे मानव के मर्मस्थल को छुपाने की तुम कोशिश मत करना। तुम उस मर्मस्थल का स्पष्ट चित्र खींचकर रख देना किशोर और विश्व को दिखा देना कि उस मर्मस्थल में कितने आघातों के चिन्ह हैं। कितनी तप्त उच्छ्वासें हैं। कितना भीगापन है। कितनी सरलता है, कितनी आकुलता है। किशोर तुम लिखो, हम सरीखे अभागों के लिए जिन्हें जीवन में कभी भी प्यार न मिल सका, जिन्हें कोई अपनी ललित बाहुओं के बंधन में न बाँध सका, जो किसी के कुन्तलों की सुवास अपने फेफड़ों में न भर सके, जो किसी के गात्र की स्वाभाविक सौरभ से अपने को परिचित न कर सके। जिनके लिए किसी ने अपनी माँग में सिन्दूर न भरा। जिनके जीवन की दीर्घता के लिए किसी ने ईश्वर से प्रार्थना नहीं की और मरने के बाद जिनके लिए दो आँसू बहाने वाला भी कोई इस विशाल संसार में न होगा। किशोर तुम लिखो हम अभागों के लिए।"

घटकदा का गाँजे का नशा क्रमशः तीव्र हो उठा। भावुकता के आवेश से उनके कपोल सुर्ख हो उठे, आँखें मादक हो उठीं।

किशोर ने उठते हुए कहा—"अब चलता हूँ घटकदा।"

"इतनी जल्दी।"

"हाँ आज कुछ शरीर और मन दोनों अस्वस्थ हैं।"

घटक अपने पहले आवेश से मुक्त न हो पाया था। अन्यमनस्क अवस्था में ही उसने कहा—"अच्छा लेकिन कल जल्दी आना।"

घटकदा के यहाँ से निकल कर उसके पैर बरबस पोखर की ओर पड़ गए। आज गीता से बचने की जरूरत न थी और लोगों के ताश के खेल के लिए भी आज उसने मन को पक्का कर लिया था। वह हँसें, चिल्लाएँ, नाचें-कूदें उसे क्या।

फिर भी पोखर पर एकान्त में थोड़ी देर घूमने का लोभ वह संवरण न कर सका। आकाश पर आज हल्का-सा मेघ था, इसलिए पानी पर कभी मेघ की छाया पड़ती थी तो कभी चन्द्रमा की ज्योत्सना। ताड़ के पेड़ों के पत्ते हवा के झोंको से हिल रहे थे। पोखर का बहुत दिन का पुराना काला पानी भी अपेक्षाकृत चंचल था।

वह पोखर के किनारे घूमते-घूमते नालियों के सहारे टैंक के पास जा खड़ा हुआ। पक्की ईंटों से बना वह छोटा सा टैंक अब सिर्फ एक अवशेष मात्र था। बहुत देर तक वहाँ खड़े रह कर उसके मन में एक भावुकता की सृष्टि हुई।

एक दिन शायद देशी और विदेशी अनेक मजदूर यहाँ काम करते होंगे। काम करते-करते वे यहाँ गाते होंगे, हँसते होंगे, आनन्द में आकर नाचते होंगे और कभी-कभी साहब के कोड़ों की मार से रोते होंगे, चिल्लाते होंगे। मजदूरों का वह दैनिक जीवन उसकी आँखों के सामने सजीव सा हो उठा और फिर उसने व्यवसायी अंग्रेज की कोठी की तरफ आँखें दौड़ाईं। गोरों के अतीत का रंगमहल देखकर उसने सोचा, यहाँ वह अंग्रेज रहता होगा या अगर अधिक संख्या में होंगे तो रहते होंगे, उनकी गोरी मेमों का चित्र उसके दिमाग में खिंच गया। नीली आँखें, भूरे बाल, सुर्ख कपोल वाली वे मेमें यहाँ रात-दिन घूमती होंगी। उनके शरीर पर लगे लवंडर की खुशबू उनके गात्र की स्वाभा-

विक सौरभ से मिलकर इस स्थान को सुरभित करती होगी। उनके पतले-पतले गुलाबी अधर कृत्रिम रंग से और भी सुन्दर बन कर न जाने दिन-रात में कितनी बार खिलते-मुंदते होंगे। दुग्ध सी श्वेत उनकी दंत-पंक्तियों की चमक को आज भी यहाँ का वातावरण न भूल पाया होगा। असंख्य चुम्बनों की मधुर-ध्वनि आज भी यहाँ के वातावरण को याद होगी। कितनी ही गर्म और ठंडी साँसों का पूरा-पूरा हिसाब आज भी यहाँ के वातारण में अंकित होगा। कितनी कलियाँ यहाँ चटकी होंगी, कितने फूल मुरझाए होंगे। कितने बसन्तों ने गीत गाए होंगे। कितने पतझड़ों ने रुदन किया होगा, कितने उल्लास और विलास ने यहाँ नृत्य किया होगा, कितनें अश्रुओं की यहाँ माला गूँथी गई होगी। कितनों का यहाँ उदय हुआ होगा और कितनों का अवसान।

आकाश का खंडित चक्र बादलों में से निकल आया था और उसका प्रतिबिम्ब पोखर के काले पानी पर पड़ रहा था। घंटों तक किशोर अपने को भूल कर बेसुध सा वहाँ खड़ा रहा। व्यवसायी अंग्रेज का हास्य-रुदन मिश्रित अतीत अनेक रंगों में रंग कर उसके सामने सजीव हो उठा। इसके बाद उसे होश आया। कल्पना और भावुकता के बीच में वास्तविकता का उदय हुआ, वर्तमान का उदय हुआ और वह घर की ओर लौटा।

पूरे का पूरा गाँव सोया हुआ था। किन्तु अमला की ताश की बैठक जमी हुई थी। इसका आभास दूर से ही उनके उल्लासमय कलरव से उसे मिल गया। किशोर बाहर ही ठिठक कर कुछ देर खड़ा रह गया। शाम को उसने सोचा था कि वे हँसे-नाचें गायें, उसे क्या मतलब। लेकिन उस समय का वह सोचना उसी समय के लिए था। वह वर्तमान में स्थायी न रह सका। शाम को किशोर ने अपने मन को जितना पक्का कर लिया था उतनी ही दुर्बलता का आक्रमण इस समय उसके ऊपर हुआ। उसने सोचा कि वह अन्दर नहीं जा सकता। और कुछ नहीं उनके इस उल्लास और आनन्द का कलरव उसके कान सहन नहीं कर सकते।

लेकिन सहन तो करना ही पड़ेगा। घटक के यहाँ दुबारा जाना कुछ अच्छा नहीं जचेगा और दुबारा पोखर पर लौटने की भी अब उसकी इच्छा नहीं थी। मन का अत्यन्त दमन करके ही वह अन्दर घुसा और वह भाव उसकी आकृति पर स्पष्ट हुए बिना भी न रह सका। उपस्थित सभी ने वह भाव लक्ष्य कर लिया। अमला हँस पड़ी। हर समय हँसने वाली उसकी वह हँसी किशोर को ऐसी लगी मानो खौलते हुए तेल के किसी कढ़ाव में एक ईंट फेंक दी गई हो और खौलते हुए तेल के कुछ छींटें किशोर के शरीर पर जा गिरे हों।

उसकी भौंहों में बल पड़ गया और वह जल्दी-जल्दी सीढ़ी पर चढ़ने लगा। अमला ने गीता से धीमी आवाज में कहा—"बुलाओ न, एक हाथ खेल कर दिखायें कैसा खेलते हैं।"

गीता ने पूछा—"भय्या ताश खेलोगे ?"

बिना रुके ही किशोर ने जवाब दिया—"नहीं।"

अबकी बार शेखर बोला—"अरे आइए न बाबू साहब ! देखिए आज ये दोनों एक होकर मुझे और महेन्द्र को हराए डाल रही हैं। आप आ जायें तो इन्हें दिखा दूँ कि खेल किसे कहते हैं।"

किशोर ने उसकी बात का कोई उत्तर न दिया। सीधा ऊपर चढ़ गया। शेखर ने चिढ़ कर ओंठ को विकृत बना कर अपनी झेंप मिटानी चाही। गीता को बुरा लगा, लेकिन अमला हँस पड़ी। गीता को वह हँसी भी अच्छी न लगी। लेकिन स्पष्ट रूप से यह बात न कह सकी, बोली—"मैं अब नहीं खेलूँगी दीदी !"

"क्यों ?"

"मेरे सर में दर्द है।"

शेखर ने कहा—"अरे बैठो भी गीता और एकाध हाथ हो जाय। आज तो रात भी ज्यादा नहीं हुई।"

लेकिन गीता ने शेखर की बात का कोई उत्तर न दिया। वह हाथ

के ताश फेंक कर उठ खड़ी हुई और अपेक्षाकृत शीघ्र गति से अपने कमरे में चली गई।

शेखर कुछ न समझ सका, लेकिन अमला से समझना बाकी न रहा। शेखर ने कहा—"तीन जनों में तो खेल हो नहीं सकता।"

अमला ने संक्षेप में उत्तर दिया—"नहीं।"

शेखर ने पूछा—"तो फिर।"

अमला ने कहा—"खत्म करो।"

"तो मैं जाऊँ।"

"हाँ।"

शेखर चला गया। अमला ने गीता से किवाड़ खुलवा कर पछा—"सर में दर्द है?"

"नहीं।"

"तो फिर खेलीं क्यों नहीं?"

"यों ही।"

अमला ने फिर कुछ न पूछा। वह भी अपने कमरे में चली गई।

दूसरे दिन जब शाम को किशोर घर से निकलने को हुआ तो गीता ने रोक कर कहा—"भय्या आज तुम्हें कहीं बाहर न जाने दूँगी।"

सुन कर किशोर कुछ डर गया। उसने सोचा आज फिर गीता को समझौता कराने की याद हो आई है। पूछा—"क्यों?"

"आज हमारे गाँव में कीर्तन हो रहा है। तुम सुनने चलना।"

किशोर ने कहा—"नहीं, कीर्तन-वीर्तन मैं नहीं सुनूँगा। मुझे घूम आने दो।"

गीता ने बिगड़ कर कहा—"अच्छे आदमी हो तुम तो। कीर्तन नहीं सुनोगे? वहाँ चण्डूखाने में बैठ कर गप-शप करोगे।"

और थोड़े से वाद-विवाद के पश्चात् किशोर को कीर्तन सुनने के लिए राजी होना ही पड़ा।

बंगाल में नगर-नगर और गाँव-गाँव में कीर्तन का रिवाज़ है। उसे वहाँ कहते हैं अष्टम प्रहर और चौबीस प्रहर कीर्तन। अष्टम प्रहर कीर्तन एक दिन और एक रात का होता है और चौबीस प्रहर तीन दिन और तीन रात का। शुरू में बंगाल में शाक्त मत का ही विशेष प्रचार था। लेकिन चैतन्य ने जन्म लेकर शाक्त मत के ऊपर वैष्णवता का प्रलेप कर दिया। तभी से यह कीर्तन की प्रथा यहाँ शुरू हुई है। छोटे-छोटे गाँवों में यही एक मेला सा होता है। छोटे-छोटे सौदागर सौन्दर्य-प्रसाधनों की छोटी-छोटी दुकानें लाते हैं। इसके साथ-साथ रहती हैं हलवाइयों की दुकान। बेसन की पकौड़ी, पापड़, दाल, सेव से लेकर रसगुल्ला, गुलाब जामुन सभी इन दुकानों में रहता है।

पूरे दिन भर नाम संकीर्तन होता है और रात को होता है किसी उस्ताद गायक के द्वारा कृष्ण लीलामृत, वैष्णव भक्तों के द्वारा रचित पदावली। जिसके कई विभाग हैं। मानभंजन, नौकाविलास, माखन-चोरी इत्यादि। श्रीनगर गाँव में साल में एक बार कीर्तन का आयोजन होता है। इस बार भी हुआ। दूर-दूर से कीर्तन करने वाले पेशेवर वैष्णव आए और साथ-साथ आस-पास के दर्शकों ने भी अच्छी-खासी भीड़ कर दी।

किशोर को बैठने के लिए अच्छी जगह भी मिल गई। सामने औरतों के बैठने की व्यवस्था थी। अमला और गीता औरतों के बीच में जा बैठीं।

किशोर ने देखा उसके बगल में ही शेखर बैठा है। शेखर ने जेब से सिग्रेट का पैकेट निकाल कर किशोर की ओर बढ़ा दिया। किशोर ने गम्भीर मुद्रा में कहा—"धन्यवाद ! मैं सिग्रेट नहीं पीता।"

और वह वहाँ से जरा दूर हट कर कीर्तन सुनने लगा। उस्ताद गायक के अगल-बगल दो खोल बजाने वालों ने संगत शुरू की। "धा किट किट धा···धिमाओ धिमाओ श्रीकृष्ण धिमाओ···धा किट किट धा···।"

बहुत देर तक खोल से आवाज निकलने के बाद खोल की आवाज अपेक्षाकृत शान्त हो गई और गायक ने दोनों हाथ उठाकर नौका-विलास लीला शुरू की—"ओगो बराई ओई की घाटेर नैये ।

ओजे रजत काँचने नौखानी शोभत,
बाजिछे किंकिनी जाले ।"

किशोर ने सामने बैठी अमला की ओर देखा । उसकी आँखें एक-टक होकर शेखर की तरफ लगी हुई हैं । उसकी शिराओं, उपशिराओं में प्रवाहित रक्त मानो तेजी से दौड़ने लगा । साँस में उष्णता आ गई । कनपटी के पास की दोनों शिराएँ फड़कने लगीं ।

लेकिन वह उधर से ध्यान हटा कर गाने वालों का गीत सुनने लगा—"ओजे हाँसिते हाँसिते गीत अलापिछे ।
घुराइछे राँगा आँखी ।
आबार चापाइया नैयकी जानी की चाम ।
उहारे चंचल देखी ।
ओगो । आमरा कहिबो कंसेरी जुगान मुखेना हेरियो केहू ।
दास जगन्नाथे भौने शशी सोलहों कला पैले ग्रसिते की छाड़िबे राहू ।
ओजे राहूरमत बाहू पौसारे रौयेछे ।

संगत वालों ने एक साथ मिलकर गाया—"ओजे राहूरमत बाहू पौसारे रौयेछे ।"

श्रोताओं ने दाद दी—"आच्छा ! आच्छा । बेश । बेश ।"

किशोर की निगाह फिर उधर पहुँच गई । पैट्रोमैक्स के हंडे के प्रकाश में अमला की दोनों आँखें शेखर के चेहरे पर बिल्कुल स्थिर होकर देख रही हैं । पलक मारने की भी मानो फुरसत न हो ।

किशोर ने कनखियों से शेखर की ओर देखा । उसके ओंठ मुस्करा रहे थे । उसके कान तक गर्म हो गए । उसने फिर गायक की ओर ध्यान दिया—"आर सखी के पार कौरिते लीबो आनी आना । श्रीमती

के पार कौंदिते लीबो कानेर सौना। काने सोना जे आछे। ओजे बृन्दावनेर धनरि धनी। काने सोनाजे आछे।"

खोल बजाने वालों ने कविता की शेष पंक्तियों पर त्वरित गति से खोल बजाया और उछल-उछल कर उन्होंने संगत की—"काने सोनाजे आछे।"

किशोर की आँखें फिर वहाँ पहुँच गईं। अमला की आँखें बिजली के दो छोटे बल्बों की तरह मानो चमक रही हों। फिर उसने सुनना शुरू किया "आठाना दीनो हरी। पार करौ तराय करी।

टाना टानी राखो ना···।"

संगत वालों ने संगत की—"राधा गोबिन्द बोलो।"

गायक ने कहा—"नौ माना दीबो हरी। पार करौ तराय करी।"

संगत वालों ने एक साथ मिलकर गाया—"जय राधा गोबिन्द बोलो राधे।"

गायक ने गाया—"ओगो। सत्य, कलि, द्वापर, त्रेता, चार युग दो घाटे आछी। नमा नाईं। नमा नाईं। पुरानौ आछी।"

संगत वालों ने कमर मटका कर कहा—"जय राधा गोबिन्द बोलो राधे।"

गायक ने तर्जनी उँगली को ऊपर उठा कर शरीर को किंचित बंकिम करते हुए गाया—"दीते हैं। इबे सोल हो आना। एक आना तार कौम बेना। एक टूकू तार कौन बेना। दीते हैं बे सोल हो आना। आमार घाटे जौदि पार हौबी मौन दीते हौबे सोल हो आना। एक टूकू तार कौन बेना···।"

लेकिन इस रसिकता पूर्ण वैष्णव पदावली में किशोर का मन टिक नहीं पा रहा। अमला की वह शेखर के ऊपर स्थिर दृष्टि इतनी दूर बैठे-बैठे ही उसके अंग-प्रत्यंगों को मानो झुलसाए डाल रही हो।

गायक ने आवाज़ और भी तेज कर दी—"ओगो को थाम राखी दधि दुग्ध को थाम राखी या। जीर्ण तोरी टी देखे भोए काँपेगा।"

"ओगो देवता गन्धर्व जौ तौ पर कौरेछी कौतौ शत। युवती यौवन कौतो भार।"

एक बार अमला ने किशोर को देखा और वह ज़रा से हल्के बे मालूम ढंग से हँस पड़ी। मानो किशोर का उपहास कर रही हो। किशोर को बैठना मुश्किल हो गया। वह तेजी से उठा।

शेखर ने कहा—"बैठिए महाशय, अभी से कहाँ चल दिए ?"

किशोर ने कोई जवाब न दिया। वह तेजी से घर की तरफ चल दिया। वैष्णव गायक की आवाज अभी तक उसके कानों में आ रही थी—"हैसे-हैसे धीरे-धीरे। जीर्ण तरणीर परे आँचले धरिया जाय हरी। सखागन देखे रंग आनन्द दे ते दे ही भंग। राई कान रोहे एक पासे। काम कलह बाद। घूचिलो मौनेरट शाद। हर्षित.........!"

घर पहुँच कर किशोर ने देखा बाहर के दरवाजे पर ताला लटक रहा है। वह बरामदे में रखा छोटा सा मूढ़ा लेकर बैठ गया। थोड़ी देर बाद अमला आई। वह अकेली थी। उसकी साड़ी में लगे हुए सेन्ट की मँहक सारे वातावरण में फैल गई। हँस कर उसने कहा—"इतनी जल्दी भाग आए।"

किशोर ने कोई जवाब नहीं दिया। अमला न ताला खाल दिया। किशोर जल्दी-जल्दी अपने कमरे में जाकर पलँग पर लेट गया। पीछे-पीछे वह भी आई। लालटेन की बत्ती को तेज करके बोली—"क्यों जी ! मैं इस साड़ी में कैसी लग रही हूँ ?"

किशोर ने कोई जवाब न दिया। अमला ने पूछा—"बताओ न, कैसी लग रही हूँ ?"

किशोर ने मुँह और भी गम्भीर बना लिया। अमला फिर हसी। ताम्बूल-रंजित अधरों के बीच में उसकी परिष्कार दंत-पंक्ति चमक उठी। अब की बार किशोर के हाथ को अपने हाथ में पकड़ कर पूछा—"बताओ न, कैसी लगती हूँ ?"

किशोर ने हाथ झिड़क कर कहा—"मेरे सामने से हट जाओ। मैं तुम्हें घृणा करता हूँ।"

अमला हँसी। एक मीठी और मधुर हँसी। फिर बोली–"चलो प्रेम न सही, घृणा ही सही। कुछ न कुछ तुम मुझ से करते तो हो। मैं सुन कर खुश हुई। तुम मेरे बारे में उदासीन नहीं हो। घृणा के रूप में ही सही, लेकिन मैं तुम्हारे हृदय में पूरी जगह घेर कर बैठी हूँ।"

किशोर ने कुछ न कहा। गुस्से से उसके भवों में बल पड़ गए। अमला कुछ देर तक खड़ी रही। फिर बोली—"तुमने गाना क्यों नहीं सुना ?"

किशोर ने कहा—"यहाँ से जाओ। मुझे आराम करने दो!"

"मैं पूछ रही हूँ गाना क्यों नहीं सुना ?"

"अच्छा नहीं लगा, इसी से नहीं सुना।"

"झूँठी बात। सच बात क्यों नहीं कहते, मैंने नहीं सुनने दिया। तुम्हें शेखर से ईर्ष्या है न!"

और फिर वह हँसी। हँस कर बोली—"जलो, खूब जलो। मैं चाहती हूँ तुम खूब जलो।"

किशोर ने कहा—"यहाँ से जाओ मुझे, आराम करने दो।"

अमला ने कहा—"मैं नहीं जाती। यहीं रहूँगी तुम्हारे पास। सारी रात बैठकर तुम्हारी ईर्ष्या की गर्म साँसों को गिनूँगी।"

किशोर ने गुस्सा होकर कहा—"जाओ यहाँ से। नहीं तो मैं इस घर से चला जाऊँगा, इस गाँव से चला जाऊँगा, इस प्रदेश से चला जाऊँगा!"

अमला हँस पड़ी और हँसते-हँसते वह नीचे उतर गई।

तख्त पर लेट कर किशोर ने सोने की कोशिश की। लेकिन नींद नहीं आई। बाहर की तरफ के जंगले के पास खड़े होकर वह देखने लगा। वहाँ पोखर के किनारे बड़ के पेड़ों के नीचे साँथालों की आठ दस झोंपड़ियाँ हैं। झोंपड़ियाँ नहीं, ताड़ के पत्तों से घेर-घार कर किसी तरह सर छुपाने का स्थान है। यह लोग दिन भर मिट्टी काटते हैं। रात को पोचुई मद (भात को सड़ाकर बनाई हुई शराब) पीते हैं और बाँस की लाठी के समान अपने हाथ से बनाई हुई बंशी बजाते हैं। नृत्य करते हैं। गायन करते हैं।

यह साँथाल उन अनार्य जातियों की सन्तान हैं जिन्हें हराकर किसी दिन आर्य जाति ने इस प्रदेश में आर्यावर्त्त की नींव जमाई। आज तक इनमें कोई परिवर्तन नहीं आया। अपने पूर्व पुरुषों की सभ्यता और संस्कृति को यह आज तक एक प्रिय वस्तु के समान जकड़े हुए हैं।

बिना विटामिन और टॉनिकों के या बिना किसी प्रकार के सीमित व्यायाम के इनके शरीर हृष्ट-पुष्ट हैं। चौड़ी छातियाँ हैं, तगड़ी भुजाएँ। तू के सिवाय यह तुम या आप कहकर 'लाट साहिब' से भी नहीं बोलते। साँप मेंढ़क गोह कोई भी विषैले से विषैला जन्तु इनके उदरस्थ होने से नहीं बचा। इनकी प्रवृत्ति क्रूर है, हिंसक है। लेकिन दृष्टि सरल है। नीयत के यह ईमानदार हैं। कभी चोरी नहीं करते। डाका नहीं डालते। नर-हत्या नहीं करते। फिर भी शरीर बर्बरों के समान कठोर है। आकृति भयंकर है। लेकिन बर्बरों के समान भयंकर आकृति वाले इन वीर पुरुषों की सारी शक्ति इनकी कामिनियों के कोमल हाथों में रहती है। नारी मात्र को ये लोग कामिनी कहकर पुकारते हैं। संस्कृत के काम शब्द से शायद कामिनी की उत्पत्ति है।

इनकी औरतों को देख कर कामिनी शब्द की सार्थकता प्रमाणित हो जाती है। बाह्यिक सौन्दर्य-प्रसाधनों से अपने को सुशोभित करने की हवा इनके पास नहीं पहुँच पाई है। यह अपने अन्दर ही पूर्ण हैं। स्थूलाँगी इन औरतों के उरोज पुष्ट हैं। प्रथु नितम्ब हैं। उन पुष्ट उरोजों को यह चुस्त चोली या कड़ी बौडी के आवरण में नहीं ढँकतीं। आँचल के अन्दर से उन्हें स्पष्ट झाँकने देती हैं और इस तरह से अपने पुरुषों की ललचाई दृष्टि को बाहर झाँकने का अवकाश न देकर अपने तक ही रखती हैं। इन कामिनियों की आँखों में सम्भ्रान्तता या शिष्टता का आभास नहीं है। वहाँ एक सरलता है। एक निर्बोध बालिका की सी सरलता। कविता की तरह गूढ़ रहस्य में डूबी हुई उनकी आँखें नहीं हैं। वहाँ सब कुछ स्पष्ट है, सरल है। सब कुछ परिष्कार है परिच्छन्न है। लेकिन इनकी देह में, चाल में उन्मत्तता है, जवानी है और जीवन है और है एक चुनौती; सारे विश्व को अपने एक विशिष्ट सौन्दर्य के विपक्ष में चुनौती। चमड़ी गोरी नहीं है, काली है। किन्तु काली जामुन की तरह चमकदार। उसी की तरह सुडौल, उसीकी तरह मिठासयुक्त।

अपने सुन्दर सामान्य घुँघराले केशों में जब यह लाल गुड़हल का फूल लगा लेती हैं तो और भी आकर्षक हो उठती हैं यह कामिनी। सारे दिन परिश्रम करके रात में बहुत देर तक इनका गायन नृत्य चलता है। इन कामिनीयों की आवाज सुरीली है, काली कोयल की भाँति ही सुरीली। उसमें जीवन है। व्यथा नहीं, कसक नहीं, आनन्द है, मधुरता है और मादकता है। ठीक पकी हुई जामुन के आस्वाद के समान।

किशोर रोज ही उनके इस गायन और नृत्य को देखता है। चन्द्रमा की छिटकी हुई चाँदनी के शुभ्र प्रकाश में उनका वह नृत्य उसे अत्यन्त मोहता। काश वह उनके इन संगीत के शब्दों को समझ पाता। कितना मनमोहक लगता है। वह सोचता है, काश वह भी उनमें से एक होता। जंगले पर खड़ा होकर वह उसी विचार में डूब गया। धीरे-धीरे रात बढ़ गई। नृत्य थम गया। गायन रुक गया। बह बर्बर आकृति वाले वीर

पुरुष पुष्ट उरोजों वाली अपनी कामिनियों को चौड़े वृक्षस्थल में छुपाकर सो गए। खुले आकाश के नीचे। ऊपर रहा नीला आकाश और ईर्ष्या क सी सता मलिन चाँद।

किशोर फिर तख्त पर आ लेटा। सोने की कोशिश की। लेकिन नींद नहीं आई। वह बहुत देर तक बिस्तरे पर तड़पता रहा। छटपटाता रहा।

उसने इस प्रदेश में आकर भूल की है। इस गाँव में आकर भूल की है। इस घर में आकर भूल की है। बहुत देर तक इतनी सारी भूलों की बातें सोचता रहा। बहुत देर तक अमला की तीखी हँसी उसके कानों में ग ंजती रही। साँथालों के नृत्य को देखने का तो एक बहाना भर था और उस बहाने में वह अपने को थोड़ी देर के लिए ही डुबा सका, लेकिन ज्यों ही वह थोड़ी देर समाप्त हुई, उसकी ईर्ष्या फिर लौट आई। उसकी जलन फिर लौट आई। अमला ने कहा था—"जलो खूब जलो। म चाहती हूँ तुम खूब जलो।" अमला की बात की सत्यता उसने इस समय अनुभव की। इसके बाद नींद बुलाने की वह व्यर्थ कोशिशें करता रहा। अपने मस्तिष्क को विचार-शून्य करके उसने सोने की कोशिश की, लेकिन विचारों को जितनी जोर से धक्का देकर वह हटाना चाहता है, गद की तरह आघात पाकर वह उतन ही वेग से लौट आते हैं। वह झुंझलाता है। अपने पर खीझ पड़ता है। लम्बे-लम्बे शुष्क बालों को मुट्ठी में भर कर खींच डालता है। 'क्यों नहीं आती नींद।' वह सोचता है। करवटें बदलता है। तकिए को उलट-पुलट करता है। शरीर की स्थिति को एकाधिक प्रकार से बदलता है। लेकिन इससे लाभ कुछ भी नहीं हुआ। विपरीत ही हुआ। झुंझला कर उसने तख्त छोड़ दिया। सीढ़ियों से नीचे उतरा।

आँगन में अब भी म्लान चाँदनी छिटकी हुई है। वह धीरे-धीरे टहलने लगा। सब कुछ शान्त है। सब कुछ स्तब्ध। लेकिन आँगन के एक कोने में लगाई हुई रजनीगंधा अब भी जाग्रत है। वह हल्की-हल्की

निश्वास के द्वारा अपनी सौरभ धीमी-धीमी वायु में संचारित कर रही है। किशोर ने अपने फेफड़ों में अच्छी तरह उस सुगन्ध-युक्त वायु को भर लिया।

पूरे का पूरा गाँव एक क्लान्त श्रमिक की भाँति खर्राटे ले रहा है। कीर्त्तन के स्वर न जाने कब के वातावरण में खो चुके हैं। सब कुछ शांत है, नीरव है। बाहर इमली के पेड़ पर बैठा हुआ उल्लू या ऐसा कोई पक्षी बीच-बीच में कर्कश आवाज से शान्त वायुमण्डल को फाड़े दे रहा है।

अमला शायद अभी तक सोई न थी। या शायद नींद उचट गई हो। किवाड़ खोल कर बाहर निकल आई। पास आकर बोली—"मैंने कहा था न, नींद नहीं आयेगी तुम्हें !"

और वह हँस पड़ी। चाँद की शुभ्र ज्योत्स्ना की ही तरह उसकी हँसी का मधुर शब्द समूचे वातावरण में फैल गया। कुछ देर चुप रह कर अमला ने पूछा—"सोए क्यों नहीं अभी तक ?"

"नींद नहीं आई !"

"टहलने से नींद कभी आती है। सोओ नींद बुलाने की कोशिश करो।"

किशोर मन ही मन हँसा—"बुलाने की कोशिश करने से ही क्या कोई आ जाती है।" लेकिन मुँह से वह इस बात को न कह सका। बोला—"घण्टों से कोशिश ही तो कर रहा था !"

"क्यों नहीं आती नींद ?"

जवाब में किशोर ऐसे ढंग से हँसा जिसका मतलब हो कि इसका कारण तुम खुद अच्छी तरह जानती हो।

अमला ने पूछा—"जवाब नहीं दे रहे। हँस रहे हो।"

"जवाब नहीं है। इसीलिए हँस रहा हूँ !"

चन्द्रमा की म्लान चाँदनी में दोनों की नजरें एक क्षण के लिए मिलीं, फिर अमला ने कहा—"आओ, ऊपर आओ।"

और हाथ बढ़ाकर अमला ने उसके हाथ को अपने हाथ में पकड़ लिया। दुर्बल किशोर ने किसी तरह का प्रतिवाद न किया। किसी तरह का विरोध न किया। उसकी पकड़ाई में आते ही सारा अतीत मानो वातावरण में खो गया। भविष्य एक कोरी कल्पना बन कर रह गया। वर्तमान ही सिर्फ एक नया संगीत लेकर उसके सामने आ उपस्थित हुआ। जिसकी ताल-ताल पर वह नाच उठा। झूम उठा।

उसके हाथ को पकड़े ही अमला ऊपर की सीढ़ियों पर चढ़ने लगी और वह मन्त्रमुग्ध होकर उसके पीछे-पीछे चल दिया। ऊपर आकर किशोर को तख्त पर लेटने को कह कर वह उसके सिराहने बैठ कर उसके सूखे बालों में उँगलियाँ फेरने लगी। बोली—"अब नींद आ जायगी तुम्हें।"

किशर ने इसके बायें हाथ को अपनी मुट्ठियों में भर लिया और इतने दिनों का दोष, इतने दिनों का क्षोभ आकस्मिक भाव से अतीत को भुला कर आँखों की राह निकल पड़ा। सामने की खूँटी पर लालटेन अभी तक जल रही थी। उसी के प्रकाश में देखकर अमला ने कहा—"रो रहे हो।"

चतुरता का तकाजा था कहता—"नहीं।" और फिर उपन्यास के नायक की तरह अपने चेहरे को यथासम्भव गम्भीर और वेदनायुक्त करके कहता—"रोने के अलावा चारा ही क्या है। तुम्हारे ऊपर अधिकार ही क्या है मेरा।"

लेकिन दुर्बल किशोर कुछ नहीं कह सका। उसने उसके बायें हाथ को और भी कस कर पकड़ लिया। आँखों के आँसू उसके चेहरे के दोनों तरफ को बह गए।

अमला ने कहा—"विचित्र हो तुम। औरतों से भी ज्यादा कच्चा दिल है तुम्हारा।"

और उसने अपनी नर्म हथेलियों से किशोर के आँसू पोंछ दिए। वह उसी तरह उसके बालों में उँगली चलाती रही। फिर जरा देर चुप रह कर बोली—"एक बात बताओगे?"

किशोर ने धीमी आवाज में कहा—"पूछो।"

"तुम मुझ से क्या चाहते हो ?"

किशोर ने कोई उत्तर न दिया। अमला ने कहा—"बताओ ?"

वह फिर भी चुप रहा। अमला ने कहा—"क्या पूछ रही हूँ मैं ?"

इस बार किशोर ने उत्तर दिया—"क्या तुम्हारा प्रश्न उत्तर की जरूरत महसूस करता है ?"

"मेरा प्रश्न ही क्यों किशोर, दुनियाँ के सभी प्रश्न उत्तर की जरूरत महसूस करते हैं।"

"नहीं। कम से कम वह प्रश्न उत्तर की जरूरत महसूस नहीं करते, जिनके साथ उत्तर की जानकारी भी अच्छी तरह होती है।"

"तो तुम्हारा ख्याल है कि अपने प्रश्न का उत्तर मैं जानती हूँ।"

"ख्याल ही नहीं विश्वास है।"

बात मानो उपहास्यात्मक हो। सुनकर अमला हँस पड़ी। जैसे किसी शान्त सरोवर के स्थिर जल पर बेमालूम ढंग से किसी ने हस्त संचालन कर दिया हो।

इसके बाद अमला गम्भीर हो गई। अत्यंत गम्भीर। मानो यह अकारण ही हँसने वाली अमला न हो। फिर एक लम्बी साँस खींचकर बोली—"किशोर। खिलौने मुझे पसन्द हैं। खेलने के लिए कई खिलौने लिए। उनसे खूब खेली। निर्जीव खिलौनों की खेलने की सामग्री कभी भी नहीं बनी, किन्तु इस बार मुझे लगता है कि मैं ठगी गई। तुम्हें खिलौना समझने में मैंने गलती कर दी। तुम वह हँसाने वाले खिलौने नहीं जो तुम्हारी विचित्र अंग-भंगिमा देखकर हँसा जा सके। रुलाने वाले खिलौने हो। खुद भी रोते हो और दूसरों को भी रोने का प्रोत्साहन देते हो। जीवन में मेरी यह सबसे बड़ी गलती हुई किशोर······"

लेकिन बात समाप्त होते न होते गाँव में कुछ शोर-गुल सुनाई पड़ा। बहुत से कंठों की सम्मिलित बातें। किशोर और अमला दोनों ही नीचे उतर आए। बाहर आकर मालूम हुआ कि पगली ने गाँव के एक बबूल

के पेड़ से रस्सी बाँधकर अपने गले में फाँसी लगाली। पगली को सारे गाँव के आदमी जानते थे। किशोर ने भी दो एक बार आधी रात के सन्नाटे में पगली की चीख-पुकार सुनी थी। वह आधी रात के वक्त प्रायः चिल्लाया करती थी—"बचाओ। अरे कोई बचाओ।"

शुरु-शुरु में किशोर धोखे में आ गया था। किन्तु बाद में पगली की वह आवाज़ रोज मर्रा की चीख हो गई।

आज उसी पगली ने आत्महत्या कर ली। सारे गाँव में शोर-गुल था। औरतें हाय-हाय कर रहीं थीं। मर्द बहुत सा शोर मचा रहे थे। पूरे का पूरा गाँव जग चुका था।

किशोर ने अमला से पूछा—"मैं देख आऊँ।"

"चलो मैं भी साथ चलती हूँ।" गीता भी आ गई…।

घटना-स्थल पर अच्छी खासी भीड़ जमा थी। गाँव का चौकीदार इस किस्से को चिल्ला-चिल्ला कर सब को सुना रहा था। किस तरह उसने पहरा देते वक्त पगली को पेड़ से लटकते देखा और किस तरह फुर्ती से उसे उतारा। लेकिन वह पहले ही मर चुकी थी। उसका शरीर बर्फ के समान ठंडा हो चुका था। आदि-आदि। सुनकर औरतों की आँखें सजल हो गई थीं। पुरुषों के चेहरे गम्भीर हो उठे। इसके बाद एकत्रित नारी-पुरुषों में पगली की ऐतिहासिक कहानी की चर्चा चल उठी। उनकी बातों से किशोर को मालूम हुआ कि पगली हमेशा से पगली नहीं थी। एक दिन उसका सब कुछ था। पति था, जवान पुत्र था खेती बाड़ी की जमीन थी। नकदी थी। जेवर थे और न जाने क्या-क्या था। जिसे डकैतों ने एक ही दिन में शेष कर दिया। सारे जेवर और कई वंशों के एकत्रित रुपयों के साथ-साथ उसके पति और पुत्र की जानें भी गईं। इस आकस्मिक आघात ने उसके दिमाग में विकार उत्पन्न कर दिया। उसके पास एक ही बात थी जिसे वह रात दिन चिल्लाती रहती थी—"अरे कोई बचाओ। मेरे मालिक को मार डाला। अरे कोई बचाओ। मेरे जवान लड़के को ये दुष्ट मारे डाल रहे हैं।"

यह उसी दिन के वाक्य थे, जिस दिन उसने अपनी आँखों से दोनों जानें जाते देखी थीं और गाँव की एक चिड़िया भी उसकी इस वाणी से पास न फटकी थी।

आज कीर्तन के दिन सुबह से ही पगली ने सैंकड़ों बार इस वाक्य को दुहराया और फिर न जानें उसके विकृत मस्तिष्क में यह आत्महत्या का इरादा कहाँ से टपक पड़ा। भीड़ को ठेल-ठूल कर किशोर आगे बढ़ा। अमला और गीता भी उसके पीछे-पीछे चलीं। वह एक भयानक दृश्य था। पगली की पथराई आँखें बाहर को निकली हुई थीं। मानो अब गिरीं, अब गिरीं और उसकी जीभ भी बाहर को लटकी हुई थी। सारा चेहरा स्याह हो गया था। इस वीभत्स दृश्य को देखकर किशोर ने अपनी आँखों पर हाथ रख लिया। गीता के मुँह से एक हल्की चीख निकल गई और अमला बेहोश होकर गिर पड़ी। सभी आश्चर्य-चकित रह गए। यह क्या हुआ? किसी की समझ में न आया। घटक भी मौजूद थे। घटक और किशोर बेहोश अमला को उठाकर घर ले गए। माथे पर पानी डाला, पंखे से हवा की। करीब पन्द्रह मिनट बाद उसने आँखें खोल दीं। कुछ देर चुप रही, फिर बोली—"घटकदा अब मैं ठीक हूँ। तुम जा सकते हो।"

अच्छी तरह आराम करने की बात कहकर घटक चले गए। किशोर ने पूछा—"यह तुम्हें क्या हो गया था अमला?"

"मैं बेहोश हो गई थी न!"

"हाँ।"

"मने इतना वीभत्स दृश्य अपनी जिन्दगी में कभी भी नहीं देखा।"

और उस दृश्य की याद करके अमला के सारे शरीर ने एक फुरफुरी ली। उसके हल्के से शरीर के समस्त अवयव काँप उठे। फिर किशोर से पूछा—"अच्छा किशोर ये लोग कैसे होते हैं जो आत्महत्या कर लेते हैं। उफ, अपने हाथों अपनी जान को नष्ट करना। इसकी कल्पना करना भी भयावह है, कँपा देने वाला है।"

"लेकिन आत्महत्या करने वाली यह औरत तो पागल थी अमला !"

"हाँ यह तो पागल थी। लेकिन जो पागल नहीं हैं ऐसे भी तो सैंकड़ों हजारों आदमी-औरत आत्महत्या कर लेते हैं, वह क्यों ?"

"यह शायद उनके मन की कमजोरी है। वे लोग शायद किसी आकस्मिक आघात को सहन नहीं कर पाते। इसीलिए शीघ्रता में ऐसा कर बैठते हैं और मरने के बाद फिर अनुताप, अथवा पश्चाताप करने की कोई बात रह ही नहीं जाती। इसलिए यह भी मानव की शीघ्रता में की गई गलतियों में से एक गलती है।"

अमला ने कहा—"उफ कितनी भयावह है यह आत्महत्या। मैं तो इसकी कल्पना भी नहीं कर सकती। कितना भी बड़े-से-बड़ा आघात मुझे क्यों न लगे। लेकिन आत्महत्या की बात मैं सोच भी नहीं सकती उफ !"

और अमला का शरीर फिर एक बार काँप उठा।

: २८ :

इसके दो तीन दिन बाद फिर एक घटना घटी। सम्पर्ण आशातीत बिल्कुल कल्पनातीत।

एक दिन शाम से ही गीता को कै और दस्त शुरू हो गए। आस-पास के गाँवों में कालरा फैलना शुरू हो गया था। गाँव-के-गाँव उजाड़ होते जा रहे थे। किशोर का माथा ठनका। बोला—"मैं डाक्टर को बुला लाऊँ।"

गीता ने कहा—"नहीं, मैं ठीक हो जाऊँगी।"

लेकिन थोड़ी देर बाद ही वमन हुआ। वमन और फिर विरेचन। अब किसी को और कोई शक न रह गया। किशोर गाँव के एकमात्र

होमियोपैथिक डाक्टर को लिवा लाया। उसने किशोर के सन्देह की पुष्टि की। दवा दी और घर चला गया। लेकिन दवा ने कोई फायदा न किया राग उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। फिर डाक्टर को बुलाया गया। वह आया और दवा देकर उसनें कहा—"हमारे होमियोपैथिक शास्त्र में इससे बड़ी दवा नहीं है। इससे फायदा न हो तो मुझे दुबारा न बुलाना।"

लेकिन उस दवा से भी कोई फायदा नजर न आया। हालत बिगड़ती ही गई। घबड़ाकर किशोर ने पूछा—"क्या करूँ अमला।"

अमला चुप थी। कोई उपाय उसे न सूझ रहा था। गाँव में कोई दूसरा डाक्टर न था। किशोर ने कहा—"मैं कस्बे से जाकर सरकारी डाक्टर को लिवाए लाता हूँ।"

हाथ उठाकर क्षीण आवाज में गीता ने उसे रोका। बोली—"कस्बा यहाँ से पाँच छः कोस दूर है। जब तक तुम बुलाकर लाओगे, मैं बचूँगी नहीं भय्या। तुम मेरे पास न रहोगे तो मैं तड़प-तड़प कर मरूँगी अब मुझे डाक्टर बचा नहीं सकते। बचने की इच्छा भी नहीं है। आशीर्वाद दो भय्या। मैं शीघ्र ही उनके चरणों में पहुँच जाऊँ।"

किशोर न जा सका। वहीं बैठा रहा। घंटे भर बाद जब उसने गीता के शरीर के तापमान की परीक्षा की, तो वह बिलकुल ठंडा था। नाड़ी मन्दी चल रही थी। किन्तु वह बोल रही थी। उसने किशोर को पास बुलाया। अमला को पास बुलाया। बोली—"दीदी, कभी भूल से तुम्हारे चरणों में कोई अपराध किया हो तो क्षमा करना।"

फिर किशोर से कहा—"भय्या मेरी बात मान लेना। तुम शादी करना। जब भाभी आए तो उनसे कहना कि तुम्हारी एक अभागी ननद भी थी। वह तुम्हें बिना देखे ही मर गई।"

फिर वह कुछ न बोली। एक भी शब्द उसने न कहा। खुली आँखों से बहुत देर तक किशोर की ओर देखती रह गई। इसके बाद सब शेष, सब शान्त। उसकी वे खुली आँखें हमेशा के लिए बन्द हो गईं और हमेशा के लिए वह चली गई।

सुबह होने में अभी देर थी। किशोर की आँखों में आँसू थे, किन्तु अमला शान्त थी और किशोर उस बालिका सी स्वभाव वाली गीता की मृत देह को देख रहा था। उसकी एक-एक बात उसे याद आ रही थी। उसकी सरल और निष्कपट बातें, उसकी बातें हमेशा उसके सरल मुख की ही भाँति सरल होतीं थीं। उसके स्वच्छ हृदय की भाँति ही स्वच्छ होती थीं।

धीरे-धीरे सुबह हुई। दिग्बंधुओं के तमाच्छन्न मुख से अवगुंठन उठा। किन्तु अवगुंठन मुक्त उनका वह मुख-मंडल आज मलिन था। केश अस्तव्यस्त थे और आँखों में उदासीनता थी। रोज की तरह आज भी चिड़ियाँ चहचहाईं, किन्तु आज के उनके संगीत में व्यथा थी। रोज की तरह उषा की अरुणिमा आज भी वातावरण में फैल गई, किन्तु आज वह अरुणिमा श्यामलता लिए हुए थी। किशोर की आँखों को आज सब कुछ फीका लगा, सब कुछ सूना लगा। प्रकृति का सौन्दर्य भी तो मानव-मन से ही सम्बन्धित है।

अमला ने बेसुध से किशोर को होश दिलाया—"किशोर अब बैठने से तो कुछ होगा नहीं।"

वह उठा मन में सोचा—"नहीं, बैठने से कुछ नहीं होगा। मरने के बाद अपनी प्रिय बहिन को अपनी ही आँखों से जलता हुआ देखे बिना दुःख की भी सोलहों कला पूर्ण न हो पायेंगी।"

और किशोर ने पड़ोस के आदमियों को अर्थी उठाने को बुलाया। कैसा भद्दा रिवाज है यहाँ का, मरजाने पर बिना बुलाए कोई नहीं आता। किशोर के बुलाने पर आदमी आए, अर्थी उठी। किशोर ने अमला से पूछा—"क्या अपनी बहिन को दाह देने का अधिकार मेरा है?"

अमला ने कहा—"हाँ दाह तुम्हीं देना किशोर! अभागिन की अशांत आत्मा को शांति तो मिलेगी।

श्मशान क्रिया समाप्त करके जब किशोर लौटा तो दोपहर ढल चुकी थी। श्मशान में अनेक लोगों के सहयोग ने और श्मशान वैराग्य

के पश्चात् अनेक प्रसंग और अप्रसंग की बातों ने किशोर को इस आकस्मिक आघात की पूर्ण उपलब्धि न होने दी थी। किन्तु सरल गीता के अंग प्रत्यंग का अस्तित्व सदा के लिए मिटाकर जब वह घर लौटा तो एक आकुल क्रन्दन उसके वक्ष को विदीर्ण करके निकलने का उपक्रम करने लगा। लेकिन दर्वाजा पार करके जब वह भीतर आँगन में आया तो उस आकुल क्रन्दन का स्थान आकस्मिक भाव से आश्चर्य ने ले लिया।

एक तो वैसे ही बँगाल में प्रथा नहीं है कि रोने के लिए भी कोई बिना बुलाए आए और उस पर भी गाँव की औरतें अमला से विशेष प्रसन्न न थीं। यों अर्थी उठाने का तमाशा देखने दो चार औरतें आईं थीं और अगर अमला नाटकीय ढँग से विलाप तथा शोक प्रकाश करती तो शायद अमला के विलाप के गीत में सुर मिलाने को घड़ी दो घड़ी को रुक भी जातीं, लेकिन चिल्ला-चिल्लाकर रोना तो दूर रहा अमला की आँखों से जब आँसू की एक बूँद भी न गिरी तो उन्होंने अपनी उपस्थिति वहाँ बेकार समझी और गीता के दो एक गुणों तथा मानव शरीर की नश्वरता के बारे में दो एक बातें कहकर वे अपने घर लौट आईं। अकेली अमला बहुत देर तक पत्थर की प्रतिमा बनी बैठी रही।

धीरे-धीरे गीता की सारी बातें उसे याद हो आईं। उसकी सरलता, उसकी सहनशीलता, बच्चों का सा स्वभाव, उसी ढंग की बातें। अमला के प्रति उसका अटूट प्रेम। सारी बातें एक-एक करके उसके मानस पटल पर खेल गईं और उन बातों में वह इतनी तन्मय हो गई कि थोड़ी देर बाद ही वह बेहोश होकर लुढ़क पड़ी और वह बेहोशी किशोर के आने तक भी न टूटी।

किशोर ने देखा कि आँगन की धूल में अमला का शरीर धूसरित हो उठा है। उसके नितम्ब चुम्बन करने वाले दीर्घ केश बिना झड़े आँगन के रेत से मलिन हो उठे हैं। थोड़ी देर तक वह अवाक होकर देखता रहा।

उसके सामने अमला की यह दूसरी बार की बेहोशी थी। पहली बेहोशी के दिन किशोर ने अमला से पूछा भी था कि इससे पहले कभी बेहोश हुई है। उसने कहा था, नहीं। बेहोशी चीज क्या है यही वह पहले नहीं जानती थी, तथा बेहोशी मानव-मस्तिष्क को इस प्रकार निष्क्रिय कर सकती है इसका उसे विश्वास नहीं था।

किशोर ने आँगन में पड़ी अमला के शरीर को दो एक बार झकझोरा और आवाज देकर उठाने की कोशिश की, लेकिन न कोई जवाब ही मिला और न शरीर ने किसी प्रकार की हरकत ही की।

उसके हल्के शरीर को उसने बाहुओं में भरकर उठा लिया और यत्न के साथ पलंग पर लिटाकर तौलिए से शरीर पर लगी सारी धूल उसने पोंछ डाली। ठंडे पानी से सर धोया और पानी की एक भीगी पट्टी माथे पर रखकर बहुत देर तक पंखे से हवा करता रहा।

कुछ देर बाद अमला ने आँखें खोलीं। किशोर की तरफ देखा। और अपने अस्तव्यस्त कपड़ों को उसने ठीक किया। कपड़े ठीक करते वक्त उसके मुँह पर एक अस्पष्ट सी लज्जा थी। यह लज्जा की अस्पष्ट सी रेखा किशोर ने पहली बार अमला के मुँह पर देखी।

किशोर ने पूछा—"तबियत ठीक है ?"

"हाँ" कह कर अमला ने हाथ बढ़ाकर किशोर को अपने पास खींच लिया और उसी पलंग पर सिराहने की ओर उसे बैठा कर किशोर की गोदी में अपना सर रख दिया। बहुत देर तक वह आँखें बन्द करके चुप पड़ी रही। फिर आँखें खोलीं। आँखें भरीं थीं। उनके नीचे हल्की सी काली छाया थी। बोली—"किशोर गीता चली गई।"

किशोर ने कोई जवाब न दिया। उसकी आकृति अपेक्षाकृत गम्भीर हो उठी। गम्भीर मेघ के समान और फिर वह गम्भीर मेघ-पुंज सरस हो उठा, पसीज उठा। किशोर की आँखों से बूदें टपक कर गोद में लेटी हुई अमला के कपोलों पर जा गिरीं। अमला ने उसी

तरह लेटे लेटे जरा तिर्छे होकर किशोर के आँसू पोंछ दिए, बोली—"छिः रोने से क्या वह लौट आयेगी ?"

रोने वाले को साँत्वना देने का यह बहुत पुराना घिसा पिटा उत्तर था। सभी जानते हैं कि रोने से कोई लौटता नहीं। फिर भी क्या रुलाई रुकती है ? वह तो केवल मात्र एक अनुभूति की प्रतिक्रिया है। रोने से जाने वाला लौटता नहीं। यह ध्रुव सत्य रोना बन्द नहीं कर सकता। जानते हुए भी नहीं। क्योंकि जानने और समझने में पार्थक्य जो है।

बाधा पाकर मानो बाँध टूट पड़ा। अमला ने कहा—"देखो मेरी आँखों में तो एक भी आँसू नहीं है।"

किशोर ने कुछ न कहा। किन्तु आँसू निकलने के भी दो मार्ग हैं। एक भीतर की तरफ और एक बाहर की तरफ। जो कमजोर हैं उनके आँसू बाहर निकलते हैं। किन्तु जो सबल हैं उनके भीतर की तरफ।

किशोर के निर्बल अन्तःकरण ने वेग को बाहर की तरफ ही फेंका था। किन्तु अमला के अन्तः सलिला अश्रुवेग के गोपन शब्द को भी उसके हृदय ने अनुभव किया। रोते-रोते उसकी साँसें फूल उठीं। वह जितना रोकने की चेष्टा करने लगा, आवेग उतना ही प्रबल होता गया। अमला ने कहा—"छिः तुम तो बच्चों से भी ज्यादा कमजोर हो।" और उसने उठकर किशोर के मुँह को अपने वक्षस्थल में छिपा लिया। वेग और भी बढ़ गया। रोने के लिए नारी के वक्ष से ज्यादा उपयुक्त स्थान दुर्बलों के लिए और कहीं भी नहीं है।

अमला उसके मुँह को अपने वक्षस्थल में छिपाकर स्नेहमयी चिर-काल की नारी के समान उसके बालों पर अपनी मृदु हथेली का संचारण करने लगी।

या यही कौन कह सकता है कि उसकी इस क्रिया में अपने को ही सांत्वना देने का प्रयास था। रोने का वेग जब कुछ कम हो उठा तो किशोर ने अपने मुँह को अमला के वक्ष से हटा लिया। तौलिये से नाक

और आँखें पोंछ कर उसने कहा—"अमला ! बहिन का प्यार मेरे जीवन की एक अपूर्णता थी। उस असीम प्यार के आनन्द की अनुभूति मुझे गीता से ही हुई। मैं उसे जीवन में कभी भी नहीं भूल सकता। वह कितनी सरल थी, कितनी सीधी थी।"

अमला ने कहा—"लेकिन बड़ी अभागी। किशोर, वह बड़ी अभागी थी।"

किशोर ने देखा अमला के शान्त गले में एक हलका सा प्रकम्पन हो उठा। आँखों में सरसता आ गई। किन्तु वह सरसता चक्षुद्वार को पार न कर सकी। अन्तःकरण में प्रवाहित वेग ने अपने प्रबल आकर्षण से उसे अपने पास खींच लिया।

कुछ देर तक वह चुप रही। मानो अपने को संयत कर रही हो। शान्त कर रही हो। फिर उसने कहा—"किशोर जीवन में कभी भी उसे सुख नहीं मिला।"

"वह तुम्हारी किस रिश्ते से बहिन होती थी ?"

"मेरा कोई भी रिश्ता उससे न था फिर भी उसने मुझे सगी बहन से ज्यादा प्यार किया। मेरे मामा ने इसे पाला था।"

"माँ बाप छोटा छोड़ कर मर गए होंगे।'

"हाँ, बाप तो जिस दिन पैदा हुई, उसी दिन मर गए। माँ ने दूसरे दिन आत्महत्या करली। पड़ौस की एक गरीब औरत ने पाला-पोसा। जब जरा बड़ी हुई तो भीख माँगने स्टेशन भेज देती थी। मेरे मामा जी जब कलकत्ते से घर लौटते तो हमेशा एक स्टेशन पर इसे भीख माँगती पाते थे। एक दिन मामा ने मामी से पूछा कि एक पाँच छः साल की लड़की एक स्टेशन पर रोज भीख माँगती है। जब देखता हूँ तो ऐसा लगता है कि मेरी लड़की भीख माँग रही हो। तुम कहो तो उसके माँ-बाप से मिल कर उसे घर ले आऊँ। मामी ने कहा—"उसके माँ-बाप क्यों तुम्हारे हाथ में छोड़ देंगे ?" मामा ने कहा—"वह बात दूसरी है। लेकिन मैं कोशिश करूँगा।"

"और दूसरे दिन जब मामा कलकत्ते से लौटे तो इसे साथ लेकर लौटे। हालाँकि सौ रुपये भी मामा को इसकी पालन कर्त्ता माँ को देने पड़े। लेकिन वे बहुत खुश थे। मगर रुपयों की बात सुन कर मामी जरा भी खुश न हुईं और मामा पर खूब बिगड़ीं। लेकिन घर में रख लिया। जितनी ये बड़ी न थी, उतना बड़ा उससे काम लेने लगीं। बड़ी होने पर शादी कर दी। मालिक एक जूट मिल में मजदूरी करता था। स्वभाव का अच्छा न था। ताड़ी पीता था और इसे खूब मारता था। यह इतनी सीधी थी कि पिटती थी, मार लगती थी, पर फिर भी उसकी सेवा करती थी। मैं उन दिनों कलकत्ते में पढ़ती थी।...अरे भूल गई। पढ़ती कहाँ थी, मैं तो जरा भी नहीं पढ़ी।"

किशोर जरा मुस्करा दिया। कहा कुछ नहीं। अमला ने कहा—"तो मैं कलकत्ते में रहती थी। मेरी माँ मुझे मिलने आईं। जब से गीता बच्ची थी तभी से माँ ने इसे देखा था। प्यार भी करती थीं। मुझे साथ लेकर इससे मिलने गईं। छोटा सा घर था और इसके पति ने उसे यथासभव गन्दा कर रखा था। वहाँ उस समय इसका पति मौजूद न था। लेकिन गीता को देख कर हम अचंभे में रह गए। इसके सारे शरीर पर मार की चोटों के निशान थे। माँ बहुत गुस्सा हुईं और इसके पति के आने से पहले ही इसे घर से लिवा लाईं। दो दिन तो हमारे पास यह ठीक रही। तीसरे दिन इसने कहा, "मुझे वहीं पहुँचा दो।" मां ने बहुत समझाया। मैंने भी समझाया। लेकिन इसने न माना। हार कर हम वहीं इसे पहुँचाने गए। इसका पति मौजूद था। इसे देखते ही वह हमारे सामने ही इस पर टूट पड़ा। मां ने बचाने की कोशिश की, लेकिन उसने माँ को भी धक्का मारा।"

"माँ बहुत गुस्सा हुईं। पास ही थाना था, जाकर रिपोर्ट करदी। सिपाही आए और पकड़ कर ले गए। लेकिन यह रोते-रोते माँ के पैरों में गिर पड़ी। बोली "उन्हें छुड़वादो।" माँ ने अपने अपमान के लिए

उसे न पकड़वाया था। पकड़वाया था गीता के ऊपर होते अत्याचारों को न सहन करके।

"जब इसने रो-रो कर बुरा हाल कर डाला तो माँ ने दारोगा से कह कर उसे छुड़वा दिया। सुनते हैं जब हम दोनों चली आई तो फिर उसने इसे खूब मारा। इसके तीन चार महीने बाद ताड़ी के नशे में मोटर से कुचल कर इसके पति की मृत्यु हो गई। यह फिर हमारे मामा के यहाँ लौटी। मामा-मामी मर चुके थे। ममेरी बहन और बहनोई घर के मालिक बन चुके थे। उन्होंने इसे न रखा तब यह हमारे घर चली आई और फिर वहीं से मेरी बहिन के यहाँ। इसके बाद मैंने इसे यहाँ बुला लिया।"

बात खत्म करके अमला ने कहा—"सचमुच बड़ी अभागिन थी किशोर! जीवन में कभी भी इसने सुख नहीं पाया।"

: २६ :

तीन चार दिन बाद अमला ने किशोर से कहा—"किशोर! अब मेरी भी इस गाँव में रहने की जरूरत नहीं रही। जल्दी ही यहाँ से चली जाऊँगी।"

"कहाँ ?"

"अभी तो शायद बर्दवान जाऊँ।"

"मैके ?"

"नहीं। एक दूर के रिश्तेदार हैं। उनके यहाँ।"

"कब तक लौटोगी ?"

"शायद कभी न लौटूँ। लेकिन कोई ठीक नहीं है। दो सूरतें हैं।

एक सूरत में शायद कभी न लौटूँ। दूसरी में यहाँ जिन्दगी भर के लिए लौट आऊँ।"

"वह दो सूरतें क्या-क्या हैं।"

"बताऊँगी। लौटूँगी तो मुँह से बताऊँगी। न लौटी तो पत्र से बताऊँगी। तुम्हें मैं सब कुछ बताऊँगी किशोर! गीता से भी यही कहा था। लेकिन उसे न बता सकी।"

किशोर कुछ देर तक चुप रहा। फिर बोला—"बर्दवान में मुझे कोई काम नहीं मिल सकता।"

बात सुनकर अमला हँस पड़ी जैसे ग्रीष्म काल में जल के अभाव से बन्द हुआ झरना अनेक दिन पश्चात जल पाकर फिर कल-कल कर उठा हो। सचमुच कई दिनों में वह आज ही हँसी थी। बोली—"तुम्हारी मिल का क्या होगा?"

"बेच दूँगा।"

"क्यों?"

"गीता के मरने से अब इस गाँव के प्रति मेरा मोह नहीं रहा। तुम्हारे जाने के बाद विरक्ति में बदल जायेगा।"

"जिस समय यहाँ आये थे उस समय न तो गीता से ही परिचय था, न मुझसे।"

"इतनी नजदीक की बात क्यों कहती हो। यह भी तो कह सकती हो कि जब मैं जन्मा था। तब तो मेरी कोई अपनी इच्छा ही न थी।"

"तो क्या इरादा है मेरे साथ रहने का?" और अमला दुबारा हँस पड़ी। मानो चंचल अमला फिर लौट आई हो। किशोर ने कोई उत्तर न दिया।

अमला ने कहा—"बात पूछती हूँ तो उत्तर क्यों नहीं देते।"

"उत्तर है नहीं, इसी से नहीं दे रहा।"

"उत्तर न सही इरादा तो है।"

"अपने इरादे के लिए मैं कुछ नहीं कर सकता। वह दूसरे पर आश्रित है।"

"समझती थी कि भोले हो। लेकिन यह बात नहीं, जानते सब हो। कहना भी और भूमिका बाँध कर भी।"

"जीवन की एक यही तो पूँजी रही है। सारे जीवन भर भूमिका ही तो बाँधता रहा हूँ और किसी को नहीं बाँध पाया।"

"किसी को बाँधने की इतनी उत्कट अभिलाषा है?"

किशोर ने कोई उत्तर न दिया, अमला भी चुप रही। फिर अपेक्षाकृत गम्भीर होकर बोली—"किशोर गंगासागर के मेले में मैंने तुमसे कहा था कि मैं किसी को प्यार नहीं करती, किसी को भी खुश करना नहीं चाहती। चाहती हूँ सिर्फ अपने को खुश करना याद है तुम्हें।"

"याद है।"

"यह भी जानते हो कि गाँव वाले मुझे भला नहीं कहते।"

"जानता हूँ।"

"और यह भी याद होगा कि मैंने कहा था गाँव वाले जो कुछ कहते हैं, सच कहते हैं।"

"याद है।"

"फिर।"

"इस पर विश्वास नहीं कर पाता।"

"क्यों?"

"यह मैं नहीं जानता।"

"तुमने शेखर को मेरे साथ ताश खेलते देखा है। हँसी मजाक करते देखा है।"

"देखा है और जब भी देखा है ईर्ष्या से जल उठा हूँ। तुमसे अत्यंत घृणा हो उठी है नफरत हो उठी है।"

"फिर।"

"लेकिन जब तुम अकेले में मेरे सामने आती हो तो ऐसा लगता है कि मैंने तुम्हें गलत समझा है।"

"क्या उस समय मुझे माफ कर देते हो। मेरी गल्तियों को मेरे अतीत को क्षमा कर देते हो?"

"नहीं।"

"तो क्या मेरी खुशी को अपनी खुशी समझते हो।"

"नहीं।"

"तो क्या सहन कर लेते हो।"

"नहीं।"

"तो फिर।"

"मै नहीं जानता इमली! क्या हो जाता है। फिर भी इतना जानता हूँ कि लोग जो कुछ कहते हैं, तुम जो कुछ दिखाती हो, तुम्हारे सामने आते ही उस पर विश्वास नहीं होता।"

"विचित्र हो किशोर तुम!"

किशोर ने कोई जवाब न दिया। कुछ सोचता सा रहा। मानो अमला की बात को समझने की कोशिश कर रहा हो।

अमला ने पूछा—"क्या सोच रहे हो?"

"सोच रहा हूँ तुम जहाँ भी जाओ, मैं तुम्हारे साथ चलूंगा।" बात सुनकर अमला हँस पड़ी। वही चिरपरिचित हंसी। मानो वातावरण की गम्भीरता पर थोड़े से फूल बिखेर दिए हों। फिर बोली—"नहीं। लेकिन एक वायदा किए जाती हूँ। यह बिदाई आखरी बिदाई न होगी। मैं तुमसे मिलूँगी। सारी बातों को बताऊँगी। अब तक मैं तुम्हारे लिए एक रहस्य रही हूँ। वह रहस्य तुम्हारी आँखों में सुलझा कर रख दूँगी।"

किशोर ने कोई जवाब न दिया।

अमला ने कहा—"एक बात जानते हो। मैं लिखना पढ़ना जानती हूँ।"

किशोर के ओठों पर मुस्कान आ गई। बोला—"जानता हूँ।"

"किसने बताया?"

"जिसने भी, लेकिन जानता हूँ। साथ-साथ यह भी जानता हूँ कि तुमने काफी पढ़ा है।"

"काश मैं जरा भी पढ़ी न होती।"

"क्यों ?"

"शान्ति मिलती और कुछ नहीं। मैंने यहाँ आकर दुनियाँ को दिखाया भी यही था कि मैं जरा भी पढ़ी लिखी नहीं। फिर भी उनमें मिल न सकी।"

किशोर ने कोई उत्तर न दिया। थोड़ी देर बाद पूछा—"तुम कब जाओगी यहाँ से ?"

"अभी कुछ तय नहीं कर पाई। लेकिन चली जाऊँगी इतना ही सोचा है।"

दस दिन बाद गीता का श्राद्ध हुआ। यहाँ तेरह दिन की तेरहवीं नहीं होती, दस दिन की दसवीं होती है। शूद्रों में एक महीने बाद श्राद्ध होता है। एक महीने तक गले में उत्तरीय अर्थात कफ़न के वस्त्र का टुकड़ा बाँध कर अशौच पालन करना पड़ता है। किन्तु श्राद्ध के आयोजन में यू० पी० और बंगाल में जरा भी पार्थक्य नहीं होता और न ब्राह्मणों के श्राद्ध का अन्न भक्षण करने की रुचि में ही लेशमात्र भिन्नता होती है।

यू० पी० की तुलना में एक बात यहाँ अच्छी है। ब्राह्मण ब्राह्मणों से दक्षिणा नहीं लेते। किन्तु भोजन कराने वाले से दक्षिणा न लेकर अनेक अपमानों की दक्षिणा वे भोजन से पहले स्वयं दे आते हैं।

यों सारे जीवन भर उनके साथ खा पीकर आराम के दिन बीतते हैं। लेकिन जब किसी के यहाँ ब्राह्मण भोजन कराने का कोई मौका आता है, चाहे वह मरण के श्राद्ध में हो अथवा जन्म के अन्न प्रासन में; चाहे वह किसी के पाणीग्रहण-संस्कार के सुअवसर पर हो अथवा

किसी के बाड़ी (घर) ग्रहण के सुअवसर पर। उस समय दैनिक साथ खाने-पीने वाले ब्राह्मणों का मानो भिन्न रूप हो उठता है। किसी के दादा परदादा ने जाने अनजाने में क्या सामाजिक अपराध किया था, किसकी दादी परदादी ने नैतिकता के नियमों का उल्लंघन किया था, इस बात की खरी आलोचना हो उठती है और दैनिक प्रायः एक ही थाली में खाने वाले अपने ब्राह्मण पड़ौसी के प्रति वे लोग सजग और सावधान हो उठते हैं। कहीं उस ब्राह्मण भोजन के विशेष दिन उसके यहाँ अन्न ग्रहण करने से इतने दिन की पुरखाओं की बनाई हुई उनकी जाति नष्ट न हो जाय, यह चिन्तनीय विषय बन उठता है।

गीता के श्राद्ध के दिन गाँव के ब्राह्मणों ने भी एक बखेड़े की सृष्टि की। गीता और अमला दोनों में से किसी के पूर्व पुरुष द्वारा की गई भूल का उन्हें पता न था। लेकिन बहाने के लिए यही क्या कम था कि वे दोनों अपरिचित ब्राह्मण-वंश की कन्याएँ हैं।

इसके अलावा अमला की सीमाहीन स्वाधीनता, शेखर के साथ उसका सम्बंध। तिल को जब ताड़ बनाया जा सकता है तो ताड़ को ऐवरेस्ट बनाने में क्या देर लगती। गाँव की जो ब्राह्मण ग्रहणियाँ अमला के यहाँ से प्रायः दैनिक ही पकी-पकाई शाक सब्जी और दाल माँग ले जातीं थीं और वक्त बेवक्त बिना निमंत्रण के ही अमला के आतिथ्य का निमंत्रण स्वीकार कर लेती थीं, सिर्फ अमला के हाथ का भोजन कैसा बनता है इसी के परीक्षण के लिए अथवा अमला दीदी के हाथों से अमृत बरसता है, इस ढंग की प्रशंसा करके, आज उन्हीं के स्वामी पुत्रों ने एक स्वर में ऐलान कर दिया कि वह इस स्वेच्छाचारिणी औरत के यहाँ अन्न ग्रहण नहीं करेंगे। अमला ने सुना और सुनकर ओंठ बिचकाकर कहा—"इस बने बनाये खाने को गरीबों को खिला दो किशोर। मुझे भी पसन्द नहीं कि यह दैत्य मेरे अन्न का दुरुपयोग करें।"

किशोर ने कहा—"तुम्हें पसन्द नहीं और मैं भी इस श्राद्ध के

ब्राह्मण-भोजन पर ज्यादा विश्वास रखता हूँ सो भी बात नहीं है। लेकिन जिसका श्राद्ध है उसे विश्वास था, इसलिए उसकी आत्मा की तृप्ति के लिए यह करना ही पड़ेगा।"

अमला ने कहा—"उसकी आत्मा को शान्ति मिलेगी ? वह क्या देखने आ रही है।"

किशोर ने कहा—"देखना ही दुनियाँ में सबसे बड़ी चीज नहीं है अमला ! मैं कुछ देर के लिए यहाँ से बाहर जा रहा हूँ। यह नहीं देखूँगा कि तुम क्या कर रही हो। लेकिन उस स्थिति में तुम खड़ी होकर मुझे पेट भर गालियाँ सुना सकती हो।"

"नहीं। सो तो नहीं सुना सकती लेकिन यह ग्रामीणों की सी हाजिर जवाबी कहाँ से सीखी ?"

"जहाँ से भी सीखी हो। लेकिन गीता के श्राद्ध की आवश्यकता है और बहुत बड़ी आवश्यकता है।"

अमला ने जरा बिगड़ कर कहा—"आवश्यकता है तो जाओ। उन ब्राह्मणों के पैर पकड़ो। नाक रगड़ो और मनाकर लाओ। लेकिन एक बात याद रखना, एक पैसा अर्थ दंड तुमने अगर दिया तो मुझसे बुरा कोई न होगा। इसके अलावा मैं किसी से भी क्षमा न माँगूँगी। इसे भी याद रखना।"

दोनों बातों को पक्की तरह से याद करके ही किशोर ब्राह्मणों की खुशामद करने पहुँचा। गाँव में किशोर ने इन कुछ दिनों में ही एक सम्मान अपनी सरलता से प्राप्त कर लिया था। सरलता से भी और पैसे से भी और किशोर के साथ-साथ घटक का भी समर्थन पाकर वे लोग किसी तरह तय्यार हो गए। न तो अमला को क्षमा ही माँगनी पड़ी और न एक पैसा अर्थ दंड ही देना पड़ा।

ब्राह्मणों में, जो गरीब थे और पकवानों के लोभ में अपने मुँह का पानी और इन नीतिवादी ब्राह्मणों के प्रति अपने क्षोभ किसी तरह दबाए बैठे थे, उन्होंने भोजन-युद्ध में अच्छा परिचय दिया। किन्तु

नीतिवादी उनसे एक कदम आगे निकले। घंटे भर पहले जिस अन्न भक्षण के विचार से उन्हें अपनी पुरखा पंगत से चली आई हुई जाति नष्ट होने का भय हो गया था, उसी अन्न के प्रति उनकी जठराग्नि इतनी प्रबल हो उठेगी, इसकी कोई स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता था।

खैर आहार के पश्चात् आहार से भी अधिक भोजन-सामग्री साथ बाँधकर ब्राह्मण-समाज अपने घर लौट गया और इस तरह श्राद्ध कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न हुआ।

किन्तु इस श्राद्ध के दिन ही अमला के जीवन में एक मोड़ आने वाला था और वह आया डाकिये के चिट्ठी के बैग में लदकर। अँगरेजी में अमला का पता लिखा हुआ एक लिफाफा डाकिये ने इस भोज समारोह के बीच में ही किशोर के हाथों पर रख दिया। अमला दूर नहीं थी, पास ही थी। पत्र किशोर ने उसकी तरफ बढ़ा दिया। पते की लिखावट देखकर ही वह चौंक उठा। उसके गुलाबी ओंठ खुले के खुले रह गए और उनकी अरुणिमा न जाने कहाँ लुप्त हो गई। वह सफेद से हो उठे। किशोर ने इस भाव-परिवर्तन को लक्ष्य किया। पूछा—"किसका पत्र है ?"

अमला अन्यमनस्क थी। प्रश्न शायद वह सुन भी न सकी। किशोर के दुबारा प्रश्न दुहराने पर उसने कहा—"फिर बताऊँगी।"

और वह चिट्ठी पढ़ने के लिए अपने कमरे में चली गई। इस के बाद ब्राह्मण भोज के झंझट में किशोर को अमला की बात याद भी न रही। शाम को फुर्सत मिलने पर जब होश आया तो वह जल्दी-जल्दी उसके कमरे में गया। देखा कि कमरे के कच्चे फर्श पर अमला बेहोश पड़ी है। उसके हाथ पैर, केश सभी धूल धूसरित होकर मलिन से हो उठे हैं। किशोर ने उसको जगाने का निष्फल प्रयास किया। यह तीसरी बेहोशी थी और अब यह जरूरत थी कि किसी चिकित्सक से इस बारे में सलाह ली जाय। किशोर ने अमला को उठाकर पलंग पर लिटा दिया।

उसके हाथ में वही लिफाफा था जो कुछ देर पहले डाकिये ने दिया था। किशोर की इच्छा हुई कि देखें किसका पत्र है। हाथ में उठाया भी लेकिन पढ़ा नहीं। ज्यों का त्यों उसने उस लिफाफे को अमला के तकिये के नीचे रख दिया। इसके बाद घटक को बुलाया। घटक ने भी यही सलाह दी कि चिकित्सक से परामर्श लेना आवश्यक है।

गाँव के एक मात्र सुनाम धन्य प्रौढ़ होमियोपैथिक डाक्टर अपने जीर्ण-शीर्ण बैग को लेकर दौड़े आए। स्टैथिस्कोप से परीक्षा की। दाँतों को देखा, जो आपस में बन्द थे और निश्चिन्त मन से उन्होंने घोषणा करदी—"हिस्टीरिया।'

रोग कोई नया नहीं था। फिर भी किशोर के लिए नया ही था। उसने इसकी कारण उत्पत्ति पूछी।

डाक्टर ने बतलाया—"असल में यह रोग मन से सम्बन्ध रखता है। जो औरतें एकाकीपन अनुभव करती हैं अथवा जिनका मन अतृप्त रहता है, अधिकांश वे ही इसका शिकार होती हैं अथवा किसी आकस्मिक आघात से भी यह रोग हो जाता है। असल में यह रोग नहीं है। मन का एक विकार है या यों कहिए कि चिन्ता की गाढ़ अवस्था ही यह बेहोशी लाती है। कारण इसमें कोई भी हो, लेकिन दवा से अच्छा फायदा तब होता है, जब मरीज एकाकीपन अनुभव न करे।"

इसके बाद विश्व के समस्त चिकित्सा-शास्त्रों में होमियोपैथिक को ही सर्वश्रेष्ठ चिकित्सा बताकर उन्होंने कहा, कि होमियोपैथिक चिकित्सा ही इसे समूल नष्ट कर सकती है।

फिर एक खुराक दवा अमला के भिंचे हुए दाँतों को चम्मच से खोल कर उन्होंने पिलाई और फीस लेकर कुछ आवश्यक उपदेश देकर चले गए।

घटकदा सुबह से श्राद्ध के सारे आयोजनों को सँभाल रहे थे और इस दीर्घकाल में एक बार भी गजेन्द्रमोक्ष के दर्शन उन्हें न हुए थे। उनके उतरे हुए मुख, उदासीन आँखें और बार-बार के जुम्हाई

लेने के उपक्रमों को देख कर किशोर ने इस बात का अन्दाजा लगा लिया, बोला—"घटकदा सारे दिन आपके परिश्रम का अन्त नहीं रहा है। यहाँ विलम्ब करने की अब आपकी विशेष जरूरत नहीं है। आप घर जाइये अमला के स्वस्थ होने पर मैं आपको खबर दूँगा।"

"ठीक है। लेकिन रात में खबर देने की कोई जरूरत नहीं। सुबह ही देना। हाँ, अगर घंटे, आध घंटे में बेहोशी न टूटे तो मुझे बुलाना मत भूलना।"

वायदे में किशोर ने सिर हिला दिया। करीब रात के आठ साढ़े-आठ बजे अमला ने आँखें खोलीं। किशोर की तरफ देखा और बहुत देर तक देखती रही। किशोर ने पूछा—"तबियत कैसी है?"

क्षीण आवाज में अमला ने कहा—"ठीक है। मैं बेहोश हो गई थी न!"

"हाँ।"

"अब कै बजे होंगे?"

किशोर ने समय बता दिया। अमला ने पूछा—"मुझे कितनी देर हुई बेहोश हुए?"

"यह तो मैं नहीं कह सकता। लेकिन करीब दो घंटे से मैं तुम्हारे पास हूँ। श्राद्ध के झंझटों से निबट कर जब मैं तुम्हारी खोज लेने यहाँ आया तो देखा कि तुम जमीन पर बेहोश पड़ी हो।"

"हूँ! एक लिफाफा था न। वह कहाँ गया?"

"तुम्हारे तकिये के नीचे रख दिया।"

"तुमने पढ़ा?"

"नहीं।"

कुछ देर तक अमला चुप रही। फिर बोली—"कल मेरे साथ कलकत्ते चल सकोगे?"

"कलकत्ते क्यों?"

जवाब में अमला ने लिफाफा बढ़ा दिया—"इसे पढ़ो।"

पत्र बंगला में था। हाथ की लिखावट बहुत सुन्दर और साफ थी। उसमें लिखा था :—

अमला !

किसी दिन तुम्हें पत्र लिखूँगा इसकी कल्पना भी नहीं थी, किन्तु जीवन में ऐसे क्षण आते हैं जब अकल्पित कार्य भी करने पड़ते हैं।

मैं बीमार हूँ। करीब-करीब तुम्हारे जाने के बाद से ही। गैस्ट्रिक अल्सर की शिकायत ही डाक्टरों ने बतलाई है। बहुत इलाज कराने पर भी किसी प्रकार का लाभ नहीं हो पाया। डाक्टरों की आखरी सलाह आपरेशन की है, जिसे मैंने मंजूर कर लिया है। आपरेशन के बारे में डाक्टरों के दो तरह के विचार हैं। आपरेशन सफल होने पर रोग मुक्ति एवं असफल होने पर जीवन-मुक्ति। यद्यपि डाक्टरों का विश्वास है कि आपरेशन सफल ही होगा। किन्तु सम्भावना-युक्त इस विचार से मैं निश्चिन्त न हो सका हूँ। इसलिए इच्छा है कि जीवन के इस अनिश्चिन काल में मैं तुम्हें एक बार देखूँ। अवश्य तुम्हारे गले में बाहें डाल कर तुमसे क्षमा माँगने के लिए नहीं और न तुम्हें क्षमा कर देने के लिए ही। मेरी इच्छा विपरीत है, विचित्र है। जिसे कि तुम्हारे जाने के दिन से लेकर आज तक अपने मन में दबाए बैठा हूँ।

उस इच्छा को बताने से पहले एक बात तुम्हें बता दूँ। अपने सारे जीवन में अगर मैंने कभी भूल की है तो वह सिर्फ उसी दिन, जिस दिन दो लाइन का एक पत्र लिखकर तुम्हें अपना घर छोड़ने का आदेश मैंने दिया था। उस दिन की अपनी भूल को मैं आज भी नहीं भूला हूँ और शायद मृत्यु के अन्तिम साँस तक भी न भूल पाऊँ।

उस दिन मैंने क्या भूल की थी, यह मैं तुम्हें आज बताता हूँ। उस दिन तुम्हारे पत्र के साथ-साथ अगर तुम्हारे मुँह पर थूक सकता तो आज इतना अनुताप मुझे न होता। इतनी तड़पन इतना पश्चाताप मैं महसूस न करता।

आज उसी इच्छा को पूर्ण करने के लिए मुझे तुम्हारी आवश्यकता

है। जीवन के अन्तिम काल में अगर कोई इच्छा है तो बस यही कि तुम्हें सामने खड़ी करके तुम्हारे मुँह पर थूक सकूँ। जीवन में कभी भी तुमसे कुछ नहीं माँगा। कभी किसी चीज की याचना नहीं की। आशा है कि अन्तिम समय की मेरी इस इच्छा को तुम पूर्ण करोगी।

पच्चीस तारीख के दिन कलकत्ते के आर. जी. कर मैडिकल कालिज के हास्पिटल के सर्जरी विभाग में सुबह दस बजे आपरेशन होगा। समय से कुछ देर पहले आने का कष्ट करना। जिससे जी भर कर एक बार दो बार···दस बार····जितनी बार जी चाहे तुम्हारे मुँह पर थूक कर जीवन के अन्तिम क्षणों में अपनी आत्मा को शान्त कर सकूँ।

मेघेन्द्र

एक साँस में ही पूरे पत्र को समाप्त करके किशोर ने पूछा—"ये कौन हैं ?"

अमला ने कहा—"मेरे पति। यह मेरे पति का पत्र है।"

किशोर ने कोई जवाब न दिया। उसकी आकृति गम्भीर हो गई, आँखें उदासीन हो उठीं।

अमला ने थोड़ी देर रुक कर पूछा—"आज कौन सी तारीख है किशोर ?"

"आज छब्बीस तारीख है।"

"छब्बीस ! उफ।" और वह थोड़ी देर के लिए आँख मूँद कर फिर से लेट गई। इसके बाद उठकर बोली—"हम अभी नहीं चल सकते किशोर ?"

अभी कैसे चल सकते हैं। इस समय न तो स्टेशन जाने के लिए कोई मोटर ही है और न स्टेशन से कोई गाड़ी ही।"

सुन कर अमला के चेहरे पर एक आकुलता खेल गई। कुछ देर तक उसने कोई जवाब न दिया। फिर एक गहरी साँस खींचते हुए

कहा—"म ईश्वर को नहीं मानती किशोर और न ईश्वर के बारे में सोचने का कभी मुझे मौका ही मिला है। फिर भी उस अपरिचित ईश्वर के प्रति आज प्रार्थना करती हूँ कि मैं उन्हें अच्छी तरह से देखूँ।"

अमला की आँखें छलछला आईं। जिन आँखों में हमेशा चंचलता खेलती थी। उन आँखों में आज पहली बार किशोर ने आँसू देखे। उसकी आँखों की सरसता ने किशोर की उदासीनता को भी भिगो डाला। किशोर ने पूछा—"अमला पत्र तो पढ़ा। जिसने लिखा है उसकी असीम घृणा का परिचय भी मिला, किन्तु फिर भी पत्र एक रहस्य ही रहा।"

अमला ने कहा—"उस रहस्य को आज सुलझाऊँगी किशोर। अब वह दिन आ गया है जब सब कुछ तुम्हें बताऊँगी। तुमसे कुछ भी न छिपाऊँगी। किशोर दिन आयेगा, यह मैं जानती थी, लेकिन यह इस रूप में आयेगा इसका विश्वास नहीं था।"

: ३० :

अमला ने अपनी कहानी सुनाई और शुरू से ही सुनाई।

उसके स्वर्गीय पिता तब तक स्वर्गीय न हो पाए थे, इस संसार को ही उन्होंने एक सुखद स्वर्ग के रूप में मान रखा था। वे डाक्टर थे। अच्छी-खासी आमदनी थी और अच्छे-खासे आदमी भी थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा शुरू से ही पाश्चात्य प्रणाली पर ही हुई थी और आखिर तक वे उस प्रणाली के प्रण को न भूल पाए। यद्यपि उनकी आली यानी कि पत्नि उनकी इस प्रणाली के घोर विरोध में थीं। किन्तु उनकी कड़ी आवाज ने प्राचीन सभ्यता में प्रतिपालित उनकी पत्नी के विरोध

को सहज ही में रोक डाला और अपनी सन्तान जो कि तीन कन्याओं के रूप में थीं, उन तीनों कन्याओं को शुरू से ही अंगरेजी के माध्यम में शिक्षा देने की व्यवस्था की।

इस व्यवस्था से वय-अवस्था पर आकर अमला की माँ को अपनी लड़कियों के अत्याचार असह्य हो उठे। पिता और पुत्रियों में अमला की माँ को चिढ़ाने के लिए एक मज़ाकिया वार्तालाप होता था और वह था उनके ठाकुर जी को लेकर। उनके मैके वाले कट्टर वैष्णव थे और विशाल दहेज के साथ-साथ वह मैके से एक छोटी सी गोपाल जी की मूर्ति भी लाईं थीं। उन गोपाल जी को लेकर पिता-पुत्रियों में एक अच्छा-खासा प्रहसन होता। जिसमें गोपाल जी के लिए औषधि निर्वाचन पर तर्क-वितर्क होता। पिता का कहना था कि जब गोपाल जी इतनी मिठाइयाँ और पकवान उड़ाते हैं तो कभी-न-कभी उन्हें अजीर्ण की शिकायत होना अवश्यम्भावी है। पुत्रियाँ अविरोध इस बात को स्वीकार कर लेतीं। लेकिन जब पिता चिकित्सा के लिए अंगरेजी दवाइयों के नाम का प्रस्ताव करते तो लड़कियों को इसमें विरोध था और वे आयुर्वेद का पक्ष ग्रहण करतीं। साथ में अंगरेजी दवाइयों से ठाकुर जी का धर्म भ्रष्ट होने की युक्ति होती। आखिर में जब बहस की गति में उष्णता आ जाती तो पिता की तरफ से लड़कियों की माँ को मध्यस्थ बनाने का प्रस्ताव होता। अमला की माँ उनकी बातों को सुनतीं और उनकी आँखों से आँसू की बूँदें टपकने लगतीं। यह आँसू उनकी पुत्री और पति के लिए एक मनोविनोद की सामग्री थी।

लेकिन सभी पुत्रियों के लिए यह बात लागू न थी। उनमें सबसे बड़ी निर्मला को माँ से सहानुभूति थी और कुछ दिन बाद माँ की इस व्यथा का अनुभव उसने अच्छी तरह किया। इसके बाद जब कभी अमला के पिता और अमला की मझली बहन इस ढंग की मजाक के लिए तैयार होती तो वह उन सब से भिड़ जाती और मूर्ति-पूजा के

विरोध में बोली गई उनकी बातों का ऐसा करारा जवाब देती कि उनकी बोलती बन्द हो जाती। आखिर हार कर उन तीनों ने दो नाम-करण किए। निर्मला के लिए छोटे गुसाईं और उसकी माँ के लिए बड़े गुसाईं। किन्तु कुछ दिन बाद बड़े गुसाईं अचानक बीमार होकर चल बसीं और गोपाल जी की समस्या सबके सामने आई।

पिता ने प्रस्ताव किया कि गोपाल जी का समारोह के साथ गंगा में विसर्जन कर दिया जाय। किन्तु निर्मला ने इसका विरोध किया और उस पूरी तरह अँग्रेजी वातावरण में पली हुई निर्मला ने गोपाल जी की पूजा का भार अपने ऊपर ले लिया।

यह साल उसकी पढ़ाई की आखरी साल था और एम. ए. फाइनल की परीक्षाओं के दिनों में भी वह गोपाल जी की तरफ से लापरवाह न रही। उनकी नित्य नैमत्तिक पूजा तथा भोग प्रणाली में रंच मात्र भी शिथिलता उसने न आने दी। परीक्षा समाप्त हुई और उसका नतीजा आया आशातीत। निर्मला को यूनिवर्सिटी भर में द्वितीय स्थान मिला था। सभी ने आश्चर्य किया। अमला और सुनीला ने मजाक उड़ाया—"दीदी! यह सब गोपाल जी की दया ही मालूम पड़ती है।"

लेकिन निर्मला ने उत्तर दिया गम्भीरता के साथ ही—"बिल्कुल सही है बहिन! इसमें शक की गुंजाइश नहीं है।"

बात सुन कर दोनों ओठ दबा कर हँसीं। निर्मला ने कहा—"तुम लोग नहीं जानतीं। पूजा से चित्त में एकाग्रता आती है और एकाग्रता प्रत्येक कार्य में अवश्य सफलता लाती है।"

इस बार वे दोनों बहनें खुल कर हँस पड़ीं। लेकिन उस हँसी से वह जरा भी कुण्ठित न हुई। दिन प्रतिदिन निर्मला में परिवर्तन आता गया। सात्विकता आती गई। व्यवहार में, आहार में, और प्रत्येक कार्य में। धीरे-धीरे उसकी सारी विलासिता नष्ट हो गई। सादा पहनावा सादा भोजन, सादा रहन-सहन, यह मानो उसके अंग हो गए। उसने माँस-मछली खाना छोड़ दिया। सौन्दर्य प्रसाधनों से एकदम हाथ

खींच लिया। शुरू-शुरू में निर्मला के पिता ने यह एक मजाक समझा था। लेकिन जब दिन-दिन उसके आचरण में परिवर्तन आता गया तो विलासिता के वातावरण में पले हुए उसके पिता के लिए यह चिन्तनीय विषय हो गया। उन्होंने पुत्री को समझाने की कोशिश की। किन्तु निर्मला ने सादगी के पक्ष में अनेक युक्तिसंगत बातें बता कर उन्हें समझाना चाहा। वे तो खुद ही समझाने का इरादा लेकर आए थे। उनके समझाने का तो सवाल ही न उठता था। किन्तु विदुषी पुत्री के तर्कसंगत उत्तरों से निरुत्तर होकर एक चिन्ता लेकर उठ गए।

कुछ दिन बाद निर्मला का विवाह हुआ। निकट भविष्य में ही इग्लैण्ड-यात्रा करने वाले एक नवयुवक से साथ। अमला और सुनीला ने सोचा था कि निर्मला विरोध करेगी। लेकिन उसने रंच मात्र भी विरोध न किया। न तो वाणी से ही और न दिल से ही। वह अपने पिता के इस पति-निर्वाचन से सन्तुष्ट थी।

विवाह हुआ और विवाह के कुछ दिन बाद उसके पति ने इग्लैण्ड-यात्रा की। कुछ दिन उसके पति के पत्रों की मानो सावन की सी झड़ी लग गई और फिर बूँदा-बाँदी। इसके बाद पत्रों का वर्षा-काल शेष हुआ। माहोटे की वर्षा की तरह यदा-कदा दर्शन होने लगे और इसके बाद बिलकुल अनावृष्टि। जिस तरह अनावृष्टि काल में कृषक की प्यासी आँखें हमेशा आकाश की ओर लगी रहती हैं उसी तरह निर्मला की आँखें लगी रहतीं पोस्टमैन की तरफ। घर की डाक प्रायः रोज ही आती। बड़े-बड़े किताबों के पैकेट आते। पिता के बन्धु-बान्धवों के पत्र आते। निमंत्रण के कार्ड आते। किन्तु वह पत्र न आता, जिसकी उसे प्रतीक्षा थी और न वह कभी आया ही।

इन्द्रराज ने अपनी सारी वर्षणी शक्ति सावन में ही शेष कर दी थी। अब तो मानो वहाँ जल की एक बूँद भी बाकी न रही थी और रही भी हो तो वर्षा के लिए और दूसरा भी तो स्थान था।

पाठ्यकाल समाप्त करके निर्मला के पति लौटे। विदेश की लम्बी

चौड़ी पदवी लेकर और साथ-साथ एक अंग्रेज-कोचवान-पुत्री का पाणि-ग्रहण करते हुए। उनके सम्मिलित पाणी युगलों को निर्मला ने बम्बई के बन्दरगाह पर भीड़ में खड़े हुए ही देख लिया और देखने के बाद वह चुपचाप भीड़ में मिल गई।

और उसी दिन बम्बई के एक होटल के मैनेजर का एक टेलीग्राम उसके पिता को मिला। यह निर्मला की मृत्यु का टेलीग्राम था। पोटा शियम सायनाइड खाकर उसने आत्महत्या कर ली।

निर्मला के पिता ने सुना। क्रोध से उनकी मुट्ठियाँ बँध गईं। दाँत पीस डाले। उन्होंने केस चलाया। किन्तु बार एटलॉ जमाई के मुकाबिले उनकी करारी हार हुई।

और उस दिन से अमला के ऊपर एक चिरस्थायी प्रभाव पड़ा। वह था पुरुषों के प्रति एक घृणा-सम्पूर्ण पुरुष, जाति के प्रति एक विद्वेष। इसके बाद एक घटना और घटी और उस घटना ने अमला के जीवन को एक नया ही घुमाव दिया।

कुछ दिन बाद सुनीला का विवाह हुआ और उसके पति अच्छे ही मिले। पति का सम्पूर्ण प्यार उसे मिला। सुनीला के पति अपनी पत्नी की मानो छाया थे। वह उसके इशारे पर नाचते थे। उसकी खुशी को अपनी खुशी समझते थे और उसे खुश करने में ही अपने जीवन को सार्थक मानते थे। वह रेलवे के एक उच्च अधिकारी थे। सुन्दर थे, प्रियः दर्शन थे और मिष्ट-भाषी थे।

पूजा की छुट्टियों में उन्होंने बम्बई का पास लिया और पास लेने से पहले अमला से भी प्रस्ताव किया कि अपनी बहन के साथ वह भी बम्बई घूमने चले। अमला की छुट्टियाँ थीं और छुट्टियों से उसे एक नफरत सी हो गई थी। छुट्टियाँ उसके लिए उदासीनता लातीं। मातृ-विहीन उसका घर निर्मला की मौत और सुनीला के विवाह से बिल्कुल सूना हो गया था। इसलिए छुट्टियों के दिन उस सूनेपन में उसे बहुत ही बुरे लगते थे। घर में टिकने को मन नहीं करता और बाहर उसकी

सहेलियाँ कहीं-न-कहीं घूमने को निकल जाती थीं। अमला ने अपनी बहन और बहनोई के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। बम्बई-यात्रा हुई और बम्बई में ही उपरोक्त घटना घटी। यद्यपि खेल-खेल में तथा मज़ाक में ही, किन्तु उस खेल और मज़ाक ने उसके मन पर, विचारों पर, और जीवन पर चिरस्थायी प्रभाव किया।

बम्बई के एक मध्य श्रेणी के होटल में वे लोग ठहरे। पूजा की छुट्टियाँ थीं। होटल के सभी कमरे भरे हुए थे।

अमला को बम्बई के दर्शनीय स्थान अच्छे लगे। दिन भर वे लोग घूमते, रात में कोई अच्छा पिक्चर देखते और या फिर होटल के बरामदे में कुर्सियाँ डाल कर मनोविनोद करते। कभी सुनीला का पति हँसने वाले चुटकले सुनाता। कभी कविताएँ और कभी-कभी उनमें बहस छिड़ जाती। कभी राजनीति पर तो कभी समाज-नीति पर।

उस दिन भी बहस चल रही थी। बहस की शुरूआत राजनीति से ही हुई थी। किन्तु कब उसका पहलू हट कर बिल्कुल भिन्न विषय पर आ गया, इसका किसी को पता भी न रहा। बहस राजनीति से राजनैतिक नेताओं पर उतरी और फिर उनके पारिवारिक जीवन पर। लेकिन जब बहस ने फिसलना ही शुरू किया था तो भला वह उन नेताओं के पारिवारिक जीवन पर ही क्यों स्थिर होकर ठहरती। अब उसका रूख बिल्कुल दूसरी ओर हो गया था। पति और पत्नी के सम्बन्धों को लेकर बहस का रूख आ खड़ा हुआ।

किसी बात का उत्तर देते हुए सुनीला के पति नारायण मुखर्जी ने कहा—"यह ठीक है अमला! लेकिन छोटे-मोटे झगड़ों से पति-पत्नी के मन में कभी भी मलिनता नहीं आती। बल्कि यों कहो कि वे छोटे-मोटे झगड़े उनके प्रेम में आई हुई थकान को दूर कर देते हैं। जिस तरह भोजन करते-करते जब आस्वाद में कुछ नीरसता सी आ जाती है, उस वक्त तिक्त खट्टे इत्यादि पदार्थों को खाने से फिर से भोजन में एक रुचि पैदा हो जाती है। इसलिए जरूरी है कि पति-पत्नी के बीच-बीच में छोटी-

मोटी लड़ाई हुआ करें। मेरे एक मित्र हैं। अमला उनकी बात सुनोगी तो तुम हँसोगी। वे बीच-बीच में अपनी पत्नी से कह कर उसे इसके लिए तैयार करते हैं कि वह उनसे जरा देर के लिए लड़े और एक छोटी सी लड़ाई का अभिनय उनके बीच में होता है। दोनों ओर से खूब गर्मा-गर्म बहसें होती हैं। इसके बाद चलती है खुशामद और नाज नखरे। कभी वे अपनी पत्नी को मनाते हैं और कभी पत्नी उनको। इससे क्या होता है अमला! जानती हो? उनके सम्बन्धों में जो एक हल्की सी थकावट आ जाती है, वह मिट जाती है। विरक्ति का नामो निशान तक बाकी नहीं रहता। लड़ाई के बाद जब मेल होता है तो बड़ा सुहावना लगता है। ठीक ग्रीष्म के बाद शीतल हवा की तरह।"

अमला ने कहा—"मुखर्जी साहब! वह लड़ाई दूसरे ढंग की है। वह केवल मात्र एक अभिनय है। ठीक उसी तरह जिस तरह लक्ष-लक्ष मन अन्न को अपने भण्डारों में भर कर रखने वाले निराहार रह कर एकादशी-उपवास का अभिनय करते हैं। यह उसी ढंग की चीज है। पास रख कर उपभोग न करने में एक मज़ा है। एक आनन्द है। किन्तु जिसके पास अभाव है। जिसके पास है ही नहीं। उनसे पूछो इसकी कथा। उनसे पूछो उपवास और निराहार की वेदना, उसका कष्ट। जिनके पास अन्न का एक दाना नहीं है, वे लोग जब उपवास करते हैं तो इस उपवास के कष्ट की पूर्ण उपलब्धि करते हैं और वे लोग जिनके सब कुछ है वे तो केवल मात्र अभिनय के आनन्द की ही उपलब्धि कर पाते हैं। सचाई से कोसों दूर रह कर एक मिथ्या आनन्द की कल्पना करते हैं। क्योंकि वह केवल मात्र अभिनय है न। उसमें अगर होती विवशता तो पूछते उन लोगों से उपवास का आनन्द। उसी तरह जो लोग प्रेम की थकान मिटाने के लिए झगड़े का अभिनय करते हैं, उन्हें तो मज़ा आयेगा ही पति को भी और पत्नी को भी, किन्तु पूछे उनसे, उन पत्नियों से, जिनसे प्रेम ही नहीं, शरीर की थकान मिटती है। लात घूसों से और मुख रोचक गालियों से सारे दिन

परिश्रम से क्लान्त उनके शरीर को जब आवश्यकता होती है प्रेम शब्दों के आहार की तो प्रहार के भार से पीड़ित उन पत्नियों से पूछो कि पति-पत्नी में झगड़ा होने की जीवन के लिए कितनी बड़ी आवश्यकता है। उनसे मिलेगा आपको ठीक जवाब।"

अमला और भी कुछ कहने जा रही थी। लेकिन नारायण ने बीच में ही रोककर कहा—"एक बात तुम भूल जाती हो अमला। केवल क्या पति ही पत्नियों पर अत्याचार करते हैं। पत्नियाँ भी दुनियाँ में ऐसी सैंकड़ों हैं जो पतियों पर अत्याचार करती हैं। उन पर शासन रखती हैं।"

अमला ने कहा—"कुत्ते बल्लियों को मारते हैं। यही तो हमेशा सुना है। अगर कभी किसी बिल्ली ने कुत्ते को मार डाला हो तो वह नियम नहीं व्यतिक्रम है।"

नारायण को एक मज़ाक सूझी। हँस कर बोले—"व्यतिक्रम कैसे है? दूर क्यों जाती हो। इसका ज्वलन्त प्रमाण तुम्हारे सामने ही जो मौजूद है।"

और उन्होंने अपनी पत्नी सुनीला की ओर इंगित कर दिया। सुनीला ने मुस्कराते हुए भौंहों पर ज़रा सा बल डालते हुए कहा—"अजी हाँ हाँ! भला मुझ से ज्यादा अत्याचार करने वाली पत्नी और दुनियाँ में होगी कौन? और तुम से ज्यादा सीधा आदमी भी दुनियाँ में ढूँढ़े ही मिलेगा?"

नारायण ने कहा—"सीधा न होने पर भी सीधा बनना पड़ता है। पुरुष सीधे नहीं होते, औरतों की तुलना में वे हमेशा चतुर होते हैं, परन्तु दुनियाँ के प्रत्येक बड़े से बड़े आदमी को भी अपनी पत्नी के सामने कुछ बेवकूफपने का अभिनय करना पड़ता है।"

सुनीला कुछ कहने जा रही थी लेकिन अमला ने हाथ के इशारे से उसे रोकते हुए कहा—"ठहरो दीदी! हाँ मुखर्जी साहब आप क्या कह रहे थे। औरतों की तुलना में पुरुष चतुर होते हैं।"

"हाँ यही कह रहा था। क्यों कोई आपत्ति है क्या ?"

"सोलहो आने आपत्ति है। आपने तो बिल्कुल उल्टी बात कही। मुखर्जी साहब ! पुरुषों में जिस उम्र में अक्ल आती है, उससे दस साल पहले औरतों में उनसे दुगनी अक्ल आ जाती है। औरतें जब बेवकूफ बनती हैं तो समझ लो कि वे जान बूझकर ही बनती हैं।"

नारायण हँस पड़े ! बोले—"यह तुम्हारी तर्क आधारहीन है। इसका कोई प्रमाण तुम्हारे पास नहीं है।"

अमला भी हँसी ! बोली—"अगर प्रमाण से ही प्रत्येक बात की पुष्टि होती हो तो इसका ऐसा अच्छा प्रमाण दे सकती हूँ कि आपको सारे जीवन भर याद रहे। लेकिन क्या करूँ दीदी नाराज होंगीं। और आप को भी पहले मैंने बता दिया है, आप सावधान हो जायेंगे। इसीसे नहीं तो दिखा देती कि पुरुष कितने बेवकूफ होते हैं।"

नारायण ने हँस कर पूछा—"क्या करतीं ? अपनी दीदी के पल्ले से छुड़ा कर। अपने पल्ले से बाँधने की कोशिश करने का इरादा और क्या ?"

अमला ने हँस कर कहा—"मेरे पल्ले से बँधना इतना सहज नहीं है। बाँधती बेवकूफी के पल्ले से आपकी न खुलने वाली गाँठ।"

सुनकर नारायण हँस पड़े। सुनीला भी हँसी और अमला भी। राजनैतिक गुत्थी सुलझाते न जाने कौन-कौन गुत्थियाँ सुलझ गईं। तर्क का सिलसिला खत्म हो चुका था। सभी चुप हो गए। कुछ देर चुप रह कर अमला ने कहा—"अच्छा मुखर्जी साहब ! बम्बई आये हैं। कोई ऐसा काम करना चाहिए जिसकी याद बहुत दिनों तक रहे। कोई अच्छी खासी मजेदार मजाक। इसके लिए आपको कुछ करने की जरूरत नहीं। मैं करूँगी। मजेदार मजाक भी होगी और पुरुषों की बुद्धि की लम्बाई चौड़ाई का नाप भी अच्छी तरह आपको दिखाऊँगी।"

"क्या करोगी ?" सुनीला ने पूछा।

अमला ने कहा—"अभी क्यों बताऊँ ? जो कुछ करूँगी वह मेरे मन

में है। वह सामने के कमरे में जो युवक बैठा है वह होगा मेरे परीक्षरण का केन्द्र बिन्दु।"

बात समाप्त करके वह हँसी और उसकी हँसी ने सुनीला के मन में एक भय पैदा कर दिया। शुरू से ही अमला ऊधमी रही है। बचपन से ही वह उत्पातों का एक कोष सा जमा करती रही है। घर में सबसे छोटी होने की वजह से पूरे घर का प्यार उसे मिला है और उस प्यार ने उसे बनाया है, ऊधमी, उत्पाती और शैतान। उसके उत्पातों के पचासों किस्से आज भी सुनीला को अच्छी तरह याद हैं। उन सबकी याद करके सुनीला ने कहा—"देखो अमला! अब तुम बच्ची नहीं रहीं। बचपन के ऊधमों की फिर से शुरुआत अब इस उम्र में ठीक नहीं।"

अमला ने कहा—"घबराओ नहीं दीदी! यह बचपन की बच्ची का ऊधम नहीं होगा। उम्र और ऊधम के सम्बन्ध में मैं जरा भी फर्क न आने दूँगी।"

सुनीला उसकी बात का आशय पूरी तरह न समझ पाई। अमला सुनीला की उम्र में कुल दो साल का फर्क था। इसलिए उम्र के इस अल्पव्यवधान ने संकोच का पर्दा ज्यादा न रखा था।

× × ×

दूसरे दिन उन लोगों की एक परिचित बम्बई प्रवासी मित्र के यहाँ दावत में जाने की बात थी। यथासमय उन परिचित मित्र की गाड़ी उन्हें लेने आई। अमला ने सर दर्द का बहाना करके जाने से मना कर दिया। आराम करने को कह कर सुनीला और उसके पति दोनों चले गए। और उनके जाते ही अमला ने अपने कल के संकल्प को अध्यवसाय का रूप दिया। सामने के कमरे में जो युवक ठहरा हुआ था वह भी बंगाली था। उम्र थी करीब अट्ठाइस-तीस साल। पतला, इकहरा शरीर, गोरा रंग और अंगरेजी पोशाक। उसके सर के बाल काफी लम्बे थे, जिनमें लहरें पड़तीं थीं। आँखों पर चश्मा था, जिसका फ्रेम जनाने ढंग का था

यानी कि सुनहला। सब कुछ मिला-मिलूकर उस युवक को एक कलाकार की श्रेणी में ला खड़ा करता था।

दो दिन पहले जब अमला बरामदे की इजी चेयर पर बैठी अखबार पढ़ रही थी, तो वह युवक भी अपने कमरे के बरामदे में आ बैठा और सामने एक अखबार रख कर तल्लीनता से मानो उसमें डूब गया। लेकिन अमला ने देखा कि वह सिर्फ बहाना था। वस्तुतः अखबार की आड़ लेकर उसकी आँखें अमला के ऊपर जमी थीं। शुरू-शुरू में अमला को गुस्सा आया। इच्छा हुई कि डाँट कर कहे कि क्या मेरे चेहरे पर कोई इबारत लिखी है और फिर असभ्य, अशिष्ट आदि कह कर दो-चार गालियाँ भी दे डाले और यह बात उसके लिए कोई नई भी न थी। दसियों मनचले नवयुवकों को कलकत्ते में उसकी ऐसी कड़ी डाँट खाने का सौभाग्य मिल चुका था जिसे खाकर उनको जीवन में मुँह दिखाने की हिम्मत तक न रही थी।

लेकिन इसी गुस्सा के बीच में उसे एक मजाक सूझी और अपने मस्तिष्क में इस नवीन आविष्कृत मजाक की कल्पना से वह मन-ही-मन खूब जी भर कर हँसी। इसके बाद मुखर्जी साहब की बातों ने उसकी उस कल्पना को और भी मजबूती दे दी। उसने सोचा मजाक भी रहेगा और मुखर्जी साहब को दिखा कर शर्मिन्दा भी किया जा सकेगा कि पुरुष कितने बेवकूफ होते हैं।

सुनीला और नारायण के जाते ही वह अपने कमरे से निकली और बेधड़क बिना किसी संकोच अथवा कुंठा के उसने उस युवक के बन्द किवाड़ों पर दस्तक दी।

किवाड़ खुले और सामने अपने सपनों की साकार प्रतिमा को देखकर वह युवक कुछ अप्रस्तुत-सा हो उठा। घबड़ाहट में उसके मुँह से एक शब्द भी न निकला। अमला ने देखा वह कुछ घबड़ाया सा था और उसका शरीर हल्के ढँग से काँप रहा था। देख कर वह मन-ही-मन मुस्कराई और इन हरकतों से उसने उस युवक का मनोवैज्ञानिक

ढंग से अध्ययन भी एक क्षरण में ही कर डाला। अमला ने कहा—"माफ करिए। आपको तकलीफ दी। आप शायद आराम कर रहे थे।"

"जी नहीं।...हाँ...नहीं...मैं...आराम।"

युवक के मुँह से जो शब्द निकले उनसे कोई वाक्य रचना नहीं हो सकती।

अमला ने कहा—"कल आपके हाथ में वीकली देखी थी?"

व्यावहारिक इस वाक्य से युवक सँभल गया, बोला—"जी। इलस्ट्रेटेड वीकली।"

"जी आप उसे पढ़ तो नहीं रहे।"

"जी नहीं। आपको जरूरत हो तो ले जा सकती हैं।" और वह तेजी से वीकली उठा लाया। अमला की तरफ बढ़ाते हुए बोला—"लीजिए। मैं पढ़ चुका हूँ। जब तक आप पढ़ना चाहें, पढ़ें। लौटाने की कोई जल्दी न कीजिए।"

अमला ने कहा—"मुझे और कुछ नहीं पढ़ना, इसमें एक क्रासवर्ड निकलता है उसी के लिए जरूरत है। मैं बराबर क्रासवर्ड भेजती हूँ।"

युवक काफी संभल चुका था, मुस्करा कर बोला—"कभी कोई पुरस्कार भी मिला है?"

अमला ने कहा—"पुरस्कार लेकर क्या करूँगी साहब, कार मिल जाये यही क्या कम है?"

युवक ने हँस कर कहा—"आप तो बड़ी हाजिरजवाब मालूम देती हैं।"

लेकिन प्रशंसा के गौरव की प्रसन्नता अमला ने जाहिर न की और न उसका कोई जवाब ही दिया, बोली—"इनाम के लालच से कभी भी क्रासवर्ड मैं नहीं भेजती। यह सिर्फ एक हॉबी है।"

"अच्छी हॉबी है। पेड़ भी गिनिये और पड़ा हुआ मिल जाए तो आम भी उठा कर खाइये।"

जवाब में अमला हँस पड़ी और उस हँसी ने युवक के अन्तःकरण को गुदगुदा दिया। चलते-चलते अमला ने पूछा—"आप भी क्रासवर्ड में दिलचस्पी रखते हैं क्या ?"

"जहाँ तक दिलचस्पी का सवाल है, थोड़ी-बहुत रखता जरूर हूँ। लेकिन एक बार भी मैंने क्रासवर्ड भेजा नहीं है।"

"दिलचस्पी तो है ?"

"कहा न, थोड़ी बहुत है।

"तो फिर आइये, दोनों मिलकर कोशिश करें।"

चकोर को जैसे चाँद मिला हो। युवक की आँखें चमक उठीं। दिल जैसे उछल पड़ा और उस दिल की उछलाहट को उसने व्यक्त भी कर डाला, बोला—"मैं अपने को बड़ा भाग्यवान समझूँगा।"

अमला ने पूछा—"तो आप ही के कमरे में बैठा जाय ?"

"जी हाँ आइये ! हृदय के साथ स्वागत है।"

युवक ने छोटी गोल मेज के सामने दो कुर्सियाँ लगाईं, बिल्कुल आमने-सामने। बहुत देर तक वे दोनों उस पहेली में उलझे रहे। एकाध शब्द पर थोड़ा बहुत मतभेद भी हुआ। लेकिन आखिर क्रासवर्ड की समस्या पूरी हो गई। क्रासवर्ड समाप्त करके अमला ने कहा—"इतनी देर तक आप से झगड़ा करती रही, लेकिन मजा यह है कि आपसे परिचय भी न पूछ पाई। बताइये मुझसे बड़ी बेवकूफ कौन होगी ?"

युवक ने कहा—"यह गलती तो आप अकेली से नहीं हुई। मुझसे भी हुई है। मुझे आपका परिचय पूछना चाहिए था।"

अमला ने कहा—"तो सुनिए, पहले मैं ही अपना परिचय दे डालूँ।"

और अमला ने अपना पूरा परिचय सुना डाला, फिर कहा—"अब आपकी बारी है।"

युवक ने बताया उसका नाम है अमर मजूमदार। रहने वाला

पूर्वीय बंगाल का है, किन्तु अधिकांश कलकत्ते में ही रहा है। जहाँ की यूनिवर्सिटी से करीब आठ साल पहले बी० ए० पास किया। इसके बाद एक जगह सर्विस भी की। लेकिन चित्रकारी की हॉबी की वजह से सर्विस छोड़ दी। बड़े भाई दिल्ली में सैक्रेटेरियेट में काम करते हैं। उन्हीं के पास रहता है। इस महीने बम्बई रहने का इरादा है।

सुनकर अमला ने प्रसन्नता जाहिर की, बोली—"बड़ा सौभाग्य मेरा जो एक चित्रकार से परिचय हुआ।"

आत्मप्रशंसा से आनन्दित होने पर भी सुनने की सामर्थ्य बिरले महापुरुषों में ही होती है। युवक के कपोल लाल से हो उठे।

अमला ने कहा—"यह तो हुआ मजूमदार साहब! लेकिन ताज्जुब इस बात का है कि इतने दिनों तक हम लोग एक होटल में रहते हुए और साथ-साथ बंगाली होते हुए भी एक दूसरे से अपरिचित रहे। नारी होने की वजह से मेरे अन्दर कुछ संकोच होना चाहिए एक अपरिचित व्यक्ति से परिचय करने का। किन्तु आपके अन्दर तो यह चीज न होनी थी। आपको अब तक हम लोगों से परिचय करना था, किन्तु विचित्र हैं आप। आपने वैसी कोई भी कोशिश न की और आखिर हार कर मुझी को अग्रसर होना पड़ा।"

युवक फिर शर्मिन्दा हो गया। अमला ने कहा—"अच्छे आदमी हैं आप तो।"

युवक कुछ सँभला, बोला—"आपकी बात सही है। लेकिन इसका एक कारण है, उसे आप सुनेंगी तो हँसे बिना न रह सकेंगी।"

"तब तो जरूर सुनाइये। एक तीर से दो चिड़ियों का शिकार होगा। हँसना भी मिलेगा, साथ-साथ कारण भी मालूम होगा; सुनाइये।"

अमर ने कहा—"जब मैं छोटा था तो एक प्राइमरी स्कूल में पढ़ता था, उस स्कूल में एक मास्टर थे। नाम था सूर्यकान्त सिंह। बिलकुल नाम के अनुरूप ही उनका स्वभाव था, और पदवी के अनुरूप आकृति।

शुरू से ही उनके प्रति एक ऐसा डर पैदा हो गया कि स्कूल तो स्कूल घर पर भी कभी-कभी सपने में उन्हें देखकर चिल्ला पड़ता और आज इस बात को दिन भी बहुत हो गए हैं और मैं बच्चा भी नहीं रहा। फिर भी उस आकृति का भय मेरे मन से पूरी तरह नहीं जा सका है। तब से उन्हें देखा नहीं है। किन्तु आज भी अगर वे मेरे सामने आकर खड़े हो जायँ तो मेरी हालत बिगड़ जायगी और माफ करिये उनकी आकृति मिलती जुलती है उन सज्जन से जो आपके साथ हैं।"

अमला ने हँसते हुए पूछा – "मेरे बहनोई जी से।"

"वे आपके बहनोई हैं ?"

"जी !"

"जी हाँ तो उनकी आकृति और मेरे उन मास्टर साहब की आकृति में बिलकुल भी फर्क नहीं है। इससे पहले मैं इस सिद्धांत का कायल था कि कोई भी दो सूरतें बिल्कुल एक सी नहीं होतीं। लेकिन जैसे ही वे आपके साथ होटल में आए, मैं उन्हें देखकर हक्का-बक्का रह गया। भूल तो अवश्य टूटी। किन्तु सिद्धांत भी अटल न रह सका। भूल टूटी उस वक्त जब आपको उन्हें मुखर्जी साहब कहकर पुकारते सुना। तब समझा कि यह वह नहीं हैं। यह कोई उनके तदनुरूप अन्य हैं। किन्तु फिर भी भय से एक दम मुक्त न हो सका।"

हँसते-हँसते अमला का बुरा हाल था। वह कुर्सी से गिरते-गिरते बाल बाल बची।

बिना हँसे अमर ने कहा—"मैंने पहले ही कहा था कि आप सुन कर बिना हँसे न रह सकेंगी। लेकिन एक चीज को याद रखिए। मनो-विश्लेषण नाम की भी एक चीज है और उसके अनुसार प्रत्येक वस्तु का प्रभाव मानव-मन के ऊपर पड़ता है।"

अमला की हँसी में इस गम्भीर सिद्धांत से कुछ शिथिलता सी आ गई। अमर ने कहा—"आप जानती हैं हम किसी के प्रति पहली नजर में ही कुछ धारणाएँ क्यों बना लेते हैं।"

अमला ने सर हिलाकर जताया कि नहीं जानती। अमर ने कहा—"पहली नजर में ही हम किसी से भय क्यों करने लगते हैं। या किसी के प्रति आकर्षित क्यों हो जाते हैं। अथवा किसी को पहली नजर में ही नफरत क्यों करने लग जाते हैं। जानती हो इसका कारण ?"

अमला ने मुस्कराते हुए सर हिला दिया। उसे भीतर-ही-भीतर बड़ी जोर की हँसी आ रही थी। किन्तु प्राणपण से चेष्टा करके वह उस पर काबू करने की कोशिश कर रही थी। उसकी हँसी के लिए यहपहली खुराक शेष हो चुकी थी और उसके स्थान पर एक नई खुराक मिली थी जो पहली से भी ज्यादा मुख-रोचक थी और वह थी इस युवक की चतुराई, या चतुराई प्रदर्शन करने का ढंग। यह अमला को मन ही मन मानना पड़ा कि युवक चतुर है और किसी चीज में न सही कम से कम इस बात में जरूर है कि वह अपनी विद्वता का जब बुखार उतारने की कोशिश करता है तो प्रसंग से बाहर होकर नहीं, प्रसंग के अन्दर ही।

अमर ने बुखार उतारने का श्री गणेश किया—"यही पहले लीजिय कि हम किसी के प्रति पहली निगाह में ही नफरत क्यों करने लग जाते हैं। इसके मुख्य तीन कारण हैं। पहला, वह आपको ऐसे किसी की याद दिलाता है जिसे आप पसन्द नहीं करतीं। दूसरा, वह आपको किसी ऐसी चीज की याद दिलाता है जिसे आप अपने में पसन्द नहीं करतीं। तीसरा, वह आपके आत्मविश्वास पर आघात पहुँचाता है और इन तीन कारणों के आधार पर हम किसी को पहली निगाह में ही नफरत करने लग जाते हैं।"

लेकिन अमला इतने बीच में हँसी पर काबू न पा सकी। वह खिल-खिला कर हँस पड़ी। युवक के जोश में एक बारगी शीतलता आ गई और उसका मुँह उतर गया। उसने पूछा—"आप हँस क्यों पड़ीं ?"

"मुझे आपकी पहली बातें याद आ गईं।"

अमर की गलतफहमी दूर हुई। उसने पहले यह समझा था कि

अकारण ही विद्वता के बुखार उतराव को देखकर ही शायद अमला हँसी हो। लेकिन जब उसे मालूम पड़ा कि वह पूर्वकथित वार्तालाप की याद करके ही हँसी है तो वह उसका जरा सी देर का संकोच मिट गया। वह बोला—"तो अब आपकी समझ में आया ये हैं तीन कारण जिनके लिए हम किसी से भय या नफरत करने लग जाते हैं। बिना उस से परिचित हुए, बिना उसके सम्पर्क में आए।"

अमला को एक मजाक सूझी। बोली—"मजूमदार साहब यह तो हुई पहली निगाह की नफरत की बात। लेकिन पहली निगाह के प्रेम का भी कुछ कारण बता सकते हैं ?"

अपनी आदत के अनुसार अमर के कान तक लाल हो उठे। लेकिन वह फौरन ही सँभल गया।

बोला—"इसे भी तीन कारणों में बाँटा जा सकता है। पहला कारण उसकी आकृति खींचने वाले को इतनी पसन्द आती है कि वह बरबस ही उसकी तरफ खिंच जाता है। दूसरी बात वह किसी ऐसी चीज की याद दिलाता है जिसे खिंचने वाला पसन्द करता है। तीसरी बात वह बहुत आकर्षक है जिसकी तरफ स्वतः ही आकर्षित होना पड़ता है।"

अमला ने कहा—"यह तो हुई इकतरफा बात। एक पक्ष की खिंचने की बात। दोनों पक्षों को खींचने वाला कारण बताइये।"

थोड़ी देर तक अमर सोचता रहा फिर बोला—"दूसरे पक्ष का आकर्षण भी पहले पक्ष के दिल में आकर्षण पैदा कर सकता है। आपका प्रश्न है पहली निगाह में प्रेम कैसे हो जाता है। इसका सबसे बड़ा कारण यही हो सकता है कि दोनों पक्ष किसी कारण विशेष से या किसी आकर्षण विशेष से एक साथ आकर्षित होते हैं। क्योंकि आकर्षण एक प्राकृतिक वस्तु है।"

अमला ने कहा—"लेकिन एक बात है मजूमदार साहब, इस पहली निगाह की नफरत की बात आज का शिक्षित समाज मान सकता है।

लेकिन पहली निगाह में प्रेम की बात उन्हें कुछ जचती नहीं है। उसके लिए उन्हें दूसरी या तीसरी निगाह ठीक जचती है। आपने उपन्यास कहानियों की आलोचनाएँ अवश्य पढ़ी होंगी। जहाँ किसी लेखक ने नायक-नायिका को पहली निगाह में ही मिलाने की कोशिश की कि बस आलोचक पड़ गए हाथ धोकर उसके पीछे। उन्हें इस बात से खास चिढ़ है कि पहली निगाह में ही नायक नायिका को क्यों मिला दिया गया।"

अमर ने कहा—"कहानियों में कल्पना प्रधान होती है और कल्पना की आलोचना बड़े मजे से की जा सकती है। किन्तु जीवन तो कल्पना नहीं है। वह एक सत्य है। जीवन का प्रत्येक आचरण चाहे वह निंदनीय हो अथवा प्रशंसनीय उसमें सत्यता अवश्य है और किसी भी सत्य वस्तु की आलोचना कोई मायने नहीं रखती। इसके साथ-साथ एक बात और है कि जब नफरत पहली निगाह में किसी व्यक्ति विशेष के प्रति हो सकती है तो मुहब्बत क्यों नहीं हो सकती। वह भी नफरत की ही भाँति एक अनुभूति ही तो है और रही साहित्य की बात सो वह बिल्कुल भिन्न है। पढ़ने वाले चाहते हैं कुछ नवीनता। कुछ आँख मिचौनी और नवीनता के इच्छुक उन पाठकों को पहली निगाह में प्रेम हो जाने की असंख्यों कहानी पढ़कर उसमें कुछ सस्तापन नजर आता है और उस सस्तेपन का ही ख्याल करके आलोचक कलम घसीटता है और लेखक को इसके लिए बाध्य करता है कि वह नायक-नायिका को कुछ दिन आँख मिचौनी खिलवा कर ही उनमें प्रेम सूत्र स्थापित करे। अथवा पहले नायक नायिका में से किसी एक को दूसरे के प्रति नफरत का प्रदर्शन करायें और फिर उस नफरत को प्रेम में परिवर्तित कर दे। किन्तु इस बारे में मेरे बिल्कुल विभिन्न विचार हैं। मेरे विचार से प्रेम अथवा घृणा जो कुछ भी किसी के प्रति उत्पन्न होता है। वह पहली निगाह में होता है और वह पहली निगाह का ही संस्कार थोड़े बहुत अंशों में

आखिर तक काम रहता है। यों मनसतत्व की दुहाई देकर कुशल कलम किसी के भी जीवन को चाहे जिस तरह तोड़ मरोड़ सकती है।"

अमला को उस युवक की बातें कुछ विशेष विद्वतापूर्ण लगी हों सो बात नहीं। लेकिन एक बात उसे माननी पड़ी कि वह चतुर अवश्य है। उसे उल्लू बनाने का सुयोग्य पात्र समझकर जो अमला उसके पास आई थी उस सुयोग्य पात्र ने इन बातों से इस विषम में कुछ अयोग्यता प्रमाणित करदी और अगर उसके मन में पुरुष-जाति के प्रति एक बाहरी घृणा न होती तो शायद आज वह खुद ही उल्लू बन जाती। किन्तु वह घृणा उसकी सहायक थी। उसने उसे उस युवक के प्रति रंच मात्र भी आकर्षित न किया। लेकिन जब उसने सोचा कि उसका यहाँ आना ही व्यर्थ हो जाता है तो उसने अपने शिथिल साहस को फिर से बटोरा। बोली—"अमर बाबू ! मैं आपकी बातों से प्रभावित हुई। काफी प्रभावित हुई। आज का दिन मेरे लिए एक स्मृति बन कर रहेगा।"

अमर के चेहरे पर लज्जा की अनुभूति ने फिर से लाल तूलिका फेरी। कुछ देर तक वह जवाब न दे सका। फिर सँभल कर साहस बँटोर कर बोला—"अमला देवी आपने मेरे मन की बात छीन ली है। अवश्य यह नहीं कह सकता कि मुँह की बात छीन ली है। क्योंकि मेरे अन्दर इतना साहस नहीं है कि मुँह पर ऐसी बात ला सकूँ, किन्तु हृदय में ठीक वही बात थी जो आपने कही। हाँलाकि आपने जो कुछ भी कहा है वह शिष्टाचार के नाते कहा है। फिर भी जो कुछ कहा है उससे मुझे साहस मिला है और वह साहस मुझे अन्दर से ही प्रेरणा दे रहा है। या यह कहिए कि मुझे बाध्य कर रहा कि मैं और भी कुछ कहूँ।"

अमर चुप हो गया। किन्तु अमला नहीं चाहती थी कि वह चुप हो। उसकी पहली विद्वता का बुखार उतारने की बातें उसे इतनी अच्छी न लगी थीं जितनी अब उसकी प्रणय-भूमिका की बातें लगीं।

उसने मुस्करा कर कहा—"कहिए। आप जो चाहते हों कहिए। मैं सुनूँगी।"

अमर ने कहा—"मैं जानता हूँ आप सुनेंगी और यह भी जानता हूँ कि आप शिक्षित हैं। सम्भ्रान्त हैं और यह जानकारी मुझे विश्वास दिलाती है कि आप बुरा न मानेंगी।"

अमला ने देखा कि उसका संकल्प सिद्ध होने जा रहा है। भीतर से आते हुए प्रबल हँसी के वेग को जबरन रोकते हुए उसने कहा—"आप कहिए मजूमदार साहब।"

अमर की सूरत दयनीय हो गई थी। उसका निचला ओंठ हल्के ढंग से काँप रहा था। उसकी साँसों की गति तीव्र हो उठती थी। उसके शुभ्र विशाल ललाट पर स्वेद बिन्दु झलक आये थे और वह कुर्सी के एक तरफ लटके हुए अमला के हाथ की तरफ देख रहा था। मानो साहस बटोर रहा हो। उसने साहस बँटोरा और धीमे-धीमे कहना शुरू किया—"अमला देवी! आपने मुझसे अभी कुछ देर पहिले पूछा था कि पहली निगाह में प्रेम क्यों हो जाता है और मैंने उसके कुछ कारण बताने की कोशिश भी की थी। किन्तु वह कारण बताना केवल मात्र वाणी कुशलता ही था। असली कारण मैं स्वयं नहीं जानता। आपको जब तक न देखा तब तक उन्हीं कारणों पर विश्वास था जो मैंने आपको बताए। किन्तु ज्यों ही मैंने आपको देखा मुझे विश्वास हुआ कि जिन कारणों को मैं जानता हूँ उनमें से एक भी सत्य नहीं है। वह कोई दूसरी चीज है। कोई दूसरी अलौकिक वस्तु जिसे मैं नहीं जानता। जान भी नहीं सकता। वह मानो मेरे कल्पना से परे की वस्तु है। वह मानो मेरी विचार-शक्ति से बाहर की चीज है। आपसे परिचय आज हुआ है अमला देवी। किन्तु उस वक्त मालूम हुआ कि मैं आपको जन्म जन्मान्तर से जानता हूँ। मैंने इससे पहले आपको कभी भी नहीं देखा था। किन्तु आपको देखते ही मुझे ऐसा लगा है कि जैसे मैं युग-युग से ही आपको देखता आया हूँ।"

बातें सुनने में अमला को मजा आ रहा था। साथ-साथ संकल्प और अपने अभिनय की सफलता का भी वह आनन्द महसूस कर रही थी। किन्तु अब अभिनय में विशेष उग्रता लाना वह न चाहती थी। इसलिये अपेक्षाकृत गम्भीर हो गई और उस गम्भीरता को लक्ष करके अमर के उफान में मानो भाटा पड़ गया। वह चुप हो गया। फिर रूमाल से अपने माथे के पसीने को पोंछता हुआ बोला—"आप शायद बुरा मान गईं।"

अमला ने गम्भीरता पूर्वक ही कहा—"नहीं।"

"अगर आपने बुरा ही माना हो तो याद रखिए कि एक अभागा आपको बम्बई-यात्रा में मिला था। जिसने आपको तंग किया। परेशान किया और कुछ न सही एक परेशान करने वाले के रूप में ही आप मुझे याद रखिये।"

मन-ही-मन अमला ने कहा—"सो तो जरूर ही रखूँगी।"

सस्ती प्रणय-कहानी वाले अनेक सिनेमा अमला ने देखे थे और विश्वास था कि उनका वह अति शीघ्र तप्त कथानक सिनेमा तक ही सीमित रहता है। वास्तविक जीवन से न तो कोई उसका सम्बन्ध है और न उसकी कल्पना ही की जा सकती है। किन्तु उस कथानक का साकार रूप देखकर वह भीतर की हँसी पर मुश्किल से ही काबू कर पा रही थी। लेकिन उन सिनेमाओं की कहानी से भी यह सच्ची कहानी मानो विशेष असीम हो उठी थी। अमला ने सोचा हो सकता है कि इस युवक के ऊपर उन्हीं सिनेमाओं का प्रभाव हो; जिन्होंने वास्तविक जीवन से इसे इतना परे कर डाला हो। युवक का वह प्रेम सम्भाषण अप्रत्यशित था। अशातीत था। वार्तालाप में इतनी शीघ्रता से प्रेम की जूड़ी चढ़ आयगी यह विश्वास से बाहर की चीज थी। इसने मानो कहानियों को भी पीछे छोड़ डाला। कहानियों में भी नायक-नायिका की दो-चार ऐसी मुलाकातें होती हैं जिनमें एक दूसरे से मन की कोई बात नहीं कह पाते। आँ ों की मक भाषा ही कुछ दिनों तक हृदय की

गहराई का नाप प्रदर्शन करते हैं। किन्तु यह तो जैसे बिना मेघ के ही वज्रपात हो गया। यों उस युवक को प्रश्रय देने में उसका पूरा सहयोग था। या सहयोग न कह कर कहना चाहिए चेष्टा थी। फिर भी अमला को आशा न थी कि वह इतनी जल्दी आशा निराशा का विलाप करने लगेगा। भीतर से आने वाले हँसी के प्रवाह को रोकने में ओंठ अपने को असमर्थ पा रहे थे।

अमर कह रहा था—"आप मुझे किसी रूप में याद रखें यह मेरे लिए अत्ययंत सौभाग्य का विषय रहेगा। अमला देवी पुराने दिन निकल जाते हैं। नए आते हैं और कोई भी नया दिन पुराने दिन को कभी भी लौटा नहीं सकता। किसी भी दिन के पाए हुए सुख अथवा दुख को ठीक उसी हालत में फिर कभी भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। आज का यह दिन मेरे लिए चिर स्मरणीय होकर रहेगा। आज मैंने आपको अकेले में बैठा कर जो मन में आया कह डाला। यह दिन कभी भी नहीं लौट सकता। दुनियाँ की कोई भी शक्ति, कोई भी हस्ती इस दिन को वापिस नहीं ला सकती। आप मुझे भविष्य में मिलें तो भी और न मिलें तो भी दोनों हालतों में आज का यह शुभ दिन मेरे लिए चिरस्मरणीय होकर रहेगा। मेरे और आपके बीच में घनिष्टता और भी बढ़ी तब भी यह दिन हमारे प्रथम मिलन के रूप में कभी भी न भूलने वाला दिन बन कर रहेगा और मान लीजिए कि मेरे और आपके मिलने का यही शेष दिन हो तो भी मैं इसे नहीं भूल सकूँगा। यह एक दिन की याद मेरे लिए अमूल्य निधि बन कर रहेगी। मैं नहीं जानता कि आप मुझे याद रखेंगी या नहीं, फिर भी इतना जानता हूँ कि और कुछ न सही एक बेवकूफ के रूप में ही आप मुझे याद रखेंगी।"

अमला ने मन ही मन कहा—"उस याद रखने के लिए ही तो इतना सर-दर्द मोल लिया है। नहीं तो कब भी तुम्हारे सर पर चप्पलों का मृदु आघात जमा कर चम्पत हो जाती।"

अमर से उसने कहा—"नहीं, मैं आपको कभी भी नहीं भूल सकूँगी मजूमदार साहब !"

बात समाप्त करके ही वह उठ पड़ी। अमर ने कहा—"अभी बैठिये न थोड़ी देर।"

"नहीं, काफी देर हो गई। दीदी और जीजा जी आने वाले ही होंगे।"

"फिर कब मिलेंगी।"

"चाहे जब बिल्कुल पास ही तो हूँ।

× × ×

अमला सीधी अपने कमरे में चली आई और वहाँ आकर अपने पलंग पर लेट कर वह इतनी हँसी कि उसके पेट में बल पड़ गये। हँसते हँसते आँखों से ढेर सारा पानी निकल गया। नारायण और सुनीला जब लौट कर आए तो उस समय भी हँसी के मारे उसका बुरा हाल था। नारायण ने मुस्करा कर पूछा—"क्या हुआ अमला रानी ! इतनी क्यों हँस रही हो।"

हँसी के मारे बहुत देर तक वह जवाब न दे सकी। बड़ी मुश्किल से हँसी रोककर सारी कहानी उसने सुनाई। सुनकर नारायण जी खोल कर हँसे। किन्तु सुनीला हँसने पर भी नाराज हो गई, बोली—"अमला तुम बच्ची नहीं हो। ये सब बातें अच्छे घरों की लड़कियों को शोभा नहीं देतीं।"

अमला ने कहा—"मैं क्या करूँ दीदी ! मैंने तो सिर्फ जीजा जी के लिए एक प्रमाण प्राप्त किया है।"

सुनीला ने कहा—"यह सब बकवास है अमला, जो कुछ कर चुकीं कर चुकीं, आगे कुछ किया तो मुझ से बुरा कोई न होगा।"

अमला ने कहा—"तुम से बुरा है कौन दीदी ? जो ऐसी मजेदार कहानी सुन कर भी खुश न हुईं। लेकिन जब किया है तो पूरा हो जाने दो; बीच में छोड़ने में क्या मजा है ?"

सुनीला ने कड़ी आवाज में कहा—"अमला !"

"दीदी तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ। ऐसे अच्छे मज़ाक का मज़ा किरकिरा मत होने दो।"

"यह तुम्हें शोभा नहीं देता।"

"शोभा का भाड़ा लो बिना टिकिट का मज़ेदार हँसाने वाला। खेल देखो।"

"तुम हद दर्जे की असभ्य हो।"

"दुनियाँ ही असभ्यों की सन्तान है दीदी। मैं क्या ? डार्विन ने पूरी मानव-जाति के पुरखाओं को बन्दर की गाली दी है। लेकिन बुरा माना किसी मानव के बच्चे ने ? किसी ने भी नहीं तो मैं दीदी के असभ्य कहने का क्यों बुरा मानूँ ?"

\+ \+ \+

दो तीन दिन और बौम्बे में रहना बाकी था और उन दोनों-तीनों दिन अमला ने खूब दिलचस्पी के साथ अमर के प्रेम-प्रलाप की लम्बी-चौड़ी स्पीचें सुनीं। यद्यपि सुनीला ने अमला को इसके लिए काफी डाटा-फटकारा। फिर भी वह हँस कर उसकी बातों को टालती रही।

आखिर बम्बई से जाने का दिन आ गया। चलते वक्त वह अमर से मिली। अमर उसकी इन्तजार में बैठा था, बोला—"आइए ! मैं आप ही की प्रतीक्षा कर रहा था।"

"शुभ लक्षण है।" अमला कहा और वह हँस पड़ी।

कुछ देर रुक कर अमर ने कहा—"अच्छा देखिए। मैं अगर आपसे आप न कह कर तुम कहा करूँ तो आपको बुरा तो न लगेगा।"

"नहीं, ज़रा भी नहीं। आप और तुम की मीमांसा साहित्य में एक विशेष मायने रखती है। जीवन में उसका कोई विशेष महत्व नहीं।"

अमर बात को समझ न सका, बोला—"तो मैं अब तुम कह कर ही बोला करूँगा।"

"लेकिन अब उसकी जरूरत नहीं पड़ेगी ।"

"क्यों ?" अमर कुछ सहम सा गया।

"हम लोग आज जा रहे हैं ।"

अमर को मानो किसी ने सोते हुए झकझोर डाला हो। उसके मुँह से सिर्फ निकला—"ऐं ।" अमला ने बात फिर से दुहरा दी ।

"आज ही जायेंगी। यह बात तो आपने पहले मुझसे बताई नहीं ।"

"आपने पूछा ही कब था ?"

अमर चुप हो गया, फिर थोड़ी देर बाद बोला—"दो-एक दिन रुक नहीं सकतीं ?"

"आपकी तरह अगर स्वाधीन होती तो अवश्य रुक सकती ।"

अमर कुछ देर चुप रहा। फिर बोला—"मैं अगर स्टेशन तक आप लोगों को पहुँचाने जाऊँ तो आपके बहनोई बुरा तो नहीं मानेंगे ।"

"इसका उत्तर तो केवल वे ही दे सकते हैं कि अगर आप उन्हें पहुँचाने जायें तो वे बुरा मानेंगे या अच्छा ।"

"आप जानती हैं उनसे मेरा अभी तक किसी तरह का परिचय नहीं हुआ। इसलिए उन्हें पहुँचाने का तो सवाल ही नहीं उठता ।"

"आपका प्रश्न तो अभी यही था कि वे बुरा मानेंगे या नहीं ।" और अमला हँस पड़ी। हँसी इसलिए कि उसने महसूस किया कि अभिनय के शेष परिच्छेद में वह कुछ उदासीन सी होती जा रही है। इसलिए अपनी निर्मल हँसी से उदासीन वातावरण में मानो उसने थोड़ी सरलता ला दी। इसके बाद उसी हँसी की भंगिमा में उसने कहा—"आप जिसे पहुँचाने के उद्देश्य से स्टेशन जायेंगे उससे पूछिए कि वह बुरा मानेगी या भला ।"

इस हँसी और इस बात ने अमर के संकोच का आवरण काट कर

फेंक दिया। पहली सी स्वच्छन्दता अनुभव करते हुए उसने कहा—"तो बताइए क्या मानेंगी पहला या दूसरा।"

"पहला अर्थात् बुरा।"

"क्यों ?"

"आप रहेंगे बौम्बे-गाड़ी स्टेशन से छूटते ही यहाँ की चहल-पहल यहाँ की रंगीनियाँ आपके मन के विषाद को बहुत कुछ हल्का कर देंगी। किन्तु गाड़ी का नीरस वातावरण, बेकार का शोरगुल मेरी क्या हालत करेगा ? मुझे बस एक ही चीज़ याद आयेगी और वह प्लेटफार्म पर खड़ी हुई आपकी उदासीन आकृति। इसलिए अच्छा हो कि आप गाड़ी पर चढ़ाने न जायें।"

गाड़ी तक पहुँचाने को टालने का अच्छा बहाना किया था अमला ने और सोचा था कि अमर मान लेगा। लेकिन उसने माना नहीं। बोला—"मेरे मन के विषाद को हल्का करने के जितने कारण आपने गिनाये हैं। उनमें से किसी में भी हल्का करने का माद्दा नहीं है, बल्कि बढ़ाने का ही माद्दा है। सड़कों पर करबद्ध अवस्था में घूमते हुए जोड़े, कानों में आने वाली मधुर हँसी और साड़ियों की मधुर खस-खस की आवाज हवा में उड़ती हुई लवैण्डर की भीनी-भीनी…।"

इस सस्ती रसिकता को सुनने की रुचि अब अमला की नहीं थी। टालने के लिए शीघ्रता से बोल उठी—"मैं अब चल दी, अमर साहब देर हो रही है। स्टेशन आप न जाँयें। शायद दीदी बुरा मानें।"

और वह उठ कर खड़ी हो गई। अमर ने कहा—"ज़रा एक मिनिट रुकिए।"

और उसने जेब में हाथ डालकर मखमल की एक डब्बी निकाली और उसे खोल कर अमला की तरफ बढ़ा दी। अमला ने देखा वह एक कीमती जवाहरात की अंगूठी थी। मन-ही-मन अमला को हँसी भी आई और क्रोध भी। पूछा—"क्या है यह ?"

"यह एक छोटा सा उपहार है।"

"उपहार ! उपहार लेकर क्या करूँगी अमर बाबू ! जिसे अच्छी खासी भूख है उसके लिए उपआहार क्या रखता है। वहाँ तो पूर्ण आहार की आवश्यकता है।"

बात कह कर वह हँस पड़ी और उस हँसी ने अमर को इतने संकोच में डाल दिया कि वह अंगूठी उसके हाथों में ही रह गई। दुबारा आग्रह करने का साहस भी वह न कर सका।

अमला ने कहा—"तो चल दी अमर बाब मैं नमस्कार।"

बिना प्रतिनमस्कार किए ही अमर ने कहा—"तो क्या इसे आखरी मुलाकात मानूँ।"

"अगर आपका दिल इसे आखिरी मनवाए तो।"

अमर की आकृति गम्भीर हो उठी। उसने पूछा—"आप पत्र देंगी।"

"उत्तर दूँगी !"

"अच्छा उत्तर ही दीजिए। मैं ही पहले पत्र लिखूँगा।"

अमला ने स्वीकृति में जरा सिर हिला दिया।

अमर ने पूछा—"आप मुझे भूल तो नहीं जायेंगी।"

"भला आप भूलने की चीज हैं अमर बाबू !"

और वह भी जरा हँस पड़ी। फिर कहा—"नमस्कार ! चल दी मैं।"

गम्भीर और वेदना भरी वाणी में अमर ने कहा—"नमस्कार।"

बौम्बे से लौट कर अमला इस हास्य पूर्ण मजाक की हँसी से अच्छी तरह सम्भल भी न पाई थी कि 'एयर मेल' में डाला हुआ अमर का भारी लिफाफा आ पहुँचा। ऊपर सम्बोधन था बान्धवी और सम्बोधन के बाद में था एक बे सिर पैर का प्रलाप। मानो पत्र लिखते-लिखते वह पृथ्वी के धरातल से हजारों फीट ऊँचा उठ गया हो। जहाँ के वातावरण में उसके पंख बेरोक टोक उसे सीमा हीन कल्पनाओं की ओर उड़ाए लिए

जा रहे हों। किस तरह अमला के जाते ही उसे अनुभव हुआ है कि मानो उसके प्राण छोड़ कर चले गए हों। मानो नेत्रों की ज्योति हीन करके चक्षु शक्ति विलीन हो गई हो।

अमला हँसी, और दिल खोलकर हंसी। इसके बाद उत्तर लिखने बैठी। ऊपर सम्बोधन लिखा, बैसाख नन्दनम्।

और इसके बाद शुरु किया :—

असंख्य अभिनन्दनों के पश्चात् अपने दिल की व्यथा का थोड़ा परिचय तुम्हें देने की इच्छा है। आकाश में घास छाई हुई है। मछलियाँ पेड़ों से उतर कर हवा में उड़ रही हैं। प्रचंड ज्योति है। मेरा मन तुम्हारी तिक्त याद में कौए की तरह काँव-काँव करके रो रहा है। तनिक दूर पर किसी गंधर्व ने अपने मधुर गले से संगीत छेड़ दिया है। और उस मधुर गले का नाद मेरे कर्ण-कुहरों में प्रवेश करते ही बरबस तुम्हारी बोली की याद दिला रहा है।

रात्रि को चक्षु-शक्ति प्राप्त एक पक्षी सामने के पेड़ पर बैठा ऊँघ रहा है और उसे देख-देखकर तुम्हारी चश्मा विभूषित सूरत मेरे मन में एक तूफान सा मचा रही है।

हे उल्लूक कुल शिरोमणि ! इस जीवन में कभी भी तुम्हारी स्मृति को विस्मृत न कर सकूँगी। जीवन में अनेक गर्दभ देखे हैं किन्तु तुम्हारा सागर्दभ कभी नहीं देखा। पुच्छ विहीन तुम एक विशिष्ठ गर्दभ हो। तुम अपने अन्दर ही स्वतः पूर्ण हो केवल अभाव है एक चीज का और वह है मुगल श्रंगों (सींगों) की एक सुन्दर जोड़ी का काश। तुम्हारे सर के दोनों छोरों पर अत्यन्त चिक्कन कृष्ण वर्ण के दो सींग होते।

यहाँ बैठे-बैठे अभिलाषा हो रही है कि नवीन तृण अंकुरित घास पुंज अपने करों में धारण करके मैं तुम्हें चर्वण कराऊं। लेकिन इस अभागिन को क्या यह सौभाग्य मिलेगा ? मत मिले। फिर भी अभिलाषा है और ईश्वर से प्रार्थना है कि कोई सौभाग्य शालिनी मेरी इस

एक मात्र उत्कंठा की पूर्ति करे। हरित दूर्वादल से सुरुचि पूर्ण आहार प्रदान करके शेष में अपनी चरण दासी की सुशीतल सुसभ्य सुसंस्कृत छाप तुम्हारे सींग विहीन मस्तक पर अंकित कर दे। उम्मीद है मेरी यह अभिलाषा पूर्ण होगी।

सत्य प्रेम तो वह है जो अपने प्रेमी के सुख में ही सुख की अनुभूति करे। तो चाहे किसी के हाथों हो तुम्हारे श्रंगरहित शीश पर चप्पलों का अजस्र वर्षण हो। अगणित चप्पलों का वर्षण। जिसकी गिनती स्वयं गणेश भी न कर सकें।

दुनियाँ का एक सबसे बड़ा सिद्धान्त है और वह यह कि उत्कट कामना अवश्य पूर्ण होती है। तो उम्मीद है मेरी कामना पूर्ण होगी। किन्तु एक दुःख है और वह दुःख मेरे मरण काल पर्यन्त बना रहेगा। वह यह कि मैं अपनी इन अभागी आँखों से उस सत्यं शिवं सुन्दरं दृश्य का अवलोकन न कर सकी। काश। चप्पलों के मृदुकर्षण से वह स्फूर्ति प्राप्त मैं तुम्हारे मुख मंडल का दर्शन कर पाती। किन्तु वह सौभाग्य न मिल पायेगा। मेरी यह अतृप्त आँखें चिर अतृप्त होकर ही रहेंगी।

हे दुलत्ती कला विशारद अब विदा लेती हूँ। क्योंकि सामर्थ्य नहीं कि शब्द-कोष के पन्ने अब और विशेष उलट सकूँ।

तुम्हारी गर्दभ-आकृति की

दर्शनाभिलाषिनी······

और यह पत्र एक रंगीन लिफाफे में लपेट कर अमला ने डाल ही दिया। नारायण और सुशीला तब तक वहीं ठहरे थे। पत्र डालने से पहले अमला नें उन दोनों को वह पढ़ कर सुनाया। सुन कर नारायण इतने हँसे जितने जीवन में शायद कभी न हँसे हों। सुनीला भी हँसी और कृत्रिम गुस्सा भी उसने प्रकट की।

उनका गुस्सा जब शेष हो गया तो उन्होंने कहा—"लेकिन इस बात का भी अन्दाजा तुमने किया है कि इस पत्र का उस बेचारे के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ेगा?"

अमला ने कहा—"मुखर्जी साहब ! जिस जूते को पहन कर आप दिन रात रास्ता चलते हैं कभी सोचा है। उस जूते के जीवन पर आप के इस अत्याचार का क्या प्रभाव पड़ता है ?"

"लेकिन जूते की तरह वह युवक तो निर्जीव पदार्थ नहीं है।"

"जूते को ही आप निर्जीव कैसे मानते हैं। हमारे यहाँ के वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बोस ने तो पेड़ पौधे सभी को चैतन्य शक्ति-सम्पन्न प्रमाणित कर दिया है। अगर कोई वैज्ञानिक ज़रा सा प्रयास करे तो जूते में भी वह बात प्रमाणित हो सकती है। चैतन्यता प्राप्त प्रत्येक वस्तु के लिए एक सिद्धान्त है और वह यह कि प्रत्येक परिवर्तन शील वस्तु चैतन्य है। अनुभूति-शक्ति युक्त है। इस नियम से देखिए जूते के जीवन पर कितने परिवर्तन आते हैं। एक दिन वह बिल्कुल नया होता है। चमकदार चटकीला, भड़कीला। बिल्कुल एक हर्षित युवक की तरह। फिर वह ज़रा पुराना होता है। वह होती है उसकी अधेड़ अवस्था। फिर वह फटता है और खत्म हो जाता है। उसे मान लीजिए उसकी मौत।"

नारायण ने कहा—"इन बातों से क्या तुम सर जगदीश बसु के आविष्कार का मज़ाक उड़ा रही हो ?"

"वाह, मुझे उन महा-पुरुष से क्या दुश्मनी है, जो मैं ऐसा करूँगी। मैं तो आपकी बातों का उत्तर दे रही हूँ। सर जगदीश को तो उनके आविष्कार के लिए याद करना पड़ा।"

नारायण ने हँस कर कहा—"तो तुम उस युवक को जूते की तरह मानती हो ?"

"उसे क्यों मैं पूरी पुरुष जाति को ही उससे ज्यादा नहीं मानती।"

नारायण ने हँस कर कहा—"यह क्या तुम अप्रत्यक्ष रूप से मेरा अपमान नहीं कर रहीं ?"

"अप्रत्यक्ष क्यों मैं प्रत्यक्ष रूप से पूरी पुरुष जाति का अपमान कर रही हूँ। लेकिन आपको यह बुरा न लगेगा।"

"क्योंकि यह सामूहिक अपमान है, इस लिए ? सामूहिक अपमान प्रायः बुरा नहीं लगता। मैंने एक दिन आपके सामने दीदी की किसी बात के उत्तर में कहा था कि 'डार्विन' ने पूरी मानव जाति को गाली दे डाली। लेकिन बुरा माना किसी मानव के बच्चे ने ? किसी ने भी नहीं। बल्कि हजारों ने अपनी रीढ़ की हड्डी टटोल कर घिसी हुई दुम की परीक्षा की और डार्विन थियोरी के ऊपर अगर विश्वास न कर सके तो सम्पूर्ण अविश्वास भी न कर सके। बुरा मानना तो दर किनार रहा। लेकिन जानते हैं। मुखर्जी साहब बुरा क्यों न माना। क्योंकि उसमें सामूहिकता थी। अगर डार्विन साहब किसी व्यक्ति विशेष के खानदान के बारे में यह बात कहते तो क्या उनके जिस्म की एक भी हड्डी बाकी बच पाती। लेकिन सामूहिकता ने किसी को बुरा न मानने दिया। सामूहिकता चीज ही ऐसी है मुखर्जी साहब ! वह प्रत्येक वस्तु को एक भिन्न दृष्टि कोण से लेती है। यही लीजिए······।"

और अनजाने में अनजाने ही ढंग से प्रसंग ही बदल गया-"यही लीजिए सिनेमाओं का आधुनिक प्रचलित संगीत। कितना भी वह अश्लील क्यों न हो। बाप बेटी भाई बहिन सभी एक साथ बैठकर उसे सुन सकते हैं। और बर्दाश्त कर सकते हैं। उस समय उन्हें ऐसा अनुभव होता है कि वह अश्लील संगीत मानो अकेले उन्हीं के कर्ण कुहरों में जा रहा हो। पास बैठी उनकी पुत्री या बहन श्रवण-शक्ति विहीन है। अथवा श्रवण-शक्ति सम्पन्न होने पर भी समझने की सामर्थ्य नहीं रखती और इस तरह अश्लीलता सीमा लाँघने वाले उस संगीत को सभी सामूहिक रूप से बिना किसी प्रकार लज्जा और संकोच की अनुभूति के सहनकर लेते हैं। किन्तु वही गाना कोई उनके घर पर आकर उनकी बहन अथवा पुत्री के सम्मुख सुनाये तो क्या वे उसकी हड्डियाँ बाकी छोड़ेंगे।"

नारायण ने कहा—"अमला ! तुमतो जैसे आज सारी दुनियाँ को ही गाली सुनाकर रहोगी। सिनेमा वालों से भी तुम्हारी कोई खास दुश्मनी है क्या ?"

अमला ने बिगड़ कर कहा—"फिर वही बात। जिसकी नजीर देती हूँ या जिसके बारे में जरा भी जिक्र आता है आप समझते हैं मैं उनकी आलोचना कर रही हूँ। यह भी एक ही रही। आपके इतने बड़े गोल मटोल माथे में क्या केवल हवा-ही-हवा भरी है।"

उत्तर में नारायण हँस पड़े। इसके बाद कुछ देर तक मौन रहा। फिर नारायण ने पूछा—"अच्छा अमला! तुम जो पूरी-की-पूरी पुरुष जाति के प्रति इतनी क्रुद्ध हो। वहाँ यह क्यों भूल जाती हो कि उस पुरुष जाति में नारायण सरीखे भी पुरुष हैं, जो अत्याचार करते नहीं, बल्कि सहते हैं।"

अमला ने कहा—"मुखर्जी साहब! गर्म भट्टी में दहकते कोयलों के बीच एकाध ठंडे कोयले नहीं रहते क्या? लेकिन ठंडे कोयलों की क्या वहाँ कोई कीमत है?"

नारायण ने कहा—"हो सकता है अमला। दहकते कोयलों के बीच एक ठंडे कोयले का कोई मूल्य हो। किन्तु सफेद चद्दर पर पड़े एक काले निशान का बहुत बड़ा महत्व है। अथवा काली चद्दर के बीच में पड़े हुए सफेद दाग़ की बहुत बड़ी कीमत है।"

"ऐसी उपमाओं का उत्तर इसकी विरोधी अनेक उपमाओं से दिया जा सकता है। जैसे यही लीजिये हाँड़ी में पकते हुए भात का एक चावल से ही पता लग जाता है कि वह पका या नहीं। किन्तु सिर्फ उपमाओं से तो काम नहीं चलता मुखर्जी साहब! सत्य देखिए! दुनियाँ बहुमत से सहमत है और बहुमत उन पुरुषों का है जिन्होंने नारी जाति पर असंख्य अत्याचार किये हैं।"

"यह तुम्हारा गलत ख्याल है अमला! नारी को हम लोगों ने कितना सम्मान दिया है। इसका परिचय······।"

बीच ही में अमला बोल उठी—"बस-बस मुखर्जी साहब झूँठी प्रशंसा के गौरव से मत फूलिए। आपके बुद्ध से लेकर आज के अत्यंत प्रचार-प्राप्त रामकृष्ण परमहंस तक के जितने महापुरुष हुए हैं उन्होंने

नारियों पर असंख्य अत्याचार किए हैं। जिस बुद्ध को आज विश्व के प्राणी-मात्र का मोक्षदाता माना जाता है, जिस बुद्ध ने सारे विश्व को सुख और शान्ति का सन्देश दिया, उस बुद्ध की तपस्या के इतिहास में छिपा हुआ है एक अबला नारी की आँखों का अविरल अश्रुपात, एक असहाया का करुण क्रन्दन। विश्व जिसे आज प्रेम और शान्ति का साक्षात रूप मानने को तैयार है वह प्रेम का साक्षात रूप एक नारी के लिए कितने क्लेश का साकार स्वरूप प्रमाणित हुआ। कभी इस बात को भी सोचा है। चैतन्य जिसने प्रेम और भक्ति का सन्देश देकर विश्व के एक भाग में क्रांति सी मचा दी थी, वह एक अबला के अरमानों से किस निष्ठुरता के साथ खेला था। कभी सोचिए इस बात को भी।"

अमला का चेहरा आवेश में लाल सा हो गया। वह बोले जा रही थी—"लेकिन बुद्ध की पत्नी यशोधरा को भी कुछ मिला। चैतन्य की पत्नी विष्णु प्रिया को भी कुछ मिला ? रामकृष्ण की पत्नी शारदा की बात सोची है कभी आपने ?"

नारायण ने कहा—"शारदा को तो अपने पति का सारे जीवन का साथ मिला था।"

"हाँ मिला था। लेकिन किस रूप में ? वही एक नारी थी या यों कहिए कि वह नारी थी इसीलिए उसने इतने बड़े अपमान को सहन कर लिया।"

"अपमान। कैसा अपमान ?"

"आप इसे क्या समझेंगे मुखर्जी साहब ! पति अगर पत्नी को मातृत्व के आसन पर सुशोभित कर दे। उसे माँ मानने लगे तो इससे बड़ा अपमान और क्या होगा ?"

नारायण ने कहा—"अमला ! पत्नीत्व में ही नारीत्व की सार्थकता नहीं है।"

अमला ने कहा—"तुम्हारी इस बात को सुनकर एक कहानी की याद आ गई। याद नहीं पड़ता कहाँ पढ़ी थी।"

नारायण ने कहा—"खैर उस कहानी की एतिहासिकता का कोई महत्व नहीं है। तुम कहानी सुनाओ।"

अमला ने शुरू किया—"एक पिंजड़े में बन्द तोते के पिंजड़े पर एक स्वाधीन पक्षी आ बैठा। पिंजड़े वाले तोते ने कहा आओ मेरे पास आओ। मैं अपने मालिक से कहकर पिंजड़े का दरवाजा खुलवा दूँ' स्वाधीन पक्षी ने पूछा—"तुम्हें यहाँ कैसा लगता है ?" उसने जवाब दिया—"बस पूछो मत। देखते नहीं मैं कितने आनन्द में हूँ। चाँदी का पिंजड़ा है। मेरे खाने के बर्तन सोने के हैं। पानी पीने की कटोरी कितनी सुन्दर है। मुझे चारा तलाश करने बनों में भटकना नहीं पड़ता। रात में सोने के लिए आश्रय नहीं ढूंढ़ना पड़ता। धूप सहनी पड़ती है, न वर्षा। गर्मी के दिनों में मेरा मालिक बिजली का पंखा लगा देता है। जाड़ों में मेरे पिंजड़े को मोटे कपड़ों से ढँक देता है। बरसात में बरामदे में मेरा पिंजड़ा लटकता है। वहाँ से बिना भीगे मैं बरसात की बहार देखता हूँ। मुझसे ज्यादा सुखी कौन है ? आओ मैं तुम्हारे लिए भी यही इन्तजाम करवा दूँ।" लेकिन स्वाधीन पक्षी ने कहा—"नहीं मुझे इन सुखों के बदले में स्वाधीनता नहीं बेचनी है।" और वह फुर से उड़कर चला गया। पिंजड़े वाले तोते ने मुँह बिचका कर कहा—"हुँ क्या स्वाधीनता में ही पक्षीत्व की सार्थकता है ? तो आपकी बात सुनकर मुझे यह कहानी याद आ गई मुखर्जी साहब। भोजन के लिए जरूरत होती है रोटियों की। अन्न के आटे से बनी हुई रोटियों की। और वहाँ अगर कोई सोने-चाँदी की बनी रोटियाँ रख दे तो सोने और चाँदी का मूल्य होने पर भी भोजन के लिए उन रोटियों का कोई मूल्य नहीं है।"

नारायण ने कहा—"अमला तुम्हारी ये बातें सहनशीलता की परिधि को लाँघ जाती हैं।"

"क्यों ?"

"तुम एक इतने बड़े महापुरुष परम हँस देव की भी आलोचना कर सकती हो। यह बात ठीक नहीं। जानती हो कितना प्रचार हो रहा है उनका विश्व भर में।"

अमला ने कहा—"जानती हूँ मखर्जी साहब और यह भी जानती हूँ कि सिर्फ प्रचार की दुहाई देकर किसी की श्रेष्ठता सिद्ध नहीं की जा सकती। प्रचार से तो केवल प्रचार की सावधानी और सतर्कता का परिचय मिलता है। वस्तु का नहीं।"

नारायण नाराज़ हो गये आधुनिक शिक्षा प्राप्त अधिकांश बंगालियों की भाँति वे भी परमहंस देव के कट्टर भक्तों में से थे। बोले—"अमला किसी भी वस्तु की आलोचना करने से ज्यादा सरल काम दुनियाँ में और कुछ नहीं है।"

अमला ने कहा—"है उससे भी ज्यादा सरल एक चीज़ और है वह है अंधविश्वास के साथ श्रद्धा।"

× × ×

इस बात को छः महीने बीते और इन छः महीनों में अमला ने बम्बई से सीखे मजाकिया तमाशे की दो बार पुनरावृत्ति की। एक बार उसके इस मज़ाक का श्रेय मिला एक रईस नवयुवक को। जिसकी मोटर में घण्टों तक कलकत्ते की सड़कों पर घूमकर और होटल के लम्बे-चौड़े बिलों को चुकवाने के बाद सहस्रों धन्यवादों के साथ ग़लत पता देकर वह चली गई और दूसरी बार उसने अपने कालिज के एक नवयुवक प्रोफेसर को ही उल्लू बनाया। यह तमाशा कुछ दिनों तक जारी रहा। लेकिन जैसे ही उस प्रोफेसर के प्रेम-बुखार में उत्ताप की मात्रा अधिक हुई तो उसे भी एक पत्र लिखा। बम्बई के अमर मजूमदार से मिलता जुलता। पार्थक्य केवल इतना ही था कि अमर के पत्र में सम्बोधन था बैसाख नन्दनम्, और इस प्रोफेसर के लिए दुलत्ती कला विशारद ! बाद की इबारत बिल्कुल एक सी ही थी।

इसके कुछ दिनों बाद अमला का विवाह हुआ। विवाह करने की उसकी रंच मात्र इच्छा न थी। बल्कि विवाह से एक असीम घृणा भी थी उसे और अविवाहित जीवन व्यतीत करने की यह अभिलाषा उसने अपने पिता के सामने भी रखी।

उसके पिता उन आदमियों में से थे जो एक सुन्दर विचार के रूप में लड़कियों के विवाह को अनिवार्य और आवश्यक मानने के पक्ष में न थे। किन्तु विश्व के अधिकांश आधुनिक वादियों की भांति विचार और जीवन इन दो वस्तुओं का एकत्रीकरण भी उन्हें पसन्द न था। विचार विचार है और जीवन जीवन। वह इसी सिद्धान्त के कायल थे और यह बात उन्होंने अमला से कह भी दी। बोले—"जहाँ तक विचारों का सवाल है। मैं तुम्हारे इस इरादे की कदर करता हूँ। किन्तु विचार सभी स्थलों में जीवन से मेल नहीं खाते। किसी और लड़की के बारे में मैं अगर सुनूँ कि वह सारे जीवन भर कुमारी रही। तो मुझे जरा भी बुरा न लगेगा। लेकिन तुम कुमारी रहो। यह मैं कभी पसन्द नहीं करूँगा। विचार एक दूसरी चीज है और जीवन एक दूसरी चीज।

अमला के पिता का कहना सत्य ही था। दुनियाँ में ऐसे आदमियों की संख्या कम है जो नाच देखकर खुश हो सकते हैं। उसे एक बहुत बड़ी कला और विद्या के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। किन्तु खुद नाच नहीं सकते।

पिता पुत्री में इतनी आधुनिकता अवश्य थी कि दोनों इस विषय पर निसंकोच वार्तालाप कर सकें। कुछ देर तक दोनों में इस विषय पर तर्क वितर्क चलते रहे। उस तर्क की पूरी-की-पूरी भाषा इंग्लिश ही थी। क्योंकि विषय के संकोच की विदेशी भाषा कुछ हल्का कर देती है।

कुछ देर के वाद-विवाद के पश्चात् अमला को चुप होना पड़ा। अमला के पिता पाश्चात्य सभ्यता के कायल होने पर भी सम्पूर्णतया संस्कार मुक्त न हो पाये थे। इसलिए जोरदार भाषा में ही उन्होंने

अमला के विवाह का पक्ष लिया और उन्होंने साफ बता दिया कि अगर अमला विवाह न करेगी तो उन्हें अत्यन्त दुःख पहुँचेगा जिसे वे मरण पर्यन्त न भुला सकेंगे।

उस पूरी-की-पूरी बहस में बस यही एक वाक्य ऐसा था। जिसने अमला को चुप कर दिया और अपनी व्यक्तिगत इच्छा की ज़रा भी परवाह किए बिना उसने विवाह की स्वीकृति दे दी।

अमला का विवाह हुआ एक प्रोफेसर के साथ। कलकत्ते के ही एक कालिज में वह साइकलौजी का प्रोफेसर था। किन्तु सफल 'साइक्लोजिष्ट' न था। कम से कम किसी ने इसको अनुभव किया हो या नहीं अमला ने अवश्य किया।

उसके व्यवहार में एक उदासीनता थी, एक ठण्डापन था। कलकत्ते से दूर किसी एक गाँव में उसका घर था। जहाँ उसकी माँ और विधवा बहन थी और थीं दो विधवा बुआयें। एक नये तुले कर्त्तव्य की दृष्टि से वह सबको समान भाव से देखता। उसकी मां और बुआओं में हमेशा अनबन रहती थी। प्रायः दैनिक ही किसी-न-किसी चीज को लेकर उनमें कलह की सृष्टि होती। किंतु न तो उसने किसी दिन बुआओं से ही कुछ कहा और न माँ से ही। सभी के लिए उसका समान व्यवहार था और सभी के लिए उसके बँधे बँधाये कर्त्तव्य थे। उन बँधे बँधाये कर्त्तव्यों के बीच में मानो एक सदस्य की और वृद्धि हो गई। विवाह के बाद अपनी माँ वगैरा के साथ अमला को भी उसने देहात के मकान पर भेज दिया।

कलकत्ते में नौकरी पेशेवर ऐसे लोगों का कमी नहीं है। जिनका कार्य क्षेत्र कलकत्ता है और घर बार देहात। शनीवार की शाम को ये घर लौटते हैं और सोमवार की सुबह फिर अपने कार्य क्षेत्र पर लौट आते हैं। अमला का पति भी उन लोगों में से एक था। शनिवार की शाम को वह घर लौटता। माँ बुआ बहन सबके दुःखों को सुनता और बिल्कुल चुप रहता। सभी के लिए वह एक रस था और उसी एक

रसता के नीचे उसने पति को भी डाल दिया और इस एकरसता को अमला पसन्द न कर सकी।

पत्नी के प्रति जो कुछ कर्त्तव्य है अमला के पति मेघेन्द्र उन कर्त्तव्यों को एक निष्काम कर्मयोगी की ही भाँति पालन करता। किंतु सिर्फ कर्त्तव्य अमला के लिए आनन्द की वस्तु नहीं थे। कर्त्तव्य में एक सीमा है। एक बँधा हुआ किनारा है। प्रवाह में मन्थरता है। वहाँ न बाढ़ का जोश है और न स्वच्छन्द तरंगों का उन्मत्त नर्तन।

एक तो अमला पहिले से ही पुरुष-जाति के प्रति सदय नहीं थी। उस पर यह ठण्डा व्यवहार। मानो उसकी पूर्व धारणा पर और भी पक्की कलई हो गई। उसे अपने पति के कर्त्तव्य-कोश से निकले हुए नपे-तुले शब्दों के प्रेम सम्भाषणों से अरुचि सी हो गई और वह उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। 'कभी न हँस कर गहे, कभी न रिस कर केश। जैसे कन्ता घर रहे, वैसे ही रहे बिदेश।'

रोज-रोज की वह एकरसता। 'न कुछ हर्ष विषाद' का भाव, रोज-रोज का वह उदासीन नीरस व्यवहार अमला को पसन्द न आया।

उसके पिता सिविल सर्विस में थे और तबादले के सिलसिले में उन्हें देहातों में भी रहना पड़ा था। लेकिन वह बहुत कम। अमला का अधिकांश जीवन ही कलकत्ते में बीता था और वह भी चहल-पहल और स्वच्छन्दता के साथ। उसके स्थान पर यह छोटा सा गाँव चहल-पहल और रंगीनियों से कोसों दूर। सारे दिन का कार्यक्रम और पति की वह कर्त्तव्य-निष्ठा। सब कुछ ने मिल कर उसे तंग कर डाला। उसे ससुराल आये एक महीना भी न बीता था कि उसने अपने पति से कहा कि वह अपने पिता के पास जायगी। बिना किसी प्रकार का प्रतिवाद अथवा आपत्ति के उसके पति उसे कलकत्ते पहुँचा आये।

अमला के पिता ने बहुत दिनों से रिटायर्ड होकर कलकत्ते को ही स्थाई निवास-स्थान बना लिया था। कलकत्ते आकर अमला को लगा कि मानो एक महीने के वह तीस दिन तीस वर्षों की भांति किसी कारा-

ग्रह में व्यतीत करके वह लौटी है। यहाँ आकर मानो उसे मुक्त वायु मिल पाई है। स्वाधीन और सरल वातावरण मिल पाया है। इतने दिनों बाद उसने अपने फेफड़ों को खुली स्वाधीन वायु से पूर्ण किया।

कई महीने उसे अपने पिता के यहाँ रहते हो गए। उसी शहर में उसके पति रहते थे। लेकिन वह कभी भी उससे मिलने न आये। एक पत्र अवश्य स्थानीय डाक में डाला हुआ उनका आया और वह पत्र अमला के लिए ही था। ऊपर न कोई चटकीले भड़कीले सम्बोधन का आडम्बर और न भाषा में ही किसी प्रकार का उत्ताप। सीधे-सीधे ढंग से आशीर्वाद के पश्चात् उहोंने लौटने की तिथि पूछी थी।

अमला ने भी उसी दिन पत्र का उत्तर दे दिया। उसी सीधे साधे ढंग से। ऊपर एक भक्ति पूर्ण प्रणाम और इसके बाद लिखा कि फिलहाल लौटने का विचार उसका है नहीं। होने से खबर देगी।

इसके बाद उनका और कोई पत्र न आया और न उसकी उम्मीद ही अमला ने की। दिन आये और निकल गये। करीब एक साल बीत गया। किसी तरफ से कोई तरह का पत्र-व्यवहार न हुआ।

अमला के लिए यह कोई खास बात न थी। लेकिन अमला के पिता ने इसकी व्यथा का अनुभव किया और बड़े मार्मिक भाव से किया। अमला के पति-निर्वाचन में सोलहों आने उनका ही हाथ था और इस निर्वाचन में विमला के बाद यह उनकी दूसरी भूल है। इसका अनुभव और अनुताप दोनों ही उन्होंने किया।

और शायद इसी अनुताप ने उन्हें असमय में ही काल कवलित कर डाला। मरते वक्त तक इस विषय में किसी प्रकार का वर्त्तालाप अमला से करने का वह साहस न कर सके।

बहुत दिन पूर्व ही उन्होंने अपनी सम्पत्ति की वसीयत कर दी थी। अपनी सारी अचल सम्पत्ति जिसमें कि उनके कलकत्ते के तीन मकान थे, एक स्कूल को दान में दे दी और अपनी चल सम्पत्ति जो कि बैंक में एक

बड़ी रकम के रूप में थी, उसे दो भागों में विभक्त किया। बड़ा भाग दिया अमला को और दूसरा सुनीला को।

उनके मृत्यु-शोक में सम्मिलित होने के लिए सभी नए-पुराने रिश्तेदार एकत्रित हुए। जिनमें अमला के पति भी थे। श्रद्धा इत्यादि समाप्त होने के पश्चात् अमला के पति ने उसी कर्त्तव्य युक्त ठण्डे ढंग से घर चलने का प्रस्ताव किया जिसे अमला ने बिना किसी प्रतिवाद के मान लिया।

लेकिन अब की बार उसे देहात न जाना पड़ा। अमला के पति ने कलकत्ते में ही एक मकान किराये पर ले लिया था। अवश्य उनका यह आकस्मिक व्यवहार अमला को खुश करने के लिए न था। यह तो सिर्फ एक डाक्टर की सलाह थी। बहुत दिन से होटल और मैस के रद्दी भोजन ने उनके चौपट स्वास्थ्य को और भी चौपट कर डाला था। इसलिए डाक्टरों ने होटल के भोजन को उनके लिए अत्यन्त हानिप्रद बताया और साथ-साथ कुछ विशेष खाद्य पदार्थों की हिदायतें भी दे डालीं। जो होटल में अथवा मैस में सम्भव न थीं।

यह व्यवस्था उनके लिए थोड़ी-बहुत लाभप्रद सिद्ध हुई हो या न हुई हो, अमला के लिए अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुई। लेकिन कुछ दिनों बाद यह एक वहम ही निकला। डाक्टरों की सलाह ने अमला के पति को कलकत्ते रहने के लिए बाध्य भले ही कर दिया हो और उस बाध्यता की अवस्था ने उन्हें पत्नी को साथ रखने का सौभाग्य भले ही दिया हो किंतु असल चीज में किसी प्रकार का परिवर्तन करने की सलाह तो डाक्टरों ने दी नहीं थी और अपनी तरफ से भी उनकी इस ओर कोई चेष्टा दिखाई न दी। उसका ठण्डा स्वभाव बिल्कुल अपरिवर्तित ही रहा। क्योंकि उनकी उस बँधी हुई कर्त्तव्य-दृष्टि में जरा भी फर्क न था।

और कर्त्तव्ययुक्त वह उदासीनता अमला के लिए जरा भी सुख की वस्तु न थी। नए मकान का नया आनन्द शीघ्र ही समाप्त हो गया और अमला फिर से एक उदासीनता और एकांकीपन अनुभव करने लगी।

कर्त्तव्यशील उसके पति के जीवन का दैनिक कार्यक्रम सीमित था। उसमें किसी प्रकार की शिथिलता आने देना उन्हें जरा भी पसन्द न था।

सुबह उठकर ही वे नहाते। इसके बाद घण्टा सवा घण्टा संध्या भजन-पूजन इत्यादि में खर्च करते और जलपान के पश्चात् अपनी लाईब्रेरी में घुस जाते। वहाँ से ठीक साढ़े नौ बजे निकलते। इसके बाद भोजन करते, भोजन के समय पास बैठी अमला से एक दो बातें करनी भी वह पसन्द करते। लेकिन उन बातों में इतना ठण्डापन होता, इतनी व्यवहारिकता होती की अमला चेष्टा करने पर भी उन बातचीतों में सहयोग न दे पाती और इस तरह वह वार्त्तालाप अधिक देर तक अग्रसर न हो पाता। इसके बाद जल्दी-जल्दी कपड़े पहन कर वह कालिज जाते। लौटते ठीक चार बजे।

लौटते ही फिर स्नान करते और पन्द्रह मिनट के लिए कमरा बन्द करके ध्यान करते। वहाँ से वे घूमने जाते। शुरू-शुरू में दो एक दिन अमला से भी उन्होंने साथ चलने का आग्रह किया था। लेकिन ठीक आग्रह उसे नहीं कहा जा सकता। आग्रह अगर होता तो शायद अमला स्वीकार कर भी लेती। वह तो सिर्फ़ उनके ठण्डेपन का निकला एक ठण्डा प्रश्न था। जिसमें पूछा गया था कि क्या वह भी साथ चलेगी और इस प्रश्न में बिल्कुल तटस्थता थी। जो केवल उसकी इच्छा पर छोड़ा हुआ था और ऐसे तटस्थ प्रश्न का उत्तर अमला ने बिना किसी संकोच के साथ नहीं में दिया। जिसे उन्होंने निर्विकार चिन्ता से ही स्वीकार कर लिया।

रोजना शाम को वह घूमने से लौटते। इसके बाद फिर लाइब्रेरी और सारे दिन एक यही समय होता जब वह समय की पाबंदी भूल जाते। किसी दिन रात को नौ बजे ही उनका अध्ययन समाप्त हो जाता और किसी दिन रात को बारह बजे या इससे भी ज्यादा देर में।

अमला दिन में सोती नहीं थी। पढ़ती थी और रात में वह शीघ्र

ही सोने चली जाती थी। नौ बजे ही महाराजिन को खाने के बारे में हिदायत देकर वह पलंग पर जा लेटती। अध्ययन करके वे भोजन करते और फिर लौटते शयन-कक्ष में।

अमला की श्वाश प्रश्वाश की गति से जब उन्हें पता लगता कि वह सो गई है तो जगाने की चेष्टा करते और जिस दिन श्वाश-प्रश्वाश की गति में स्वाभाविकता होती। उस दिन वह हल्के ढंग से उसके कंधे को हिलाते। —"सो गईं क्या ?"

अमला जागती भी होती तो जवाब न देती थी। जवाब न पाकर वह जरा हँसते ! फिर कहते—"बड़ी जल्दी सो जाती हो तुम।"

इसके बाद बिस्तर पर लेटते हुए मानो अपने से ही कहते—"एक चीज अच्छी है। बहुत अच्छी है और वह यह कि मैं प्रायः ही तुम्हें जरा भी समय नहीं दे पाता, फिर भी तुम खुश रहती हो। मैं भगवान् से जैसी पत्नी की उम्मीद करता था। वैसी मुझे मिल गई। कोई-कोई पत्नियाँ ऐसी होती हैं कि अपने पति का सारा समय अपने लिए ही चाहती हैं। लेकिन तुम वैसी नहीं हो। यह अच्छी बात है। मेरे लिए सौभाग्य की बात है।"

लेटी अमला की भौहों के बीच में झुँझलाहट से एक सिकुड़न सी पड़ जाती। लेकिन वह जवाब न देती। उसी तरह पड़ी हुई सोने का अभिनय करती।

अपरिवर्तित ढंग से दिन निकलते गये। सुबह न अमला के लिए कोई नया सन्देश लेकर ही आती और न शाम कोई आनन्द का क्षण। सब कुछ एक सा था। एक रस था, पूरा दिन निकल जाता। महाराजिन और नौकर के अलावा कोई बात-चीत करने वाला भी न मिलता।

और इस उदासीनता के नीरस वातावरण में एक दिन उसका दिमाग अचानक ही सरस हो उठा। उसे अपना पुराना मन-बहलाव याद हो

आया। और उसे याद दिलाने में सामने के मकान के एक दिलफेंक नवयुवक का हाथ था।

अमला के मकान और सामने के मकान के बीच की गली बहुत सँकरी थी। उस मकान के सामने की तरफ एक बरामदा था। जो अमला के मकान के बरामदे के ठीक सामने पड़ता था। दोपहर को एक इजी चेयर डालकर वह उसी बरामदे में किताब लेकर बैठ जाती। उसी समय वह दिलफेंक नवयुवक भी अध्ययन-भक्त हो उठते। किताब की आड़ लेकर सामने बैठी हुई अमला के चेहरे की सुन्दरता का वह बड़े बारीकी से अध्ययन करते। और बीच-बीच में तप्त उच्छ्वासों से अपने हृदय के बुखार की गर्मी का परिचय देना भी न भूलते।

कुछ दिनों तो किताब में डूबी अमला ने इस तरफ़ लक्ष ही नहीं किया। लेकिन एक दिन उनके उच्छ्वास के विकट शब्द ने अमला की तल्लीनता को भंग करके ही छोड़ा। इसके बाद अमला ने रोज ही लक्ष किया और लक्ष करके उसे जरा भी क्रोध न आया। पुरुषों की इस दृष्टि से अब उसे मनोविनोद का साधन मिलने लगा था। इतने दिनों बाद मानो उसे एक हँसने का सामान प्राप्त हुआ और इस नीरस उदासीन वातावरण में इस युवक को भी छकाने की बात सोचकर वह कमरे में घुसकर जी खोलकर हँसी। इतने दिन बाद की इस हँसी ने कुछ दिन से हुए उसके गम्भीर स्वभाव में एक सरलता ला दी। मानो आज की इस उदासीन अमला के शरीर में फिर से पुरानी अमला का आविर्भाव हो गया हो। उसने बम्बई के अजमाये हुए अपने पुराने हथकंडे अपनाये।

और चन्द दिनों में ही युवक के लम्बे-चौड़े प्रेम-पत्र फिक कर उसके पास आने लगे। यह उसके लिए एक रोक बहुत बड़े मनो-विनोद का विषय था। लम्बे-चौड़े पहाड़ से न कटने वाले दिन अब अमला के लिए बहुत छोटे हो गये और कुछ ही दिनों में इस हँसी ने इस प्रफुल्लता ने उसकी आकृति को भी पहले जैसी चंचलता लौटा दी।

यद्यपि अपनी ओर से उसने एक भी उत्तर उन प्रेम पत्रों का न

दिया था। फिर भी युवक के लिए यही काफी था कि वह उसके सामने ही उन बरामदे में फेंके हुए प्रेम-पत्रों को पढ़ती है और फिर मुस्करा कर अन्दर चली जाती है।

युवक के पत्रों में साक्षात दर्शन की प्रार्थना होती। स्वहस्त लिखित कुछ लाइनों का आग्रह होता और न जाने कितनी आशाएँ और कामनाएँ होतीं, न जाने कितने स्वप्नों का मधुर चित्रण होता, जिसमें अमला को इतना मनोरंजन होता जितना किसी चीज में नहीं। अमला को अगर पुरुषों का कोई रूप पसन्द था, तो बस एक यही रूप जिसमें वह उनकी बेवकूफियों पर हँसती वह उनके आशा-निराशा के प्रलाप से खुश होती, उनके प्रेम के आर्त्त-क्रन्दन से मनोविनोद करती।

करीब एक महीने तक यह पत्र-व्यवहार चलता रहा। इस एक महीने में छः सात से भी अधिक पत्र उस युवक के आये। लेकिन एक दिन अमला के इस मनोबहलाव का भी अन्त हुआ और वह अन्त भी बड़े बुरे ढंग से।

युवक का फेंका हुआ एक पत्र अयाचित भाव से अमला के पति के हाथों पड़ गया। अमला इस बात को जान भी न सकी। और अगर जान भी जाती तो यह उसके लिए जरा भी कुंठा का विषय नहीं था। अपने इस आचरण को वह सिर्फ एक मनोरंजन की दृष्टि से देखती थी। उसने एक क्षण के लिए भी यह न सोचा था कि यह एक नैतिक अपराध है और अगर सोचा भी हो तो उसका दिल इस बात को मानने को तैयार नहीं था। इसके साथ-साथ अगर अपने पति से उसके सम्बन्ध स्वाभाविक और सरल होते तो शायद अपने मनोरंजन के बीच वह उन को भी घसीट लेती और इस तरह अपने इस मनोविनोद को वह रहस्य बन कर न रहने देती। लेकिन ऐसा हो न सका। मनोविनोद के लिए किया हुआ उसका यह आचरण रहस्य ही बना और फिर रहस्योद्घाटन।

अमला के पति ने वह पत्र पढ़ा और उस कर्तव्यशील निरीह व्यक्ति के सदा एकरस स्वभाव में अकस्मात ही एक बहुत बड़ा परि-

वर्तन आया। उसने स्वप्न में भी उम्मीद न की थी कि कर्तव्य की सीमा में सीमित उसके जीवन में इस प्रकार की हलचल खड़ी हो उठेगी। और उसका कोई आत्मीय उसके प्रति इस प्रकार अकर्तव्यवान बन उठेगा। पत्र पढ़कर उसने अमला से किसी भी प्रकार की जवाबतलबी न की और न किसी तरह की बात ही उसने जाहिर होने दी।

उसने पूरे दिन सोचा पूरी रात सोचा। रात भर उसे एक क्षण के लिए नींद न आयी। सुबह उसकी आकृति अत्यंत गम्भीर थी। उसकी आँखों के निचले हिस्से में एक काली छाया पड़ गई थी। चेहरे पर अस्पष्ट सी झुर्रियाँ उभर आईं। उसका मुख अत्यन्त दयनीय हो उठा था। अत्यन्त करुण हो उठा था और उसने एक पत्र लिखा, दो लाइनों का एक पत्र। वह अमला के लिए ही था और उसमें लिखा था कि वह महरबानी करके उसके घर को छोड़ कर चली जाय। जब तक वह न जायगी, वह इस घर में कदम न रखेगा।

पत्र लिखकर उसके साथ-साथ उसने उस युवक वाले पत्र को भी नत्थी किया और एक लिफाफे में उसे बन्द करके उसने कपड़े पहने। ठीक कालिज जाते वक्त उसे अमला के हाथों में देकर वह त्वरित गति से बाहर चला गया।

उसी क्षण अमला ने लिफाफा फाड़कर वह पत्र पढ़ा। पत्र पढ़कर उसे जरा भी दुःख न हुआ। जरा भी अनुताप न हुआ। मानो यह उसकी मनचाही कामना थी। मानो यह स्वाधीनता ही उसकी सबसे बड़ी वस्तु थी। उसने फौरन ही अपनी तैयारियाँ कीं। अपने मैके की वस्तु के अलावा एक भी अपने पति की चीज उसने साथ न ली और टैक्सी बुलाकर वह सीधी हावड़ा स्टेशन चली गई और वहाँ से सुनीला के यहाँ। किन्तु सुनीला के यहाँ भी वह ज्यादा दिन रह न सकी। सुनीला ने उदासीनता के साथ उसकी अभ्यर्थना की हो, यह बात न थी। फिर भी सुनीला के यहाँ रहना वह पसन्द न कर सकी। अब उसकी इच्छा बिल्कुल स्वाधीन रहने की थी।

उसी समय उसने अखबार में एक विज्ञापन पढ़ा। विज्ञापन मेदिनीपुर जिले के एक छोठे से गाँव श्रीनगर के एक भद्र पुरुष का था। वह अपनी बीस पच्चीस बीघा जमीन एक छोटा सा मकान और एक छोटा सा बगीचा उचित मूल्य पर बेंचना चाहते थे।

इस विज्ञापन ने अमला को आकृष्ट किया। शहरों में रहने का उसका विचार अब पलट गया और चिरकाल से शहर के वातावरण में पली हूई अमला ग्राम-निवास के लिए आकुल हो उठी। जहाँ वह शान्ति से रह सकेगी। वह होगी और होंगी उसकी किताबें।

पत्र द्वारा पूछ-ताछ करने के स्थान पर वह स्वयं श्रीनगर पहुँची। गाँव छोटा सा था, किन्तु अपेक्षाकृत स्वच्छ और शान्त। उसने मोलभाव तय किया और दो तीन दिन के अन्दर ही अमला ने उस भद्र पुरुष की सारी जायदाद खरीद ली।

इसके बाद विधवा गीता को भी उसने पास बुला लिया। लेकिन कुछ दिन बाद इस गाँव में भी उसकी चंचलता लौटी। सिर्फ निर्जीव किताबें उसका मनोविनोद न कर सकीं। सजीव मनोविनोद के लिए वह आकुल हो उठी और उसकी उस आकुलता ने कई दिलफेंकों को बेवकूफ बनाया। जिनमें एक शेखर भी था।

: ३१ :

किशोर बड़े ध्यान से अमला की कहानी को सुन रहा था। मानो चित्र-पट के समान पूरी-की-पूरी कहानी उसकी आँखों के सम्मुख चित्रित हो उठी हो।

कहानी समाप्त करके अमला ने कहा, "किशोर, यह थीं दो चीजें जिन्होंने मेरे ऊपर स्थायी प्रभाव किया। एक पुरुषों को उल्लू

बनाकर उनसे मनोविनोद करने का मेरा बदअभ्यास। दूसरा पुरुष-जाति से घृणा। पहले ने तो मुझे खुद ही उल्लू बनाया। और दूसरे ने मेरे पूरे जीवन को ही अशान्त बना डाला। दोनों ही मेरे लिए अत्यन्त मँहगे पड़े किशोर! सारे जीवन भर भूलें ही की हैं। इसे आज ही समझ पाई हूँ। मेरा सारा जीवन ही एक भूल रहा है। किशोर, जिस समय मेरी दीदी ने आत्महत्या की थी। उस समय मैं छोटी थी। उस समय दीदी के पति इन्द्रनाथ के बड़े आकार वाले दोष को ही मेरी सीधी साधी आँखों ने पकड़ा था। किन्तु दीदी का बारीक दोष मेरी आँखें न पकड़ पायी थीं। उस दिन इन्द्रनाथ को ही दोष दिया था। उसे अत्याचारी माना था। लेकिन आज समझी हूँ किशोर, कि इन्द्रनाथ के इस अत्याचार में भी दीदी का हाथ था। इन्द्रनाथ की सामर्थ्य क्या थी जो दीदी के अंचल से अपने को छुड़ा सकता। लेकिन दीदी से बाँधना ही न आया। उनकी गाँठ में शिथिलता थी। वह गाँठ केवल पुरोहित के मंत्रों से बँधी हुई गाँठ थी और दीदी उसी से निश्चिन्त थीं। लेकिन किशोर पुरोहित की बाँधी हुई गाँठ तो बिल्कुल मजबूत नहीं है। असली गाँठ तो दूसरी है, और उसे दीदी न बाँध सकीं।"

"और किशोर पुरोहित की मंत्रों द्वारा बाँधी हुई गाँठ सहज में ही खुल गई और खोली जिसने वह भी एक नारी थी। जो दीदी से भी निपुण थी। जिसे खोलना भी आता था और बाँधना भी। हम जब देखते हैं कि पुरुष अपनी पत्नियों के प्रति बेइमान हो उठते हैं। उस समय हमें केवल एक ही बात दिखाई देती है और वह सिर्फ पुरुष का दोष। किन्तु अप्रगट रूप से अलक्ष रूप से हम पत्नी के दोष की टेर भी नहीं पाते। कभी अपने दिमाग को सोचने का मौका भी नहीं देते कि उस बेइमान पुरुष की पत्नी में वह उत्ताप नहीं है जो उसके दिल को झुलसा कर दूसरों के लिए निकम्मा बना डाले।"

"उस पत्नी में शीतलता है, उदासीनता है। वे पत्नियाँ केवल मात्र कर्तव्य के सूत्र को ही मजबूत मानकर निश्चिन्त रहती हैं। किन्तु यह

नहीं जानतीं कि कर्तव्य के सूत्र में इतनी मजबूती नहीं है जो प्रत्येक पुरुष उसको तोड़ न सके। सभी पुरुषों की शक्ति तो एकसी नहीं होती, कुछ होते हैं कमजोर प्रकृति के। जो शिथिल से शिथिल सूत्र को भी नहीं तोड़ पाते। या तोड़ने का प्रयास भी नहीं करते और कुछ ऐसे होते हैं जिन्हें बाँधने को जरा मजबूत सूत्र की आवश्यकता होती है और वह मजबूती से बाँधने की शक्ति नारी के पास है। पुरुष की सामर्थ्य क्या जो नारी के बन्धन से निकल सके।"

"पुरुष का सारा आदर्शवाद सारा धर्म समस्त आध्यात्मिकवाद काँपता है एक चीज से और वह है नारी। बुद्ध की पत्नी को कष्ट सहना पड़ा क्यों जानते हो? इसलिए कि उसमें वह शक्ति नहीं थी। जो बुद्ध को बाँध कर रख सकती। अगर यशोधरा का बंधन होता तो बुद्ध की मजाल क्या थी जो उसे तोड़कर भाग सकते। अगर विष्णुप्रिया का बंधन शिथिल न होता तो चैतन्य की सामर्थ्य क्या थी जो उसे त्याग सकते। तो किशोर बाँधने के बंधन में मजबूती होनी चाहिए। वह दीदी में न थी।

"किशोर जो भूल दीदी ने की थी। वही भूल मैंने की। अगर मेरे अन्दर सामर्थ्य होती, शक्ति होती, उन्माद होता, तो मजाल क्या कि मेरे पति मेरे प्रति उदासीन रह पाते।"

किशोर ने कहा—"अमला एक बात बीच में कहूँगा।"

"कहो।"

"तुम्हें पहले पुरुष-जाति से घृणा थी। तीव्र घृणा थी और अब अनुराग हुआ तो मुझे लगता है कि वह भी तीव्र ही हुआ है।"

"किस तरह?"

"इस तरह कि तुम पहले देखतीं थीं सिर्फ पुरुषों का दोष और अब देख रही हो सिर्फ नारियों का दोष। समझ में नहीं आता कि अचानक इतना अन्तर यकायक तुममें कैसे आगया। फिर भी तुम्हारे इस परिवर्तन को मैं उचित नहीं मानूँगा; तुम कह रही हो कि अगर तुम्हारे अन्दर

सामर्थ्य होती तो तुम्हारे पति के ठंडेपन में भी उत्ताप आ सकता था। लेकिन अमला .प्रेम एकतरफा नहीं है और न उसकी जरूरत ही एकतरफा है। जितनी आवश्यकता तुम्हें है, उतनी ही तुम्हारी पति को होनी चाहिए थी।"

"लेकिन किशोर! होनी चाहिए तो कोई मतलब नहीं रखता। यहाँ तो होने का सवाल है। मेरे ठंडेपन से मेरी उदासीनता से वह सन्तुष्ट थे, इसीलिए कहा करते थे कि जैसी पत्नी मैं चाहता था वैसी मुझे मिल गई। लेकिन मैंने तो वह बात नहीं कही और न सोची ही। उनके स्वभाव से मैं तो सन्तुष्ट न थी। वह मुझसे सन्तुष्ट थे। इसलिए जरूरत और आवश्यकता अकेली मुझे थी, उन्हें नहीं और अपनी उस आवश्यकता को मैं उनसे हासिल न कर सकी।"

किशोर और भी कुछ कहना चाहता था। लेकिन न कह सका। रात प्राय: शेष हो गई थी और पूरब दिशा के बादलों में पौ फटना शुरू हो गया था। किशोर के साथ-साथ अमला की निगाह भी खिड़की में से उस पर पड़ी। चौंककर बोली—"उफ रात तो खत्म हो गई किशोर, हम लोगों को तो कलकत जाना है। मैं आज पूरी रात बकती रही। यहां से मोटर हमको कब मिलेगी?"

"करीब ग्यारह बजे दोपहर में।"

"तब तो तुम दो तीन घंटे सो सकते हो।"

"हाँ!" कहकर किशोर सोने चला गया।

× × ×

आज की गाड़ी में ज्यादा भीड़ न थी। उसमें भी अपर क्लास के सभी डिब्बे प्राय: खाली ही थे। ऐसे ही एक डिब्बे में वे दोनों जा बैठे। गाड़ी चलते ही अमला ने एक अप्रत्याशित आचरण किया। देहाती साधारण औरतों की भाँति अपने दोनों हाथों को जोड़कर उसने कहा—"हे ईश्वर मैं उन्हें अच्छी तरह देखूँ।"

अमला के इस आचरण से किशोर को कुछ आश्चर्य हुआ। किन्तु

आश्चर्य की ऐसी बात न थी। आपत्ति काल में मानव का अशान्त मन किसी अलौकिक शक्ति की शरण लेना ही पसन्द करता है। चाहे उससे पूर्व उसका उस शक्ति पर विश्वास हो, या नहीं।

इसके बाद बहुत देर तक गाड़ी की खिड़की से मुँह निकालकर वह बाहर की तरफ झाँकती रही। किशोर ने कहा—"इस तरह बाहर की तरफ मुँह क्यों निकाल रही हो। चोट लग जाने का डर है।"

"देख रही हूँ यहाँ के वनों को, यहाँ के जंगलों को। खेतों को यहाँ के आदमियों को उनके घरों को। इन लोगों के बीच कई साल मैंने बिता दिये। फिर कभी भी यहाँ लौटूँगी या नहीं, यह भगवान ही जानता है किन्तु इन लोगों के प्रति एक ममता हमेशा मेरे में रहेगी।"

"तो क्या यहाँ लौट कर नहीं आओगी?"

"लौटकर आने का इरादा तो लेकर जा नहीं रही।"

"और श्रीनगर का तुम्हारा घर?"

"उसमें तुम रहना किशोर। जब तक उस गाँव में रहो तब तक। इसके बाद जिसे जरूरत हो उसे दे देना। मेरी वहाँ जमीन और बगीचा भी है। उसे तुम लोगे?"

किशोर ने कोई उत्तर न दिया। बात उसके कानों में गई भी या नहीं इसका भी पता ठीक लगाना मुश्किल था। अमला ने कहा—"तुम्हें जरूरत हो तो तुम ले लेना। और न हो तो मैं उसकी लिखा-पढ़ी गाँव के लिए कर दूँगी।"

किशोर ने यह बात भी सुनी या नहीं। अमला इसका भी ठीक अन्दाज न लगा सकी। कुछ देर तक किशोर के मुँह की तरफ देखकर उसने कहा—"क्या सोच रहे हो किशोर?"

"कुछ नहीं।"

"कुछ नहीं भी कोई सोचता है।"

"सोचता है! अमला, मनुष्य जीवन का एक बहुत बड़ा भाग कुछ नहीं सोचने में ही जाता है।"

अमला ने कोई जवाब न दिया। वह उसी तरह खिड़की में से मुँह निकालकर देखती रही। कुछ देर बाद बोली,—"किशोर एक बात पूछूँ तुमसे ?"

"पूछो !"

"तुम्हें मुझसे क्या मिला ?"

"इसका जवाब देना कठिन है अमला ! मुझे तुमसे क्या मिला यह मैं नहीं बता सकूँगा। लेकिन एक चीज तुमसे मुझे मिली है, उसे शायद बता सकूँ। वह बड़ी अमूल्य वस्तु है अमला ! व्यथा, याद व स्मृति ये चीजें तुमसे मुझे मिली हैं। यह स्मृति मुझे हमेशा याद रहेगी, जिसे मैं कभी न भूल सकूँगा, जो मेरे जीवन की पूँजी बनकर रहेगी।"

"स्मृतियों को तुम बहुत ही बड़ी चीज मानते हो किशोर !"

"हाँ स्मृतियाँ वर्तमान से भी ज्यादा मधुर हैं, मूल्यवान हैं। मुमताज की स्मृति न होती तो वर्तमान ताजमहल का क्या मूल्य था। केवल मात्र एक पाषाण-पुंज।"

अमला ने कहा—"भूलते हो किशोर ! अगर ताज के उस पाषाण पुंज के टुकड़ों पर कलाकारों के अजस्र स्वेद का इतिहास अंकित न होता, उनके हृदय का प्रेम अंकित न होता, तो मुमताज का क्या मूल्य होता ? केवल मात्र एक नश्वर नारी-जीवन। पाषाण का मूल्य तो कलाकार ही बढ़ाता। तुम्हें जो स्मृति, जो कथा, जो वेदना मुझसे मिली है उसमें तुम्हारे भावुक मन का ही हाथ है। उसका जरा भी श्रेय मुझे नहीं दिया जा सकता। तुम्हें जो कुछ लेना था वह तुम चाहे जिस से लेते, जबरन हासिल कर लेते। कलाकार अंकित करना जानता है। पत्थर के चाहे जिस टकड़े में वह सजीवता ला सकता है। कलाकार की सफलता पत्थर के टुकड़े पर आश्रित नहीं करती। वह तो केवल मात्र उसकी ललित उँगलियों पर ही आश्रित है। वह तो केवल मात्र उसके कला सृजनकारी हृदय के ऊपर ही आश्रित है। अपने हृदय की

भावुकता से अपने हृदय की कला से वह चाहे जिस निर्जीव पत्थर से प्राप्त कर सकता है। किशोर पत्थर के टुकड़े में जो चीज नहीं है, कलाकार उसको वह प्रदान करता है। ठीक उसी तरह प्रेमी अपनी रंगीन कल्पनाओं से जो सौन्दर्य उसकी प्रेयसी में है नहीं, उसे प्रदान करता है। प्रेमिका का सौन्दर्य अथवा उसका कोई विशिष्ट गुण उसे अपनी ओर आकर्षित नहीं करता। सुन्दरता तो स्वयं प्रेमी ही उसे प्रदान करता है। जो गुण उसमें नहीं है, जो रूप उसमें नहीं है, जो लालित्य उसमें नहीं है, जो माधुर्य उसमें नहीं है। उन सबको अपनी कल्पना के द्वारा प्रेयसि की आकृति में सजा डालता है। कला तो प्रेमिका में नहीं है किशोर! प्रेमी के दिल में है, उसकी कल्पना में है, उसकी सृजन-शक्ति में है।"

किशोर ने कहा—"इस स्त्रजन-शक्ति की जड़ में भी तो कोई है अमला। कला और भावुकता तो स्वयं ही मन में उत्पन्न नहीं होतीं। दुनिया का प्रत्येक आदमी न तो कलाकार ही होता है और न भावुक ही। गुलाब का फल किसी को इसलिए प्रिय है कि उसे देखते ही उसके मन में किसी के रंजित अधरों की स्मृति खेल जाती है, किसी को इसलिए कि गुलाब की सुन्दर कलियों को चुनकर वह सुन्दर गुलकन्द बनाकर अपने शरीर को स्वस्थ बनाना चाहता है। काले मेघों को देख कर जहाँ कवि के मन में किसी के कुन्तलों की स्मृति सजग हो उठती है वहाँ किसी किसान को अपने हल-बैल की याद हो आती है। चाँद को देखकर क्या सभी को किसी के चन्द्रानन की स्मृति हो आती है? सबको तो होती नहीं। दुनियाँ के अनेकों आदमियों के दिल में न तो चाँद ही कोई स्मृति लाता है और न मेघ ही कोई याद, न बसन्त की कोयल का स्वर कोई वेदना। यह तो इने-गिने कुछ भावुकों में ही होती है। और इन इने-गिने भावुकों की सृष्टि जगत में कौन करता है, जानती हो। यही वेदना। यही याद यही स्मृति। कलाकार के मन में लालित्य की प्रेरणा देने वाला भी कोई है। वह स्वतः ही उत्पन्न नहीं होती। उसकी

उँगलियों में कम्पन और हृदय में सौंदर्य की सृष्टि करने वाला भी कोई दूसरा ही है। उसके हृदय का सौंदर्य तो बिम्ब का प्रतिबिम्ब है, क्रिया की प्रतिक्रिया है। ध्वनि की प्रतिध्वनि है। बिम्ब न हो तो प्रतिबिम्ब कहाँ से आये ? क्रिया न हो तो प्रतिक्रिया कहाँ से आये ? ध्वनि न हो तो प्रतिध्वनि की सृष्टि कहाँ से हो ? प्रेमिका का सौन्दर्य, उसका लालित्य, उसकी कमनीयता यही तो असली वस्तु है अमला !"

अमला हँस पड़ी। बोली—"चलो, मैं खुश हूँ। तुम्हें वह असली वस्तु मिली। तुम कवि हो, भावुक हो। इस वेदना को लेकर इस स्मृति को लेकर अमर काव्य की रचना करो। आँसुओं का बीज दुनियाँ के विस्तृत क्षेत्र में बो दो। खुद भी रोओ, और दुनियाँ को भी रुलाओ।"

किशोर ने कोई जवाब न दिया। सचमुच उसकी आँखें छलछला आईं। अलक्ष भाव से उसने उन्हें पोंछ डाला। कुछ देर तक मानो वह मन में उत्पन्न हुई एक जिज्ञासा से लड़ता रहा। फिर पूछ ही बैठा—"एक बात जानने की इच्छा है इमली।"

"पूछो।"

किन्तु प्रश्न इतना संकोची था कि पूछो कहने पर भी वह पूछ न सका। साहस न बटोर सका। शब्द न बँटोर सका। बिना बँटोरे शब्दों से ही उसने पूछा—"मैं—मैं पूछना चाहता था कि···क्या कभी तुमने मुझसे······।"

आगे किशोर कुछ न कह सका। किन्तु वाक्य की पूर्ति अमला ने कर दी। बोली—"प्रेम किया है या नहीं।"

फिर जरा गम्भीर होकर बोली—"तुम्हारा प्रश्न बड़ा स्पष्ट है। और इसका निश्चित उत्तर मैं तुम्हें न दे सकूँगी। दे सकने पर भी नहीं दूँगी। किन्तु एक बात कहूँगी। मनुष्य के जीवन और विचारों में बड़ा अन्तर है। कहने और करने में बड़ा पार्थक्य है। अभी तुमने कहा कि तुम सिर्फ इसी बात से सन्तुष्ट हो कि तुम्हें मुझसे व्यथा मिली,

वेदना मिली, याद मिली। किन्तु उसके बाद ही तुम्हारी जानने की इच्छा हुई कि मैं तुम्हें प्रेम करती हूँ अथवा नहीं। तुम्हारी याद, तुम्हारी कथा, तुम्हारी स्मृति भी इसी बात पर आश्रित है। मैं भी तुम्हें प्रेम करती हूँ यही जानकर उन्हें बल मिलेगा।"

किशोर चुप था। अमला ने कहा—"तुम लोग उपन्यास पढ़ते हो किशोर और उसी के आधार पर प्रेम के परिणाम की कल्पना भी कर डालते हो। लेकिन यह याद रखो कि जीवन उपन्यास की तरह एक सीमित कहानी नहीं है। जीवन वह अपनी तरह ही असीमित और अनिश्चित है। उपन्यास की कहानी का अन्त दो ही रूप में होता है। कॉमेडी और ट्रेजिड़ी। किन्तु किशोर हैं दोनों ही ट्रेजिड़ी। कॉमेडी भी और ट्रेजिडी भी। मिलन में भी अन्त है। और विच्छेद में भी इसीलिए अन्त को मत खोजो। अन्त को अनिश्चित ही रहने दो। उस अनिश्चितता में तुम्हें एक मधुरता मिलेगी, एक नया आस्वाद मिलेगा। उर्दू की कविताओं का एक अंग्रेजी अनुवाद पढ़ा था। उसकी एक कविता मुझे पसन्द आई थी। ऊपर असली कविता थी और नीचे अनुवाद। कविता के ठीक शब्द मुझे याद नहीं। लेकिन वे कुछ-कुछ इस प्रकार थे।"

"जब किश्ती सलामत है साहिल की तमन्ना कौन करे। जब किश्ती सिकिश्ता है साहिल की तमन्ना कौन करे।"

"तो किशोर जिसे कथा की आवश्यकता है। वेदना की आवश्यकता है, वह दोनों सूरतों में से किसी भी सूरत में किनारे की तमन्ना नहीं करता। अगर तुम्हें बहना है तो किनारे की ओर मत देखो। बहे जाओ, मैंने तुमसे पहले कहा न कि प्रेम तो तुम्हारे दिल में है, कला तो तुम्हारे स्वयं के ही अन्दर है, अपने उस प्रेम को, अपनी उस कला को मेरे प्रेम के ऊपर आश्रित मत करो।

आर० जी० कर० मैडिकल कालिज के शल्प-विभाग में अमला और किशोर को ज्यादा पूछताछ न करनी पड़ी। एक नवयुवक डाक्टर ड्यूटी पर था। किशोर के प्रश्न पर उसने अमला की तरफ इंगित करके पूछा "क्या आप मिसेज मेघेन्द्र हैं ?"

जवाब किशोर ने ही दिया—"जी।"

नवयुवक डाक्टर कुछ गम्भीर हो गया। उसने अपनी वाणी और आकृति दोनों में गम्भीरता बटोरी। फिर शान्त और धीमे स्वर में उसने उत्तर दिया—"आप लोगों को एक बहुत बड़े दुःख के समाचार को सुनने को प्रस्तुत होना है।"

इसके बाद जीवन और उसकी नश्वरता के बारे में दो चार बातें बता कर उसने कहा—"आपरेशन के बाद मिस्टर मेघेन्द्र होश में न आ सके। लाख कोशिश करने पर भी आपरेशन सफल न हुआ।"

थोड़ी देर के लिए डाक्टर गुम हो गया। फिर बोला—"मिस्टर मेघेन्द्र मेरे मित्रों में से थे। हाई स्कूल तक हम दोनों एक साथ पढ़े थे। मेरे जीवन पर जिन इने-गिने व्यक्तियों ने कुछ प्रभाव किया है, मिस्टर मेघेन्द्र उनमें से एक थे।"

कुछ देर तक डाक्टर ने स्वर्गगत मेघेन्द्र के विशिष्ट गुणों का उल्लेख किया। फिर बताया—"आखरी समय तक मैं उनके साथ था। आपरेशन से पहले वह बड़े परेशान थे। कई बार उन्होंने आपकी खोज की। फिर अपना वसीयत नामा मेरे हाथों सौंपकर एक छोटे से कागज पर कुछ लाइनें लिखकर मुझे दीं। और कहा कि वसीयत नामा और यह छोटा सा पत्र, आपरेशन असफल होने की स्थिति में मैं उनकी पत्नी को दे दूँ। आप लोग बैठें उन दोनों चीजों को मैं अभी लाये देता हूँ।"

बैठने के लिए एक सुविधाजनक स्थान उन दोनों को दिखा कर डाक्टर चला गया। इतनी देर बाद किशोर ने अमला के चेहरे पर दृष्टि डाली। उसने देखा कि अमला की आकृति शान्त और गम्भीर थी। चेहरे का रंग बिल्कुल कागज की भाँति सफेद हो गया था। ओठ फीके से थे। आँखों में एक ऐसा भाव था जिससे किशोर को लगा कि अमला वहाँ मौजूद न थी। उसकी उपस्थिति में भी एक अनुपस्थिति की सूचना थी। किशोर ने अमला के कंधे पर हाथ रखकर उसे झकझोरा—"अमला!"

लेकिन इस क्रिया से अमला सजग न हो सकी। इसकी विपरीत क्रिया हुई। बेहोश होकर वह जमीन पर लुढ़क पड़ी। किशोर अगर बीच में न पकड़ लेता तो गहरी चोट उसे पहुँचती।

कुछ देर बाद डाक्टर लौटा। अमला की हालत देखकर उसने कुछ आश्चर्य के साथ पूछा—"क्या हुआ इन्हें।"

"बेहोश हो गईं।"

"उफ! इनका दिल इतना कमजोर है, इसका पता अगर मुझे होता तो मैं आकस्मिक भाव से इस खबर को इन्हें नहीं सुनाता।"

"इस आकस्मिक खबर के साथ-साथ कुछ दिनों से इन्हें यह रोग भी है।"

उपचार के लिए स्ट्रेचर पर रखकर भीतर ले जाया गया। वहाँ करीब आध घंटे बाद अमला की बेहोशी टूटी। उसने आँखें खोलीं और फिर उस डाक्टर को बुलवाया। डाक्टर के आने पर उसने पूछा—"मरते वक्त उन्होंने और क्या कहा था?"

डाक्टर ने कहा—"नहीं, और कुछ भी उन्होंने नहीं कहा। आपरेशन के बाद तो उनकी बेहोशी टूटी ही नहीं। उससे पहले अपनी मृत्यु के बारे में वह पूर्ण निश्चित न हो पाये थे।"

"वह पत्र मुझे दीजिए।"

पत्र डाक्टर ने पढ़ा नहीं था। किन्तु उसे डर था कि इस बेहोशी

के बाद ही पत्र देना ठीक नहीं होगा। हो सकता है पत्र में कुछ भावुकता का समावेश हो। डाक्टर चुप हो गया। उसने कोई जवाब नहीं दिया। डाक्टर के मन की बात अमला जान गई। बोली—"डरिए नहीं। अब मैं बिल्कुल ठीक हूँ।"

डाक्टर ने वसीयतनामा और पत्र दोनों अमला के हाथ पर रख दिए। पत्र बहुत छोटा था। उसमें मुश्किल से सात आठ लाइनें थीं। उसमें लिखा था,—"अमला! यह पत्र तुम्हें मेरी मृत्यु के पश्चात् ही मिलेगा। बचने की स्थिति में नहीं हूँ। बचने की स्थिति में तुमसे कहने को बहुत कुछ है। किन्तु मरने के बाद तुमसे कहने के लिए मेरे पास एक ही बात है कि मैं तुम्हें मरते दम तक क्षमा नहीं कर सका। तुम कभी भी खुश न रह सको, यह मेरी अन्तिम इच्छा है। मेरी अशांति का अनुभव तुम पूर्ण रूप से करो यही मेरी कामना है। तुम्हारे मुँह पर थूकने की इच्छा थी। लेकिन वह पूरी न हो सकी। इसलिए मेरे इन शुभ आशीर्वादों को तुम ग्रहण करना। फिर भी अपनी सम्पत्ति की वसीयत मैंने तुम्हारे ही नाम की है। पिछली महामारी में घर भर में कोई नहीं बचा।

अमला ने पत्र पढ़ा। पढ़कर कुछ देर तक वह चुप रही। फिर बहुत गम्भीर, किन्तु क्षीण स्वर में उसने कहा—"किशोर चलो।"

डाक्टर और किशोर दोनों ने एक आपत्ति जताई कि उसका शरीर अभी पूर्ण रूप से स्वस्थ नहीं हो पाया है। इसलिए कुछ देर आराम करने की आवश्यकता है। अमला ने कहा—"नहीं अब मैं ठीक हूँ। बाहर एक टैक्सी ठीक करलो। वहाँ तक मैं तुम्हारे कंधे पर हाथ रख कर चली चलूँगी।"

डाक्टर ने कहा—"मेरे खयाल से अभी आपको कुछ देर के आराम की जरूरत है।"

अमला ने कहा—"नहीं! मैं अब ठीक हूँ। तुम टैक्सी बुलाओ किशोर!"

टैक्सी लाने में किशोर को ज्यादा देर न लगी। बहुत शीघ्र ही उसने टैक्सी आने की सूचना दे दी। डाक्टर ने कहा—"बाहर तक के लिए मैं अस्पताल की गाड़ी बुलाए देता हूँ।"

अमला ने कहा—"नहीं उसकी जरूरत नहीं पड़ेगी, धन्यवाद।"

उसने हाथ बढ़ाकर किशोर का हाथ पकड़ा और उसी के सहारे से उठकर अपने शरीर के हल्के से भार को किशोर के कंधे पर डालकर वह चलने लगी।

टैक्सी की सीट पर वह निर्जीव की तरह बैठ गई। अपना एक हाथ उसने किशोर के कंधे पर रख लिया और अपने सर को भी उसी के सहारे टेक दिया। ड्राइवर ने गन्तव्य स्थान के बारे में प्रश्न किया। प्रश्न किशोर ने अमला से दुहराया। उत्तर में अमला ने कहा—"किसी अच्छे होटल में।"

ड्राइवर को होटल का आदेश देकर किशोर ने अमला से पूछा—"वसीयत में क्या है।"

"अपनी सारी सम्पत्ति की वसीयत मेरे नाम कर गये हैं।"

"और अपनी माँ बूआ और बहिन के लिए?"

"वे सब पिछली महामारी में समाप्त होगईं।"

"तुम्हारे पति का मकान कलकत्ते से कितनी दूर है?"

"करीब पन्द्रह मील।"

"वहाँ कब चलोगी?"

"वहाँ नहीं जाऊँगी।"

"क्यों?"

"किशोर! जिस व्यक्ति को कुछ दे नहीं सकी। हाथ पसार कर उसका कुछ लेने की भी इच्छा नहीं है। वह मैं कभी भी न ले सकूँगी।

"वसीयत का क्या होगा?"

"होगा कुछ न कुछ तो होगा ही। देश में सार्वजनिक संस्थाओं की कमी नहीं है। अनाथ आश्रम, विधवा आश्रम और न जाने कितने आश्रम

देश भर में भरे हुए हैं। एक कर्तव्य निष्ट व्यक्ति की सम्पत्ति पाकर वे संस्थाएँ भी कृत-कृत्य हो उठेंगी।"

किशोर ने कोई जवाब न दिया, किंत होटल में पहुँच कर उन दोनों में फिर इसी विषय पर बातचीत शुरू हो गई।

किशोर ने कहा—"दुनिया में क्या हम सिर्फ उसी से लेते हैं जिसे हम दे पाते हैं?"

"यह तो नहीं जानती किशोर! किन्तु इतना अवश्य जानती हूँ कि लेना उसी से चाहिए जिसे कुछ दिया हो।"

"दुनिया में इकतरफा लेना-देना भी तो है अमला!"

"जैसे?"

"जैसे बहुत से आदमी कुछ देते नहीं। वे सिर्फ जीवन भर पाते ही पाते हैं और बहुत से आदमी कुछ नहीं पाते वे सिर्फ देते ही देते हैं।"

"इकतरफा लेना देना कभी नहीं चलता किशोर! जो देता है और पाने की आशा नहीं करता वह पाता है आत्मतुष्टि आत्मगौरव और देकर जब लेने की आशा करता है और कुछ मिल नहीं पाता तो भी देने वाले को मिलता है, निराशा का आनन्द, वेदना, व्यथा, याद, स्मृति। पाने वाला कुछ दे या न दे लेकिन देने वाले को तो मिल ही जाता है।"

किशोर ने कहा—"यहाँ क्या तुम अपनी बातों का उत्तर स्वयं आप ही नहीं दे रहीं।"

"किस तरह?"

"तुमने अभी कहा न कि तुम्हारे पति को तुमसे कुछ नहीं मिला। इसलिए हाथ पसार कर उनका तुम कुछ भी ग्रहण न करोगी और अभी-अभी मेरी बात के उत्तर में तुमने बताया कि देने वाले को भी मिलकर रहता है। तो तुम्हारे पति को भी तो इकतरफा देने में एक त्याग के आनन्द की अनुभूति हुई होगी। एक आत्मगौरव एक आत्मतुष्टि का आनन्द मिला होगा।"

अमला ने कहा—"शायद मिला हो किशोर! किन्तु वह मुझसे नहीं,

अपने ही कृतित्व से। अपने देने ने ही उन्हें वह दिया होगा। किन्तु मेरे पास तो देने का गौरव करने का कुछ है नहीं। फिर मैं लेने का साहस कैसे कर सकती हूँ? लेने का अधिकार तो सिर्फ उसी को है जिसके पास देने का गौरव हो।"

किशोर ने फिर मुँह से कोई उत्तर नहीं दिया। किन्तु अमला के चेहरे की ओर देखा, जिस पर इस आकस्मिक समाचार का इतना बड़ा प्रभाव पड़ा था और फिर मन ही मन कहा—"तुमने उतना ही दिया है अमला! जितना कोई भी पत्नी अपने पति को दे सकती।"

शाम के वक्त अमला ने कहा—"किशोर! जरा घूमने चलो। मन नहीं लग रहा।"

: ३३ :

किशोर अमला को घुमाने ले गया। काफी रात तक घूमती रही। कई बार किशोर ने समय इंगित करके लौटने को कहा। किन्तु 'थोड़ी देर और' 'थोड़ी देर और' कहकर करीब ग्यारह बजे तक घूमती रही। घूमते वक्त वह बिलकुल चुप थी। उसकी आकृति इतनी गम्भीर थी, जितनी किशोर ने जीवन में कभी न देखी थी। उसकी चंचल आँखें व्यथा की उदासीनता लिए थीं। एक बार किशोर ने इस मनहूस चुप्पी को तोड़ने का प्रयास भी किया। दोपहर में हुई बातों को ही उसने फिर से शुरू करने की कोशिश की। लेकिन अमला ने बड़े शान्त स्वर में उत्तर दिया—"किशोर कुछ बातें न करो तो अच्छा हो।"

रात में ग्यारह बजे होटल में लौटकर वह सीधे बिस्तर पर जा लेटी किशोर ने पूछा—"खाना नहीं खाओगी।"

"नहीं ! इच्छा नहीं है। तुम अपना खाना इसी कमरे में मँगालो। मेरे पास बैठ कर खाओ।"

किशोर ने वैसा ही किया खाने के बाद अमला ने कहा—"किशोर तुम अपना बिस्तर भी इसी कमरे में कर लो। आज न जाने क्यों अकेला अकेला मुझे अच्छा नहीं लगता।"

किशोर ने अपना पलंग उसी कमरे में मँगवा लिया।

अमला ने कहा,—"किशोर जब जिसे चाहते हैं, तब वह चीज नहीं मिलती। किन्तु न चाहने पर उसका अभाव नहीं रहता।"

बात किशोर न समझ सका। अमला ने पूछा—"मेरी बात समझे।"

"नहीं।"

"एक दिन था किशोर जब मनोबहलाव मेरे पीछे दौड़ता था। घूमने में, बातें करने में, सभी स्थितियों में वह मुझे प्राप्त न होता था। लेकिन आज न जाने क्या होगया है। आज मुझे उसकी जरूरत है। मैं उसे चाहती हूँ और मैं जितना उसे चाह रही हूँ वह उतना ही दूर हट रहा है। यही है दुनियाँ का सिद्धान्त किशोर। हम जिसे चाहते हैं वह दूर हटता है और जिसे नहीं चाहते वह पास आता है।"

किशोर चुप रहा। अमला भी कुछ देर तक चुप रही। फिर बोली, "किशोर तुम से कहानियाँ सुनाना आता हो तो कोई कहानी सुनाओ। आज मालूम पड़ता है नींद मुझे नहीं आयेगी। एक दिन था जब सोचा करती थी कि कैसे होते हैं वे व्यक्ति जिन्हें नींद नहीं आती। आश्चर्य किया करती थी उन पर, किन्तु आज वही आश्चर्य मेरे जीवन में उतर आया है। खैर छोड़ो, हाँ कहानियाँ सुनाना आता है तुमसे।"

"कहानियाँ मैंने बहुत पढ़ी हैं अमला, लेकिन सुना नहीं सकूँगा।"

"वह पढ़ने वाली कहाहियाँ कहानी थोड़े ही होती हैं किशोर, वे तो

लिखानी होती हैं। मैं उपकथाओं की बात कह रही हूँ। दादी नानी की कहानियाँ आती हैं तुमसे।"

"नहीं।"

"नहीं आतीं। उफ ! तो मैं इतनी बड़ी रात कैसे काटूँगी?"

किशोर कुछ देर चुप रहा। फिर बोला—"तुम्हें कविताओं से प्रेम हो तो मैं कविता सुना सकता हूँ। लिखते-लिखते ढेर जमा हो गया है। किसी को सुनाने की इच्छा थी। लेकिन कोई मिला ही नहीं।"

अमला ज़रा हँसी। शुष्क ओठों से फीके दाँत इस तरह दिखाई पड़े जैसे धूप से कुम्हलाए जुही के फूल।

फिर बोली—"अब धीमे-धीमे सभी कविताएँ सुनाना। पहले सुनने लायक मेरे कान ही नहीं थे। सिर्फ हँसने लायक हँसी ही मेरे पास थी।"

बात किशोर ने नहीं सुनी। उसने कहा—"अमला शब्दों की सजावट मेरे पास नहीं है। केवल एक ही चीज मेरे पास है। और वह है दर्द। वही तुम्हें मिलेगा मेरी कविताओं में।"

इस वाक्य को कहकर मानो बिखरे हुए दर्द को किशोर ने अपनी वाणी में समेटना शुरू किया। फिर सुनाने लगा। कविताओं का भावार्थ इस प्रकार था—"अपने अमूल्य आँसुओं को चुन-चुनकर मैंने एक माला बनाई है। बड़े कष्ट और यतन से पिरोकर मैं उसे किसी के गले में डालने को आकुल हो उठा हूँ। किन्तु मेरी इच्छा पूर्ण होने की कोई उम्मीद नहीं दीखती। दूर आड़ में खड़ा हुआ काला भँवरा उसे छीनने को लपक रहा है और शायद उसी की इच्छा पूर्ण हो। मेरी इस माला को शायद कोई भी नहीं ले सके। कोई भी पसन्द न कर सके। और शायद एक दिन आयगा जब मेरी इस माला के फूल झड़-झड़ कर गिर जायेंगे। और उनका नामोनिशान तक इस दुनियां में न रह पाये। उनका अस्तित्व तक इस असार संसार में न रह पायगा।"

कविता सुनकर अमला ने कहा—"तुम्हारी कविता अच्छी है

किशोर ! किन्तु फूल पिरोते-पिरोते किसी के गले में पहनाने की कल्पना भी तुमने कर डाली। यही इस कविता का दोष है। फूल पिरोते जाओ किशोर ! उन्हें सूघों, उनके सौन्दर्य का निरीक्षण करो। अपने फूलों से सिर्फ अपने को ही खुश रखो। किन्तु किसी के गले में पहनाने के रंगीन स्वप्न मत देखो। वह स्वप्न तुम्हारे फूलों को कुचलकर रख देंगे।"

"किशोर एक दिन गंगा सागर के मेले में मैंने तुम से कहा था कि दूसरी औरतें दुनियाँ को खुश रखने की चिन्ता करती हैं। और मैं चेष्टा करती हूँ सिर्फ अपने को खुश करने की जब तक यह भाव मेरे अन्दर रहा, मैं खुश रही किशोर। मैं सन्तुष्ट रही। लेकिन ज्यों ही मैं इस भाव से नीचे उतरी, और दुनियाँ की भावुकता की तप्त विश्वासों की वाष्प मेरे शरीर को लगी मेरे सुख का खात्मा हो गया। मेरी शान्ति, मेरा आनन्द सब कुछ उड़ गया। इसी से तुम्हें बताती हूँ किशोर ! फूल पिरोओ अपनी खुशी के लिए। माला बनाओ अपने आनन्द के लिए उसे पहनाने को एक सुन्दर ग्रीवा की आशा मत करो किशोर !"

वाक्य समाप्त करके अमला ने थोड़ी देर के लिए आँखें बन्द करलीं। थोड़ी देर के लिए उसका विषादपूर्ण मुख और भी गम्भीर हो उठा। इसके बाद आँखें खोल कर किशोर की ओर देखती रही। फिर बोली—"और सुनाओ किशोर !"

किशोर सुनाने लगा—"एक प्रेयसी अपने प्रेमी के पास फूलों की माला लेकर आई है। प्रेमी ने कुछ पूछा नहीं। आँखों की सांकेतिक भाषा में ही प्रश्न किया—"यह किसलिए है। "प्रेमिका फिर भी बोल नहीं सकी। उसके बन्द ओंठ बन्द ही रहे। लेकिन उनमें एक थिरकन हुई। चिबुक में एक प्रकम्पन हुआ और आँखें सरस हो उठीं। प्रेमी समझ गया, सब कुछ समझ गया। भारी गले से उसने कहा—"समझा ! तुम शायद कल जा रही हो, और इसीलिए स्मृति-स्वरूप यह माला लेकर

मेरे पास आई हो।' वह फिर भी कुछ न बोली। सिर्फ अपनी एक तर्जनी उँगली की ओर देखती रही। प्रेमी ने उसे भी समझा। बोला —"उँगली में सुई चुभ गई। लेकिन घबड़ाओ नहीं। माला गूँथते-गूंथते ऐसा हो ही जाता है। बहुत मामूली चोट है, बहुत साधारण कुछ क्षणों तक ही यह कसकेगी। और इसके बाद इस नवीन चोट का चिह्न भी न रह पायगा। लेकिन प्रिये मुझसे पूछो। मेरे अन्तः करण से पूछो कि क्या जीवन में कभी भी तुम्हारी इस माला की महक को भूल सकूँगा ?

कविता सुनकर अमला ने कहा—"यहाँ भी तुम भूल गये किशोर! यहाँ भी तुम भूल गये। उँगली में चुभने वाली सुई की चोट भले ही सूख जाय किन्तु इस इंगित में छुपी हुई जिस कसक से तुम्हारा उद्देश्य है वह कभी भी नहीं सूखती। किन्तु दो तरह के व्यक्ति होते हैं इस दुनियाँ में एक की उँगली में चुभते ही वह रोकर वेदना को प्रकट करते हैं। दूसरे उसे मौन के साथ सहन कर जाते हैं। किन्तु दोनों में से किसी का घाव सूखता नहीं। वह तो हमेशा ताजा रहता है। खैर तुम और सुनाओ।"

किशोर कविताएँ सुनाता गया और वह भावुकता के साथ उनकी आलोचना करती गई। बीच में एक बार बोली—"किशोर इन्हें छपवाते क्यों नहीं, छपवाया करो।"

"छपवाने लायक तो है नहीं अमला। अभावों को ही अच्छी तरह संयत कर पाया हूँ। न शब्दों को ही।"

"उसका कारण भी तो यही है। इन्हें न छपवाना। कविताएँ प्रकाशित होने से कवि एक उत्तरदायित्व अनुभव करने लगता है और कलम स्वयं ही संयत हो जाती है। इसके अलावा जब प्रशंसा मिलने लगती है तो एक आत्मविश्वास भी पैदा हो जाता है। कलम में चमक आ जाती है।"

"यह ठीक है अमला! फिर भी मैं इन्हें छपवाऊँगा नहीं। लोग

साहित्य की कद्र अवश्य करते हैं। लेकिन थोड़ी देर के लिए ठीक उसी तरह जिस तरह कोई एक फूल लेकर हाथ में सूंघता है। थोड़ी देर के लिए उससे खुश भी होता है। फिर कब न जाने बातों में भूलकर अथवा अपने ही विचारों में अन्यमनस्क होकर उस फूल को अपनी उँगलियों में मसलकर एक ओर को फेंक देता है।"

"फिर भी किशोर! उस फूल की महक को वह कभी भी विस्मृत नहीं कर पाता।"

किशोर ने कोई उत्तर न दिया। अमला ने कहा—"खैर तुम और सुनाओ किशोर!"

"रात तो अब और ज्यादा नहीं है इमली। सोओगी नहीं।"

"अच्छा तुम सोओ किशोर! कोशिश मैं भी करूँगी। लेकिन नींद मुझे आज आयेगी नहीं।"

किशोर पंलग पर जा लेटा और थोड़ी देर बाद ही उसकी श्वाश-प्रश्वाश की गति तीव्र हो उठी। अमला भी पंलग पर जा लेटी। लेकिन नींद उसे नहीं आई। पंलग से वह उठ खड़ी हुई। बहुत देर तक वह खिड़की पर खड़ी होकर सड़क के जलते सुए लाईट पोस्टों के बीच निर्जन सड़क को देखती रही फिर पंलग पर जा लेटी। लेकिन नींद न आई। सुबह के वक्त जरा देर के लिए उसकी आँखें लगीं और फिर नींद टूट गई। किशोर उस समय उठ गया था। अमला ने कहा—"किशोर इच्छा थी कि कुछ दिन यहाँ रहूँगी। लेकिन मुश्किल है। कलकत्ते में शायद मैं न रहूँगी। चलो श्रीनगर चलें। मैं नहीं जानती कि वहाँ जाकर भी मुझे शान्ति मिलेगी, या नहीं। फिर भी मैं यहाँ नहीं रह सकती।"

श्रीनगर पहुँचकर अमला फिर बेहोश हो गई। काफी रात में उसकी बेहोशी टूटी। बहुत देर तक वह किशोर की तरफ देखती रही। फिर बोली—"किशोर मेरे पास आओ।"

वह एक स्टूल पर पास ही बैठा था। बोला—"पास ही तो हूँ अमला!"

"नहीं, और भी पास आओ, यहाँ।"

अपने सिराहने की ओर उसने इशारा किया। किशोर और पास आ गया। अमला ने कहा—"तुम अच्छी तरह बैठो किशोर। मैं तुम्हारी गोद में सर रखकर जरा लेटूँगी।"

किशोर बैठ गया। अमला उसकी गोद में सर रखकर लेट गई। किशोर के एक हाथ को अपने हाथ में लेकर सहलाती रही। फिर बोली—"किशोर मेरे पति की मृत्यु ने मेरे जीवन में एक बहुत बड़ा परिवर्तन ला दिया है। तुमने उनका आखरी पत्र पढ़ा न! उसमें उन्होंने लिखा था कि वह मुझे मरणपर्यन्त क्षमा न कर सके। और उन के उस क्षमा न करने के आवरण में मैंने एक नई चीज खोजी है। वह यह कि वह कर्तव्य-निष्ट सदा एक रस उदासीन व्यक्ति भी मुझे प्रेम करते थे। किशोर क्षमा में दया है किन्तु प्रेम नहीं। प्रेम में तो प्रतिशोध है, ईर्ष्या है, और घृणा भी है। हम जिसे प्रेम करते हैं उसी के प्रति अत्यन्त घृणा हमारे मन में हो सकती है। जहाँ प्रेम नहीं है न वहाँ क्रोध ही आता है और न घृणा ही। कुछ अपरिचितों के प्रति भी हम घृणा करते हैं। किन्तु उस घृणा में और इस घृणा में बहुत अन्तर रहता है।"

"किशोर! मैं पहले समझती थी कि वह आदमी मुझे प्रेम नहीं करता, किन्तु वह मेरे समझने की भूल थी। जीवन भर मिथ्या अभि-

नय करती रही। मिथ्या समझा और मिथ्या आचरण करती रही। सत्य को समझा अवश्य, किन्तु जरा देर से।"

"आज भी अपने पति के प्रति जरा भी प्रेम मेरे मन में नहीं है, किन्तु सहानुभूति है। सहानुभूति और प्रेम में बहुत बड़ा अन्तर है किशोर ! सहानुभूति तो केवल मात्र सहानुभूति ही है और वह सहानुभूति ही उनके प्रति केवल मेरी है। प्रेम तो उन्हें आज भी न कर सकी। किन्तु वह मुझे प्रेम करते थे, इसे मैंने आज पहचाना है। वह अगर मुझे क्षमा कर देते तो समझती कि उन्होंने मुझे प्रेम नहीं किया, या उदासीन रहते तो भी यही समझती। किन्तु क्षमा वह न कर सके। उदासीन भी वह न रह सके। उनके पत्र से प्रकट होता है कि मेरे उस आचरण से मरण के अन्तिम काल तक वह तड़पते रहे क्योंकि वह चाहते थे कि मैं केवल उन्हीं की रहूँ। बड़े-से-बड़े पत्नी-प्रेमी की तरह ही उन्होंने मेरे इस आचरण से व्यथा पाई। जिस दिन मेरे दोष को उन्होंने पकड़ा था, उस दिन भी वह उदासीन न रह सके थे। शिष्ट थे इसलिए शिष्टता का क्रोध ही उन्होंने प्रदर्शन किया। ठीक उसी तरह जिस तरह अशिष्ट पति अपनी पत्नी के विश्वासघात को पकड़ते ही उसकी जान लेने पर उतारू हो जाता है उसी तरह उन्होंने मुझे पत्र लिखा कि मैं उनका मकान छोड़कर चली जाऊँ और जब तक मैं न जाऊँगी वह उस घर में लौटना पसन्द न करेंगे। यह उसी ढंग की चीज़ थी।"

"आज समझी हूँ किशोर कि उस दिन के उनके उस आचरण में कितना बड़ा प्रतिशोध था। कितनी बड़ी ईर्ष्या थी और वह प्रतिशोध की भावना, वह ईर्ष्या की अनुभूति, जीवन के अन्तिम क्षणों तक वह न भुला पाये थे। इसीलिए उन्होंने मरते वक्त मुझे देखना चाहा था, मेरे अपराधों को क्षमा करने के लिए नहीं, बल्कि मेरे मुँह पर थूकने के लिए, किन्तु वह भाग्य मुझे न मिल पाया। वह पत्र दो एक दिन

पहले मुझे मिल जाता तो घृणा से पूर्ण उनके थूक को अपने मुँह पर लेकर मैं अपने को सौभाग्यशालिनी समझती। यह दुर्भाग्य रहा मेरा।"

"किशोर! इसके बाद अपनी सम्पत्ति की मेरे नाम वसीयत इसमें क्या था किशोर! तुम उसे नहीं समझ पाओगे। तुम सोचोगे कि यह उनकी क्षमा का प्रतीक था। सो नहीं था किशोर! वह दूसरी चीज थी। वह था मेरे पश्चाताप की मात्रा को बढ़ाने का एक अमोघ अस्त्र। पतिता होने पर भी मैं शिक्षिता हूँ। इसे वह अच्छी तरह जानते थे। साथ-साथ यह भी जानते थे कि इस वसीयत को पाकर मैं खुश न हो सकूँगी। इसीलिए उन्होंने ऐसा किया।"

किशोर की गोद में लेटी अमला उठकर बैठ गई। उसने अपने कहने का क्रम जारी रखा—"किशोर उनके इस क्षमा न करने के आचरण में एक चीज को मैंने पहचाना कि वह जीवन भर मुझे न भूल पाये। किशोर मिलन तो एक दिन में हो जाता है। किन्तु छोड़ा एक दिन में नहीं जा सकता। उसके लिए तो रोज-रोज के प्रयास की आवश्यकता है। बहुत दिनों की जरूरत है। छोड़ उन्होंने मुझे दिया। यहाँ तक कि घर से निकल जाने तक का आदेश दे दिया। सोचा होगा कि इससे उनके मन की सारी अशान्ति मिट जायगी। किन्तु ऐसा क्या न हो सका। छोड़ वह मुझे जीवन भर न पाये। जीवन भर मैं उनके मन पर बनी रही। एक क्षण के लिए भी वह मुझे क्षमा न कर सके। जो पति अपनी पत्नियों के नैतिक अपराध को क्षमा कर देते हैं। उन्हें मैं आदर्श चरित्र मान सकती हूँ। शिष्ट ही नहीं अत्यन्त शिष्ट मान सकती हूँ, किन्तु प्रेमी नहीं मान सकती हूँ। प्रेम में क्षमा और किसी स्थल पर हो सकता है। किन्तु इस स्थल पर नहीं। मेरी नजरों में वह पति अपनी पत्नीयों के प्रति अत्यंत प्रेमी हैं जिन्होंने अपनी पत्नीयों के ऐसे किसी अपराध पर उनकी गर्दन को धड़ से अलग कर दिया है, और जिन्होंने क्षमा किया है, उन्हें क्षमा की साकार प्रतिमा मान सकती हूँ। किन्तु प्रेम की गंध उनके शरीर से लेने में कम-से-कम मेरे नासापुट अशान्त हैं।"

किशोर ने कहा—"तुम्हारी यह फिलासफी मेरी समझ में नहीं आई अमला। पत्नी पति की सम्पत्ति नहीं है। पति पत्नी का सम्बन्ध एक समझौता है।"

अमला ने कहा—"लेकिन बड़ा विकट समझौता है किशोर! और पत्नी सम्पत्ति नहीं है इसी से तो मैं क्षमा को मूल्य नहीं देती। सम्पत्ति हाथ से निकल जाने पर उसे फिर से क्षमा करके लिया जा सकता है। लेकिन पत्नी को क्षमा कर देने में सम्पति की तरह उसे निर्जीव वस्तु नहीं माना जा सकता।'

किशोर ने कहा—"नारी इस तरह के कितने अत्याचार सहन करती है, यह भी कभी सोचा है।"

"तुम्हारी बात प्रसंग से बाहर की है किशोर! यहाँ नारी अपराधी के रूप में है। पुरुष नहीं।"

किशोर ने प्रतिवाद में और कुछ कहना चाहा। लेकिन इतने बीच में अमला का बोलने का आवेश समाप्त हो गया। किशोर को बोलने से रोकते हुए उसने कहा—"अब और कुछ मत बोलो किशोर! तर्क करने की इस समय न तो रुचि ही है और न ताकत। मैं थक गई हूँ किशोर! इन बातों से नहीं, जीवन से थक गई हूँ। हाथ-पैरों की शक्ति मानो मेरी लोप हो गई है किशोर! मन में शान्ति मिल सके, ऐसा कोई उपाय बता सकते हो। एक दिन था किशोर! जब घोर-से-घोर अशान्ति को मैं एक मनोविनोद मानती थी। लेकिन आज न जाने क्या हो गया है। तीव्र घृणा हो गई है अपने प्रति। जिसने मुझे मरण पर्यन्त क्षमा नहीं किया उसने अपनी इस घोषणा के साथ-साथ एक इच्छा भी प्रगट की थी कि मैं जीवन में कभी भी सुखी न हो सकूँ। उसकी वह कामना प्रस्फुटित हो उठी है मेरे जीवन में। अब चारों ओर अशान्ति ही अशान्ति है। मैं बचना नहीं चाहती किशोर! तुम देख लेना मैं शीघ्र ही आत्महत्या कर लूँगी। अपने जीवन के प्रति स्वयं ही एक घृणा लेकर और कोई भले ही जीवित रह सकता है, मैं नहीं रह सकती। जिन्दा

रहना सिर्फ जिन्दा रहने के लिए नहीं है। जीवन के प्रति एक लगाव होना चाहिए, एक मोह होना चाहिए। वह खत्म हो गया किशोर ! और उसके स्थान पर आई है घृणा, तीव्र घृणा। सबसे मुझे घृणा है। अपने जीवन से, दुनियाँ से, तुम से। सब कुछ से। उस दिन की बात तुम्हें याद होगी, पगली ने जिस दिन आत्महत्या की थी। उस दिन मैंने तुम से कहा था कैसे विचित्र होते हैं वे व्यक्ति जो आत्महत्या कर लेते हैं। किन्तु आज क्या सोचती हूँ जानते हो ? आज सोचती हूँ कि विचित्र हैं वे जो जीवन में जरा भी शान्ति की गंध न रहने पर भी जीवित रहते हैं।"

: ३५ :

सचमुच अमला आत्महत्या कर लेगी इस बात की कल्पना भी किशोर ने न की थी। आदमी जब किसी दुःख अथवा विपत्ति के सन्मुख नहीं होता है तो सोचता है कि वह इस दुःख की स्थिति में बच सकेगा। किन्तु देखा जाता है कि उससे भी बड़े दुःख और विपत्तियों में वह बचा रहता है। बैसाख की पहली गर्मी पड़ती है। आदमी कहते हैं उफ कितनी गर्मी है। इस गर्मी में तो प्राण बचना मुश्किल है। किन्तु फिर जेठ की दुपहरी की उससे कई गुनी गर्मी को वह मजे से सहन कर लेता है।

किशोर ने भी ऐसा ही सोचा था। सोचा था कि अमला सिर्फ यह बात मुँह से ही कह रही है। लेकिन करने में अन्तर है। और सच पूछिए तो अमला ने जब उससे कहा कि मैं आत्महत्या कर लूँगी तो उसके इस वाक्य की प्रतिक्रिया ही उसके ऊपर न हुई।

बात सुनते वक्त किशोर अन्यमनस्क भी नहीं था। ध्यान से ही उसने अमला की बातें सुनीं थीं। किन्तु ध्यान से सुनने पर भी अनेक बातें ऐसी हैं जिन पर ध्यान नहीं दिया जा सकता। आदमी जो कुछ सोचता है उसमें एक बहुत बड़ा अंश ऐसे विचारों का होता है, जो बेमानी होती हैं और जो कुछ कहता है उसमें भी व्यर्थ की बातों का सर्वथा अभाव नहीं होता। अमला की बातें सुनने पर भी उसकी गहराई नहीं नापी और वह अमला से सोने के लिए कहकर खुद सोने चला गया।

किशोर के आदेशानुसार अमला अपने बिस्तरे पर लेटी और सोने की कोशिश भी उसने की। लेकिन कोशिश करने से ही तो कोई चीज सहज नहीं हो उठती। बल्कि और भी दुरुह हो उठती है। नींद उसे न आई। कई दिनों से अकेले रहने का उसे मौका न मिल पाया था। आज मिला, और मिलते ही अनेक विचार, अनेक घटनाएं उसके मस्तिष्क में नाच उठीं।

अपने पति मेघेन्द्र की सरल और आडम्बरहीन आकृति उसके दिमाग में सजीव हो उठी। उनकी दिनचर्या, भाव भंगिमा और समय समय पर की हुई सभी बातें आज उसे याद हो उठीं और उन सबको एक नये दृष्टिकोण से उसने विचार किया।

उनका स्वभाव ठंडा और उदासीन था। किन्तु अकेले अमला के प्रति ही नहीं, सभी के प्रति। दुनियाँ में जितने उनके आत्मीय थे उन सभी के प्रति। माँ के लिए, बूआ के लिए, बहिन के लिए, अमला के लिए और यहाँ तक कि स्वयं अपने लिए भी वह उदासीन थे, अन्यमस्क से थे। उन सब बातों को सोचकर उसकी आँखें सरस हो उठीं, और घंटों तक वह तकिए में मुँह गड़ाकर रोती रही। रोते-रोते उसकी सिसकियाँ बँध गईं।

इसके बाद जब रोना थमा तो फिर उसे मेघेन्द्र की वह बातें याद हो आईं, जिन्हें वह प्रायः रोज ही कहा करते थे—"जैसी पत्नी मैं चाहता था, वैसी ही मुझे मिल गई। दूसरी पत्नीयाँ अपने पति के समय

का एक बहुत बड़ा हिस्सा माँगती हैं, किन्तु तुम वैसी नहीं हो। मैं तुम्हें जरा भी समय नहीं दे पाता। फिर भी तुम कितनी खुश रहती हो यह देखकर मैं अत्यंत सन्तुष्ट हूँ, अत्यंत खुश हूँ।"

और उनके उस सन्तोष और उनकी उस खुशी पर एक दिन कैसा वज्रपात हुआ, उसकी याद करके वह सिहर उठी।

इसके बाद उनका वह दो लाइन का पत्र घर छोड़ने के लिए आदेश देने वाले उस पत्र में कितना संयम था, कितनी सहनशीलता थी, याद करके अमला का हलका सा शरीर काँप उठा। बिस्तर से उठकर वह आँगन में आ गई। सब कुछ शान्त था, सब कुछ नीरव।

बहुत देर तक वह आँगन में खड़ी रही। खड़े खड़े अपने पति के पिछले दो पत्र उसे याद हो आये। उनमें घुटी वेदना याद आई। उनमें व्यक्त की गई घृणा याद आई—"जीवन के अन्तिम काल में अगर कोई इच्छा है तो बस यही कि तुम्हें सामने खड़ा करके तुम्हारे मुंह पर थूक सकूँ।"

और जैसे ही यह बात याद आई। सारा स्तब्ध वातावरण मानो कलरवित हो उठा। इमली के पेड़ पर बैठा उल्लू अपनी कर्कश वाणी में चिल्लाया—"थूक सकूँ।" रात्रि के दूसरे पहर की सूचना देते हुए गीदड़ों ने भी चिल्लाकर कहा—"थूक सकूँ।" कुत्तों ने भी एक साथ शोर किया—"थूक सकूं।"

चारों तरफ से मानों अमला के कानों में एक ही शब्द आने लगा। अपने आप में उत्पन्न इस भीषण कल्पना ने उसे डरा दिया। अपने कानों पर हाथ रखकर वह तेजा से दौड़ कर अपने कमरे में घुस गई। अत्यंत शीघ्रता से उसने दर्वाजा बन्द कर लिया। पंलग पर लेटकर दोनों कानों को मजबूती से उसने बन्द करने की चेष्टा की। किन्तु बन्द कानों में आने वाली अनहद की 'चींचीं' की ध्वनि ने भी उसके कान में इन्हीं शब्दों की रचना की। गुस्से में उसने अपने निचले ओंठ को चबा डाला। कानों से हाथ हटाकर दोनों मुट्ठीयों से पकड़कर अपने बालों

को नोंच डाला। किन्तु फिर भी वह आवाज बन्द न हुई। दीवाल पर टंगी घड़ी की टिक-टिक ने भी वही शब्द किया। अलमारी पर रखी हुई एलार्म की 'किच किच' ने भी उसी वाक्य को दोहराया। चारों ओर से इस एक ही शब्द ने अमला को विक्षिप्त सा बना डाला। कमरे की सारी चीजों को सारी किताबों को उठा-उठा कर उसने दीवाल पर फेंक कर मारा। काँच के गिलास टकराकर चूर-चूर हो गये। किताबों की जिल्दें फट गईं। काँसे के बर्तन झनझनाकर खील-खील हो गये। फिर भी वह शब्द बन्द न हुआ, वह शोर शान्त न हुआ। चारों तरफ का वातावरण मानो 'थूक सकूँ, तुम्हारे मुँह पर थूक सकूँ' चिल्ला उठा। और उसके साथ-साथ मानो उसके पति की तप्त इच्छा उसके चेहरे से टकराने लगीं। जाड़े की ठंडी रात में भी उसके चेहरे पर स्वेद-विन्दु झलक आये। वह काँपने लगी। धीरे-धीरे उसका सारा शरीर पसीने से भीग उठा। उसके दिल की धड़कन मानो चतुर्गुण हो उठी।

काँपते पैरों से उठकर उसने अलमारी खोली और काँपते हाथों से वह एक छोटी-सी शीशी को देखती रही। फिर उसने कमरे में सभी ओर भयभीत दृष्टि दौड़ाई। इसके बाद उसने शीघ्रता से मानो कोई उस शीशी को छीनने आ रहा हो, जल्दी-जल्दी उस शीशी को अपने मुँह में उंडेल लिया।

फिर वह बिस्तरे पर जा लेटी। यकायक ही चारों तरफ का वातावरण उसे शान्त सा लगा, नीरव सा लगा। खिड़की की एक अधखुली दरार से हवा उसके शरीर को आ टकराई। क्षण भर में ही शरीर का सारा पसीना सूख गया। सब कुछ स्तब्ध हो चुका था। वातावरण शान्त था। उसके निचले ओठों पर एक हलकी सी मुस्कान खेल गई। उसने किवाड़ खोले, बाहर आई। रजनी गंधा की मनमोहक सुरभि उसके नासापुटों से टकराने लगी। मुस्कान की वह रेखा जो उसके ओठों पर अभी-अभी आई थी, और भी खिच गई। फिर वह

ऊपर चढ़ी, किशोर के कमरे में खूँटी से लटकी लालटेन अभी भी जल रही थी। तख्त पर किशोर चित्त सोया हुआ था उसकी नाक से एक गम्भीर शब्द की उत्पत्ति हो रही थी। ओंठ बन्द थे सुषुप्त अवस्था का उसका वह चेहरा अत्यंत गम्भीर था। अत्यंत वेदना-मुक्त। दो तीन मिनिट तक वह किशोर की ओर देखती रही। फिर उसके लम्बे-लम्बे अंधेरे से काले बालों पर एक स्नेहयुक्त मृदु कर-संचालन किया, और धीमे-धीमे फुस-फुसाकर कहा—"किशोर तुम्हें मैंने क्या दिया।" और फिर मानो अपनी बात का अपने आप उत्तर देती हुई बोली—"कुछ भी तो नहीं। मैं तुम्हें कुछ भी न दे सकी।"

उसकी आँखें फिर सरस हो उठीं। सोये हुए किशोर के हाथ को उठा कर उसकी हथेली से ही अपने आँसू उसने पोंछ डाले। कई दिन से जगा हुआ किशोर अत्यंत बेसुध सोया हुआ था। उसके लिए बहाए हुए एक नारी के अन्तिम आँसुओं की जरा भी जानकारी उसे न हो सकी।

इसके बाद अमला ने किशोर के हाथ को अपने ओठों से लगाया। वातावरण में एक मधुर शब्द हुआ और फिर किशोर की रजाई को उसने अच्छी तरह उढ़ा दिया। उसके सिरे दबा दिए। पैरों को उठाकर उसने नीचे रजाई दबादी और फिर एक बार किशोर की ओर देखा। उसके बालों को सहलाया। फिर वह जल्दी-जल्दी नीचे उतर गई।

नीचे आकर उसने एक पत्र लिखा। एक लिफाफे में उस पत्र को बन्द करके वह फिर किशोर के कमरे में आई। किशोर अब भी बेसुध सोया हुआ था। पत्र उसने किशोर के सिराहने रख दिया। एक बार फिर बालों पर मृदु कर संचालन किया। एक बार फिर हाथ को ओठों से लगाया। एक बार फिर वातावरण में एक मधुर शब्द हुआ और वह नीचे उतर गई।

नीचे उतरते-उतरते उसकी आँखें भीग गईं। गीली आँखों को अपनी साड़ी के पल्ले से पोंछकर वह अपने बिस्तरे पर लेट गई। थोड़ी देर तक

आँखें बन्द किये वह चुपचाप लेटी रही। फिर उठ कर अपने बक्स में से अपने पति के पिछले दोनों पत्र निकाले। उन्हें चूमा, फिर बोली—"सुनो! कभी भी तुम्हें कुछ कहकर नहीं पुकारा। आधुनिकाएँ अपने पति का नाम लेकर पुकारती हैं। पुराने जमाने की, स्वामी, नाम और प्रियतम कहकर। लेकिन मैं तुम्हें किसी भी सम्बोधन से न पुकार सकी। आज पुकारूँगी। लेकिन नाम लेकर नहीं। नाम लेने में मधुरता नष्ट हो जाती है। मैं आज तुम्हें प्रियतम कहकर ही पुकारूँगी। स्वामी कह कर ही पुकारूँगी। तो सुनो प्रियतम! पुनर्जन्म को मैंने कभी भी नहीं माना। फिर भी आज उसी पुनर्जन्म को मान कर ही मैं तुम्हारे पास आ रही हूँ। तुम्हारे हाथों को अपने गले में डलवाने के लिए नहीं, सिर्फ तुम्हारी इच्छा को पूर्ण करने के लिए। जिससे तुम मेरे मुँह पर थूक सको और तुम्हारी अतृप्त आत्मा तृप्त हो सके। बोलो नाथ! अब तुम खुश हो न! सन्तुष्ट हो न मेरे स्वामी!"

और बहुत देर तक वह बड़बड़ाती रही। जब तक कि उसकी वाणी में शिथिलता न आ सकी, जब तक कि उसके ओंठ हिलने बन्द न हो सके। इसके बाद उन पत्रों को अपनी छाती से लगाकर उसके होंठ हिलने से बन्द होगये। उन पर हलकी सी अस्पष्ट सी एक मुस्कान की रेखा खिच गई और फिर सब कुछ स्तब्ध, सब कुछ शान्त।

: ३६ :

कई दिनों के रात्रि-जागरण और सफर से क्लान्त किशोर आज देर से उठा। धूप निकल आई थी। आकाश में हल्के बादल थे और धूप मलिन सी थी, थकित सी थी। ठीक एक थकित युवती की मुस्कान की भाँति ही मलिन। नीचे उतर कर अमला की अधखुली

खिड़की से उसने देखा अमला सो रही है। कई दिनों के निरन्तर जागरण के पश्चात उसकी नींद से किशोर को खुशी ही हुई। कंधे पर तौलिया डालकर वह नहाने के लिए बड़ी पोखर पर चला गया और जब लौट कर आया तो देखा कि वह तब भी सो रही थी। किशोर ने चूल्हा जला कर अपने आप ही चाय बनाई। दो प्यालियों में चाय ढालकर एक कप उसने स्वयं पिया और दूसरे को हाथ में लेकर उसने अमला के कमरे के सामने आवाज दी—"इमली ! जल्दी आओ ! चाय ठंडी हो रही है।" लेकिन भीतर से कोई आवाज न आई। किशोर जानता था कि अमला की नींद बहुत अधिक गहरी नहीं होती फिर भी कई दिनों की क्लान्ति के बाद आज की नींद भी गहरी मान कर उसने और भी कई आवाजें जोर-जोर से दीं और फिर भी कोई उत्तर न आया। उसने अमला के शरीर को हिलाया लेकिन वहाँ तो सब कुछ शान्त था, सब कुछ नीरव।

अकस्मात ही किशोर को अमला की रात में कही हुई बातें याद हो आई—"किशोर ! विचित्र हैं वे जो जीवन में शान्ति की ज़रा भी गन्ध न होने पर भी जीवित रहते हैं।"

और उस बात को याद आते ही उसका माथा ठनका। बाँस के टुकड़े से उसने अमला के शरीर को जोर-जोर से हिलाया, आवाजें दीं, लेकिन सब व्यर्थ, सब निष्फल।

पास पड़ोस के आदमियों को उसने बुलाया। अच्छी खासी भीड़ एकत्रित हो गई और किवाड़ तोड़ कर जब किशोर ने उस कमरे में अमला के निर्जीव शरीर को देखा तो वह स्तब्ध रह गया। न तो एक भी आँसू ही उसकी आखों में आ सका और न एक भी बात उसके मुँह से निकल सकी। बहुत देर तक वह अमला के निर्जीव शरीर की ओर देखता रहा। अमला के ओंठ नीले पड़ गये थे। फिर भी अमला के होठों पर अस्पष्ट सी एक मुस्कान की रेखा अभी भी खिंची हुई थी।

आँखें बन्द थीं। सब कुछ शान्त था। सब कुछ नीरव। वह बहुत देर तक उसकी ओर देखता रहा।

× × ×

श्मशान से वह लौटा। शिथिल पदचाप और भारी दिल लेकर, फिर भी उसका मस्तिष्क अभी भी शून्य था। श्मशान वैराग्य के पश्चात आदमियों की प्रसंग बदल कर अनेक ऊबड़-खाबड़ बातें भी उसके निष्क्रय और शून्य मस्तिष्क पर कोई प्रतिक्रिया न कर पाईं।

लौटते वक्त घटक उसके साथ था। घर पहुँच कर घटक ने कहा—"किशोर! वह जितनी विचित्र थी, उसकी मौत भी उतनी ही विचित्र हुई।"

किशोर ने कहा—"हाँ घटकदा। विचित्रता ही उसकी विशिष्टता थी और विचित्रता के साथ ही वह चली गई।"

फिर जरा देर रुक कर उसने कहा —मैं कल यहाँ से चला जाऊँगा घटकदा!"

"कहाँ?"

"यह तो नहीं जानता कि कहाँ जाऊँगा लेकिन इस गाँव में नहीं रहूँगा।"

"और तुम्हारी मिल?"

"उसे तुम्हारे नाम लिखा पढ़ी कर जाऊँगा। बेच कर उसे स्कूल को दे देना। और भी कुछ रुपये मेरे बैंक में जमा हैं। उन्हें भी स्कूल को दे जाऊँगा। लड़कों के स्कूल का नाम अमला के नाम पर रखवा देना और एक लड़कियों का स्कूल खुलवा देना। मेरी बहन के नाम पर। गीता के नाम पर।"

घटक ने कुछ भी कहना ऊचित न समझा। वह चुप ही रहे। किशोर ने कुछ देर रुक कर कहा, "मैंने इस घर में आकर भूल की है। इस गाँव में आकर भूल की। इस प्रदेश में आकर भूल की।"

"घटक ने कहा—"किशोर तुम्हारा मन अशान्त है। तुम जरा आराम करो। चलो मैं तुम्हारे पास बैठूँगा।"

"नहीं घटकदा। ईश्वर के लिए मुझे थोड़ी देर को अकेला छोड़ दो, तुम जाओ। मैं आराम करूँगा।"

घटक चला गया। किशोर ऊपर अपने कमरे में आकर तख्त पर लेट गया। एक-एक करके सब बातें उससे याद आईं। अमला की हँसी। गीता की सरल बातें। सब कुछ याद आया। वह छत की तरफ निगाह किए बहुत देर तक उन बातों को सोचता रहा। फिर लेटे-लेटे उसके सिरा-हने रखे हुए एक लिफाफे से उसका हाथ टकराया। उठाकर लिफाफा फाड़ कर देखा। वह अमला का पत्र था। शीघ्रता से वह उठकर बैठ गया। पत्र पढ़ना शुरू किया। उसमें लिखा था :

"किशोर !"

मैं आत्महत्या कर लूँगी। यह तुम्हारे लिए एक कल्पनातीत बात रही होगी। तुम कभी भी इस बात को सोच भी नहीं सकते होगे। तुम्हीं क्या मेरे लिए भी यह कल्पनातीत बात थी, फिर भी किशोर दुनियाँ में ऐसी बहुत सी बातें हैं जो होने से पहले कल्पनातीत ही रहती हैं। किन्तु होने के बाद कल्पना उनसे हटकर सिर्फ अतीत ही रह जाती हैं। यह पत्र जब तक तुम्हें मिलेगा तब तक मेरी यह लिखने की शक्ति, सोचने की शक्ति, सब कुछ समाप्त हो जायगी। सब कुछ अतीत के गर्भ में डूब जायगा।

"सारे जीवन भर भूल ही करती रही किशोर ! मेरा जीवन ही एक बहुत बड़ी भूल है, फिर भी मैं उस भूल में खुश थी, उस मिथ्या अभिनय में हा सुखी थी, किन्तु किशोर विचित्र नियम है इस विचित्र दुनिया का। जो हँसना चाहता है उसे रोना पड़ता है। जो पाना चाहता है उसे खोना पड़ता है। और जो खोना चाहता है उसे मिलता है। मैं हँसना चाहती थी किशोर ? सारे जीवन भर हँसना। इसलिए मुझे रोना पड़ा मैं खुश रहना चाहती थी किशोर ! इसलिए मुझे तड़पना पड़ा।

"किशोर कई बार तुमने प्रश्न किया था। कई बार तुमने जानना चाहा था कि मैं तुम्हें प्रेम करती हूँ या नहीं। उस समय तुम्हें स्पष्ट उत्तर न दे सकी थी। आज दूँगी फिर भी स्पष्ट नहीं। उसमें भी अस्पष्टता रह जायगी। स्पष्ट तुम्हें आज भी न बता सकूँगी लेकिन एक चीज बताऊँगी किशोर कि तुम पहले पुरुष हो जिससे मैंने घृणा नहीं की। घृणा तो शुरू-शुरू में तुम से ही मुझे काफी मिल गई थी। शायद इसी से मैं तुम्हें घृणा न कर सकी। और जिस तरह दूसरे पुरुष को खिलौना बना कर खेलती थी उस तरह तुम्हें खिलौना भी न बना सकी। फिर भी किशोर! तुम्हें कुछ भी न दे सकी। दुनियाँ में किसी को कुछ भी नहीं दिया। किशोर तुम्हें भी न दे सकी। किन्तु किशोर तुम्हें जिस चीज की आवश्यकता थी वह चीज तुम्हें मुझ से मिल गई। तुम कवि हो किशोर! तृप्ति और मिलन तुम्हारी कलम को रोक देती। तुम्हें तो उसी की आवश्यकता थी जो कुछ तुम्हें मिला जो तुम्हारी कलम में ला सके कसक, वेदना।"

"किशोर मेरी स्मृति को याद रखना। मुझे याद रखना। मेरे लिए रोना। आँसू बहाना और उन आँसूओं की बूदों को पिरो कर एक माला बनाना। अपनी कविताओं की लड़ियों की एक माला और विश्व के सम्मुख उसे रख देना। उनके लिए जिन्हें रोना पसन्द है, जो हँसना नहीं चाहते। जिनके दिल में आहें हैं, उच्छ्वास हैं, वे पढ़ेंगे तुम्हारे उस अमर काव्य को और रोयेंगे, मेरी अशान्त आत्मा उनकी आँखों की बूदों से तृप्त हो जायगी। किशोर तुम विरह के गीत लिखना। मिलन के नहीं, तुम आसुओं की सृष्टि करना किशोर! कथा की सृष्टि करना। कसक की सृष्टि करना, तृप्ति की नहीं।"

"तुम कवि हो किशोर। मुझे अमर बना देना। शाहजहाँ ने मुमताज को अमर बनाया था पैसे के बल पर। तुम मुझे अमर बना देना अपने दिल के भावों से, अपनी भावुकता से, अपनी अमूल्य काव्य-शक्ति से तुम अपने लक्ष के क्रन्दन को। अपने दिल की आहों को।

उच्छ्वासों को समेट कर मेरे लिए रोना किशोर ! सिर्फ मेरे लिए और मैं जानती हूँ कि तुम रोओगे। सारे जीवन भर रोओगे। यह रोना मेरे लिए संतोष का विषय होगा। आनन्द का विषय होगा। मैं इस याद के साथ जा रही हूँ कि मेरे लिए भी कोई रोने वाला है। जिसकी आँसुओं की बूँदों में कविता का अलंकार है। जिसकी सिसकियों में संगीत का स्वर है।"

"लेकिन देखो किशोर ! कितनी चतुर हूँ मैं। चलते-चलते भी तुम से एक मज़ाक कर गई। एक अत्यत गम्भीर मज़ाक। एक को रोने के लिए, तड़फने के लिए आदेश देकर, दूसरे के लिए आत्महत्या करना इससे बड़ी मज़ाक दुनियाँ में और क्या होगी। तुम्हारी इमली।"

और पत्र पढ़ते-पढ़ते किशोर को लगा जैसे अमला उसके सामने आ बैठी और पत्र की पिछली पक्तियाँ उसने कागज पर नहीं पढ़ीं, उसके मुँह से सुनी हैं। जिन्हें सुनाकर वह हँस पड़ी, वह चिरपरिचित हँसी। मानो सघन निविड़ अंधकार के बीच एक क्षण के लिए चाँदनी खेल गई हो।

॥ इति ॥